निबन्ध निकुञ्ज

शिव.प्रसाद अग्रवाल (प्र.)

निबन्ध-निकुञ्ज

लेखक

शिवप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, एल० टी०, साहित्य-रत्न

निबन्ध-क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित करने वाली भारतवर्ष के कोने-कोने में प्रचलित, विद्वानों द्वारा प्रशंसित, विख्यात यह 'निबन्ध-निकुञ्ज' पुस्तक हाई स्कूल के छात्रों के लिए परम उपयोगी सिद्ध हुई है। अल्पकाल में ही इसके १९ संस्करण

हो ... एण्ड

इण्ट ... ीकृत

कर

... नावेश

किय ... द्धि में

पूर्ण ... : तथा

हृदय

... ा. ए.,

... ,

सनातन धर्म कॉलेज, कानपुर।

निबन्ध-निकुञ्ज निश्चय ही उच्चकोटि की विद्वतापूर्ण तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के सर्वथा अनुरूप है। निबन्ध-क्षेत्र में इतनी सुन्दर तथा उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने पर मैं आपको बधाई देता हूँ।

(ह०) देवकीनन्दन शर्मा,
हिन्दी-विभाग, एस० डी० कॉलेज
अम्बाला केण्ट।

शुद्ध हिन्दी

लेखक

शिवप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, साहित्य-रत्न

तथा

राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, एम० ए०, साहित्य-रत्न

हिन्दी में शुद्ध बोलना और लिखना सिखाने वाली पुस्तकों का अभाव-सा है। प्राय: देखा जाता है कि विद्यार्थी हिन्दी लिखने में अनेक त्रुटियाँ करते हैं। उनके लिए शुद्ध हिन्दी-सम्बन्धी पुस्तकों की आज अति आवश्यकता है। 'शुद्ध हिन्दी' पुस्तक अपने विषय की अनूठी रचना है। इसके अध्ययन से विद्यार्थियों को शुद्ध हिन्दी लिखना आ जायगा।

कतिपय सम्मतियाँ

"शुद्ध" हिन्दी नामक पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। मुझे आशा है कि हिन्दी पढ़ने और लिखने वाले इससे लाभान्वित होंगे।

डॉ० अमरनाथ झा, आई० डी० एस०
इलाहाबाद।

'शुद्ध हिन्दी' उपयोगी दिखाई देती है। आशा है इससे लोगों को लाभ होगा।

राष्ट्रकवि– मैथिलीशरण गुप्त,
चिरगाँव (झाँसी)

"आपकी 'शुद्ध-हिन्दी' पुस्तक से प्रत्येक ऐसे नर-नारी को जो शुद्ध-हिन्दी लिखने और बोलने का इच्छुक है, विशेष लाभ होगा। विद्यार्थियों के लिए तो यह पुस्तक बहुत उपादेय है ही। लिखने का ढंग सुन्दर, सरल और वैज्ञानिक तथा शैली रोचक है।"

प्रो० हंसराज अग्रवाल, एम० ए०, पी० ई० एस०
लुधियाना।

निबन्ध-निकुञ्ज

[माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर-प्रदेश द्वारा हाईस्कूल के छात्रों के लिए स्वीकृत]

लेखक—
शिवप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, साहित्यरत्न
[शिक्षा-विभाग, उत्तर-प्रदेश]

बीसवाँ संशोधित संस्करण

आगरा बुक स्टोर
प्रकाशक, विक्रेता एवं मुद्रक
आगरा अजमेर इलाहाबाद बनारस कानपुर
लखनऊ मेरठ नागपुर

१९५५ मूल्य २)

प्रकाशक—
आगरा बुक स्टोर,
रावतपाड़ा, आगरा।

प्रथम संस्करण सन् १९३८
उन्नीसवाँ ,, सन् १९५४
बीसवाँ ,, सन् १९५५

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—
गुलाबचन्द अग्रवाल, बी० कॉम०,
अग्रवाल प्रेस, आगरा।

उन्नीसवें संस्करण पर लेखक के दो शब्द

'निबन्ध निकुञ्ज' का उन्नीसवाँ संस्करण पाठकों के हाथ में है। इस पुस्तक ने जो आशातीत उन्नति एवं लोक-प्रियता प्राप्त की है, उसके लिए मैं पाठकों को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। उन्होंने मेरी इस रचना को भली भाँति अपनाया है।

'निबन्ध निकुञ्ज' को माध्यमिक शिक्षा-परिषद्, उत्तर प्रदेश ने हाई स्कूल के छात्रों के लिए स्वीकार किया है। इसके लिए मैं परिषद् के अधिकारियों का हृदय से आभारी हूँ।

'निबन्ध-निकुञ्ज' का प्रचार भारतवर्ष के कोने-कोने में है। हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त मद्रास, बम्बई, हैदराबाद मध्य-प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, मध्य-भारत, पंजाब, दिल्ली आदि प्रान्तों ने भी इसे अपनाया है। यह इसकी सर्वप्रियता का द्योतक है!

प्रस्तुत संस्करण में यथास्थान संशोधन किया गया है और आवश्यक सामग्री बढ़ाई गई है। आशा है वर्त्तमान रूप में 'निबन्ध-निकुञ्ज' पाठकों को अधिक रुचेगा।

शिव-सदन
स्वदेशी बीमा नगर, आगरा
श्रावणी सं० २०११

शिवप्रसाद अग्रवाल

प्रथम संस्करण का प्राक्कथन

आज प्रस्तुत पुस्तक को माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों के समक्ष रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष है। वैसे तो यह पुस्तक विशेषतः हाई स्कूल परीक्षा में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है; पर कोविद, विद्या-विनोदिनी, प्रथमा आदि परीक्षाओं के परीक्षार्थी भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। इसमें कुछ निबन्ध ऐसे भी रक्खे गए हैं जिनका उपयोग इण्टरमीजिएट तथा मध्यमा के विद्यार्थी कर सकते हैं। इस प्रकार पुस्तक का क्षेत्र विस्तृत बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक में निबन्धों के अतिरिक्त पत्रों का भी समावेश हुआ है। परिशिष्ट में पत्र-लेखन पर एक छोटा-सा लेख लिखकर प्रधान-प्रधान पत्रों के नमूने दिए गए हैं।

भूमिका में निबन्ध-रचना के कुछ स्थूल नियमों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। आशा है, विद्यार्थी-गण उन पर विशेष ध्यान देकर निबन्ध लिखने की कला में कुशलता प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक में प्रत्येक निबन्ध के साथ रूप-रेखा दी गई है। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे किसी निबन्ध को पढ़ने के पश्चात् उसकी रूप-रेखा की सहायता से स्वयं निबन्ध लिखें, निबन्ध को रटने की चेष्टा न करें। ऐसा करने से उन्हें अधिक लाभ होगा। पुस्तक में कुछ विस्तृत रूप-रेखाएँ इसलिये दे दी गई हैं कि विद्यार्थी उनको आधार बनाकर निबन्ध रचना का अभ्यास करें।

मुझे इस बात का ध्यान रखना पड़ा है कि कहीं यह पुस्तक उन विद्यार्थियों की समझ के बाहर की वस्तु न हो जाय जिनके लिए लिखी गई है। अतः निबन्धों का विस्तार कम रक्खा गया है, विषय-प्रतिपादन सुबोध शैली में किया गया है और भाषा सरल प्रयुक्त हुई है। वैसे भाषा की क्लिष्टता को मैं रचना का दोष समझता हूँ, गुण नहीं।

निबन्ध-रचना का यह मेरा प्रथम एवं लघु प्रयास है। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय पाठकवृन्द ही कर सकेंगे। यदि इससे विद्यार्थियों का कुछ भी हित हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

अन्त में मैं उन समस्त लेखकों तथा कवियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता, जिनकी रचनाओं से मैंने प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में किसी-न-किसी प्रकार की सहायता प्राप्त की है।

आगरा
गंगा दशहरा, संवत् १९९५ वि० } शिवप्रसाद अग्रवाल

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या

विषय पृष्ठ संख्या

निबन्धों की विस्तृत रूप-रेखाएँ

विषय | पृष्ठ संख्या

भूमिका

निबन्ध—लेखन

निबन्ध वह गद्य-रचना है जिसके द्वारा किसी विषय पर आकर्षक और सरल शैली में किसी लेखक के क्रम-बद्ध विचार प्रकट किये गये हों। निबन्ध में कोई लेखक कुछ विचार प्रकट करता है और कोई कुछ। अतः एक ही विषय पर लिखे हुए कई निबन्धों में पर्याप्त अन्तर देखा जाता है। विस्तार के सम्बन्ध में भी यही बात है। किसी लेखक का निबन्ध लम्बा होता है और किसी का छोटा। कहना न होगा कि छोटा निबन्ध बड़े की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है, क्योंकि बड़े निबन्ध में सुन्दरता की रक्षा नहीं हो सकती। निबन्ध के प्रधान अङ्ग दो हैं—(१) विचार-समूह या सामग्री (Matter); (२) शैली (Style)।

यद्यपि निबन्ध लेखन की सफलता बहुत-कुछ सुन्दर शैली पर निर्भर है, तथापि हमें सामग्री की उपयोगिता भी स्वीकार करनी पड़ेगी। चाहे शरीर को कितना ही सजाया जाय, पर प्राणों के अभाव में वह सुन्दर नहीं लगेगा।

विचार-समूह या सामग्री

किसी विषय पर लेखनी चलाने के पूर्व सामग्री जुटाने के लिए उस पर मनन करना चाहिए। मनन करने से जो विचार मस्तिष्क में आवें उन्हें विद्यार्थी लिख ले। कोई विषय-सम्बन्धी विचार उसी लेखक के मस्तिष्क में अधिक आ सकते हैं, जिसने उस विषय का अच्छा अध्ययन किया है। वास्तव में निबन्ध-लेखन के लिए विस्तृत

अध्ययन और निरीक्षण की नितान्त आवश्यकता है। अतः विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने ज्ञान-भंडार को अध्ययन और निरीक्षण द्वारा बढ़ाए। सामग्री जुटाने का सबसे सरल साधन यह है कि विद्यार्थी विषय के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न अपने से पूछे। क्या? क्यों? कैसे? आदि प्रश्नवाचक शब्द उसे पर्याप्त सामग्री प्रदान कर सकेंगे। जैसे—'स्वच्छता' नामक विषय पर निबन्ध लिखना है। उसे इस प्रकार के प्रश्न पूछने चाहिएँ—

(१) स्वच्छता क्या वस्तु है ?
(२) स्वच्छता क्यों रखनी चाहिए ?
(३) स्वच्छता से क्या लाभ हैं ?
(४) क्या हम स्वच्छ रहते हैं ?
(५) स्वच्छता कैसे प्राप्त की जा सकती है ?

इन प्रश्नों के उत्तर ही उसके निबन्ध की सामग्री होंगे।

इस प्रकार निबन्ध लिखने से पूर्व उसकी रूप-रेखा बायें पृष्ठ पर बनानी चाहिए। रूप-रेखा में दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अनावश्यक बातें, जहाँ तक हों न रक्खी जायँ और विचारों को क्रम बद्ध लिखा जाय। जैसे—'महात्मा गाँधी' पर निबन्ध लिखना है। लेखक को चाहिए कि अपनी रूप-रेखा में पहले 'गाँधीजी के आविर्भाव के समय भारत की दशा' लिखे, फिर 'उनका प्रारम्भिक जीवन', 'वकालत', 'अफ्रीका में सत्याग्रह' आदि अन्य बातें लिखे। यदि वह पहले 'प्रारम्भिक जीवन' लिखकर फिर 'आविर्भाव के समय भारत की दशा' लिखेगा तो क्रम भङ्ग हो जायगा, जिससे निबन्ध का सारा मजा मिट्टी हो जायगा। रूप-रेखा के एक-एक विचार को बढ़ाकर निबन्ध के एक-एक पैराग्राफ (परिच्छेद) में लिखना चाहिए। उसके आदिम और अन्तिम विचार या बात को क्रमशः 'प्रस्तावना' और 'उपसंहार' नाम देना चाहिये। यह ध्यान रहे कि कोई भी ऐसी बात निबन्ध में न लिखी जाय जो विषय की सीमा से बाहर हो।

शैली

शैली में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु भाषा है। निबन्ध की भाषा सरल और सुबोध हो। बहुत से विद्यार्थी समझते हैं कि क्लिष्ट भाषा से निबन्ध में सुन्दरता आती है। ऐसा समझना भूल है। क्लिष्ट भाषा से निबन्ध भद्दा हो जाता है। भाषा में धारा-प्रवाह का गुण होना चाहिए। निबन्ध के पढ़ने वाले को कहीं भी रुकावट का अनुभव न हो। वह एक वाक्य से दूसरे वाक्य तक सरकता-सा चला जाय। धारा-प्रवाह के लिए वाक्यों में स्वाभाविक सम्बन्ध होना चाहिए। वे आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े हों जिस प्रकार शृंखला की कड़ियाँ। भाषा का कष्ट-साध्य (Laboured) होना धारा-प्रवाह पर कुठाराघात करता है। वाक्य छोटे-छोटे लिखना चाहिए। लम्बे-लम्बे वाक्यों का कभी-कभी मतलब गुम हो जाता है और साधारण विद्यार्थी उनका ठीक-ठीक निर्वाह नहीं कर सकता। पढ़ने वाले का चित्त भी उनसे उकता जाता है। भाषा संस्कृत-गर्भित हो या व्यावहारिक—इस विषय पर बहुत दिनों से विवाद चल रहा है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भाषा संस्कृत की ओर झुकी रहे और उसमें एक भी विदेशी शब्द प्रयुक्त न हो। कुछ का मत है कि साहित्य की भाषा उसी प्रकार की हो जिस प्रकार की बोलचाल की भाषा होती है। अर्थात् उसमें उर्दू, अँग्रजी आदि के चलते हुए शब्द प्रयुक्त हों। हमारी समझ में विद्यार्थियों को मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उनकी भाषा न तो संस्कृत-गर्भित हो और न विदेशी शब्द-बहुला। यत्र-तत्र हिन्दी में बहुत प्रचलित विदेशी शब्दों को भी स्थान दिया जाय। पर वे पूर्णतया हिन्दी के व्याकरण से अनुशासित रहें। जैसे 'ज़रा' को 'जरा', 'मकानात' को मकानों और 'स्कूल्स' को स्कूलों लिखना चाहिए। भाषा सशक्त (Forceful) लिखी जाय। वह फड़फड़ाती हुई हो, जिससे पाठक प्रभावित होकर निबन्ध को अन्त तक पढ़ता हुआ चला जाय। इसके लिए इस बात का ध्यान रहे कि वाक्य के जिस अंश पर जोर देना हो, उसे वाक्य के आदि अथवा अन्त में रक्खा जाय।

कभी-कभी किसी बात को जोरदार बनाने के लिए उसे प्रश्न-वाचक वाक्यों में लिखते हैं अथवा विस्मय-सूचक वाक्य में। जैसे : (१) ज्ञान-प्रसार में किस प्रकार विदेशी भाषा मातृ-भाषा की अपेक्षा सफल हो सकती है ? (२) कैसे रमणीय, कैसे सुहावने, कैसे सुन्दर दृश्य हैं ! यदि इन वाक्यों को साधारण रूप में—(१) ज्ञान-प्रसार में विदेशी भाषा, मातृ-भाषा की अपेक्षा सफल नहीं हो सकती है, (२) दृश्य रमणीय, सुन्दर और सुहावने हैं—रख दिया जाय तो ये शिथिल हो जायँगे। कहीं-कहीं वाक्यांश या वाक्य के आरम्भ अथवा अन्त में एक ही शब्द या शब्द-समूह का बार-बार प्रयोग करने से भी भाषा में अच्छी शक्ति आ जाती है। जैसे—(१) जब मिट्टी से रत्न पैदा करने वाला मौन तपस्वी किसान भर-पेट भोजन पायेगा, जब उसे शरीर ढकने को वस्त्र मिलेगा, तभी यह देश पुनः अपनी प्राचीन समृद्धि को प्राप्त करेगा, तभी यह देश पुनः धन-धान्य से अट जायेगा, तभी यह देश पुनः अपनी खोई हुई लक्ष्मी को प्राप्त करेगा। (२) भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने वाले आप ही हैं। भारतवर्ष में जाग्रति करने वाले आप ही हैं। भारतमाता की सूखी नसों में रक्त का संचार करने वाले आप ही हैं। देश के स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध सबके हृदय-सम्राट् आप ही हैं।

निबन्ध का सौंदर्य अलङ्कारों के प्रयोग से बढ़ जाता है, पर उनकी भरमार अच्छी नहीं। जहाँ जो अलङ्कार स्वतः विचार-प्रवाह में आ जायँ, उन्हीं को निबन्ध में स्थान दिया जाय। सिर खुजला-खुजलाकर रचना में अलङ्कार बिछाना ठीक नहीं है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलङ्कार भावों को स्पष्टता प्रदान करते हैं। अतः उनका प्रयोग करना चाहिए। किन्तु स्मरण रहे कि अलङ्कारों का प्रयोग करना सरल नहीं होता। वही विद्यार्थी उनका प्रयोग करे जिसे उनका ठीक ज्ञान हो।

निबन्ध में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का यथा-स्थान प्रयोग होना चाहिए। इससे उसमें रोचकता आ जाती है। जैसे—"विदेशी

भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना टेढ़ी खीर है"। यह वाक्य "विदेशी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना कठिन है"—वाक्य से कहीं अधिक रोचक है। मुहाविरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि अन्य भाषाओं से उनका अनुवाद करके अपनी भाषा में न रक्खा जाय। अँग्रेजी के मुहावरे "To put the cart before the horse" का हिन्दी अनुवाद "घोड़े के सम्मुख गाड़ी रखना" कितना हास्यास्पद है!

निबन्ध में किसी कवि या लेखक की ऐसी उक्ति देना अच्छा है जो विषय पर ठीक लागू होती हो। पर इस प्रकार की उक्तियों की संख्या अधिक न हो, क्योंकि निबन्ध में निबन्ध-लेखक के विचारों की ही प्रधानता होनी चाहिए। अपने विचारों के समर्थन में किसी विद्वान् के वचन देने से निबन्ध की शोभा बढ़ती है। उक्ति ऐसे स्थान पर रक्खी जाय, जहाँ वह ठीक फब जाय।

निबन्ध-रचना के लिए हास्य अथवा विनोद की सामग्री की भी आवश्यकता होती है। इससे निबन्ध में रोचकता आ जाती है और पाठक का मन नहीं ऊबता। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि हास्य कुरुचि-उत्पादक अथवा मर्यादा के विरुद्ध न हो।

निबन्ध में यथास्थान उदाहरण देकर विचारों को स्पष्ट और पुष्ट करना चाहिए। जहाँ कोई सूक्ष्म विचार प्रकट करना हो वहाँ उदाहरण अवश्य दिया जाय, अन्यथा विचार-प्रकाशन ठीक तरह से न हो सकेगा और पाठक उसे हृदयङ्गम न कर सकेगा। जहाँ विचार साधारण हो वहाँ उसके प्रकाशन के लिए उदाहरण की आवश्यकता नहीं होती, पर उसकी पुष्टि में यदि कोई उदाहरण दे दिया जाय तो निबन्ध की शोभा बढ़ जायगी। यह अवश्य स्मरण रहे कि उदाहरणों की संख्या अधिक न होने पाए।

निबन्ध का प्रारम्भ या प्रस्तावना

शैली में निबन्ध के प्रारम्भ करने का ढँग विशेष महत्त्व रखता है। निबन्ध का प्रारम्भ करना बड़ा कठिन कार्य है। इसमें

सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। ऐसा कोई नियम नहीं है, जो इसके लिए बतलाया जा सके। केवल अभ्यास से इस कला में कुशलता प्राप्त की जा सकती है। आरम्भ आकर्षक होना चाहिए, जिससे पढ़ने वाला निबन्ध की ओर आकृष्ट हो। यदि ऐसा न होगा तो पाठक का मन पहले से ही मुरझा जायगा और वह निबन्ध को अन्त तक पढ़ने के लिए इच्छुक न होगा। अतएव प्रारम्भ में लेखक को विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। आरम्भ की भाषा फड़फड़ाती हुई हो और विचारों में भावात्मक पुट रहे। ज्यों-ज्यों पाठक वाक्यों को पढ़े, त्यों-त्यों उसे अधिक आनन्द मिलता जाय। वस्तुत: निबन्ध की श्रेष्ठता बहुत कुछ उसके आरम्भ पर निर्भर रहती है। कई प्रकार से निबन्ध का आरम्भ किया जाता है।

(१) कोई लेखक आरम्भ में निबन्ध के विषय की परिभाषा देता है या उसका अथ बतलाता है।

(२) कोई लेखक किसी अच्छी कहावत या कविता से निबन्ध का श्री गणेश करता है।

(३) कोई लेखक एकदम (Abruptly) विषय का प्रतिपादन करता हुआ आगे बढ़ता है।

(४) कोई लेखक किसी दृश्य से निबन्ध का आरम्भ करता है।

(५) कोई लेखक आदि में विषय से सम्बन्धित कुछ बातों का उल्लेख करता हुआ विषय में प्रविष्ट होता है।

इसमें से पहला या तीसरा ढँग अच्छा नहीं गिना जाता। चौथा ढँग बहुत आकर्षक होता है, पर यह सब प्रकार के निबन्धों के लिए ठीक नहीं हो सकता। विद्यार्थी को चाहिए कि विषय के अनुसार दूसरे, चौथे या पाँचवें प्रकार से अपने निबन्ध को आरम्भ करे। प्रस्तुत पुस्तक में 'स्वदेश-प्रेम' का आरम्भ दूसरे प्रकार का, 'मेरा एक स्वप्न' का आरम्भ चौथे प्रकार का; और ग्राम-पंचायत-राज्य' का आरम्भ पाँचवें प्रकार का है।

निबन्ध का मध्य

निबन्ध के मध्य भाग में रूप-रेखा की प्रस्तावना और उपसंहार नामक बातों (Points) को छोड़कर अन्य बातों में से प्रत्येक को लेकर उस पर एक-एक पैराग्राफ (परिच्छेद) लिखना चाहिए। एक पैराग्राफ समाप्त करने पर दूसरे में वह बात लिखी जाय जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार पहली बात से हो, जिससे पाठक यह न अनुभव करे कि वह कहीं का कहीं आ गया। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि प्रधान बात विस्तार के साथ लिखी जाय और गौण बात थोड़े में।

निबन्ध का अन्त या उपसंहार

जिस प्रकार निबन्ध का प्रारम्भ कठिन है, उसी प्रकार उसकी समाप्ति भी सरल नहीं। वास्तव में आरम्भ और अन्त निबन्ध के प्राण हैं। अतः लेखक को इनकी रचना में अधिक सावधान रहना चाहिए। यदि निबन्ध को एकदम समाप्त कर दिया जायगा, तो पाठक को धक्का-सा लगेगा और उसका सब आनन्द किरकिरा हो जायगा। इसलिए उपसंहार ऐसा लिखा जाय कि पाठक अबोध रूप से निबन्ध का रसास्वादन करता हुआ अन्त तक पहुँच जाय, जहाँ उसको सर्वाधिक आनन्द की प्राप्ति हो। इस प्रकार के उपसंहार के लिए कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। पर कुछ स्थूल बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ। निबन्ध के अन्त में उसका सारांश दिया जाय अथवा कोई परिणाम निकाला जाय, अथवा शिक्षा दी जाय, अथवा अपनी सम्मति प्रकट की जाय, अथवा किसी कवि या लेखक की उक्ति लिखी जाय, अथवा विषय का भविष्य बतलाया जाय, अथवा विषय का महत्त्व प्रतिपादित किया जाय, अथवा सुधार के लिए अपील की जाय। स्मरण रहे कि अन्तिम पैराग्राफ के लिखने में जितनी अधिक चतुराई से काम लिया जायगा, उतना ही अधिक प्रभाव पाठक पर पड़ेगा और परीक्षार्थी को परीक्षा में उतने ही अधिक अङ्क मिलेंगे। अतः निबन्ध का अन्त विशेष प्रभावशाली होना चाहिए।

शैली के भेद

निबन्ध प्रायः दो प्रकार की शैलियों में लिखे जाते हैं—(१) आलङ्कारिक शैली में; और (२) साधारण शैली में। पहली में विचारों को अलङ्कार-गर्भित भाषा में व्यक्त किया जाता है और दूसरी में सरल और सुबोध भाषा द्वारा। विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने निबन्ध में इन दोनों का समुचित समावेश करे।

निबन्ध के भेद

वैसे तो विषय-भेद से निबन्ध अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जैसे—ऐतिहासिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक आदि। पर साधारणतः उनके तीन भेद किये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं:—

(१) वर्णनात्मक (Descriptive) निबन्ध।
(२) विवरणात्मक (Narrative) निबन्ध।
(३) विचारात्मक (Reflective) निबन्ध।

इन तीन भेदों के अन्तर्गत सभी विषय रक्खे जा सकते हैं।

वर्णनात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी स्थान, दृश्य, भवन, जीवधारी या निर्जीव वस्तु का वर्णन किया जाता है। विद्यार्थी इसमें तभी सफलता प्राप्त कर सकता है, जब वह किसी वस्तु का ऐसा जीता-जागता वर्णन करे कि उसका चित्र-सा उपस्थित हो जाय और उसे ऐसा प्रतीत हो कि वह वर्णित वस्तु को स्वयं देख रहा है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत पुस्तक के 'प्रकृति-सौंदर्य' शीर्षक लेख के कतिपय अंश देखिए—

"कहीं वृक्षों की डालियों पर कीश-मण्डली मचक-मचक कर खेल रही है और डालियाँ बोझ से लचक रही हैं। कहीं चंचल मयूर अपने

पङ्खों से जमीन को झाड़ता हुआ भाग रहा है। कहीं कोई पक्षी अपने पङ्ख फैलाए छाती के बल धूल में बैठा है। कहीं कोई चिड़िया जल को इधर-उधर उछालती हुई स्नान कर रही।"

"सरोवरों में लाल, पीले, नीले और सफेद कमल खिले हैं। उनके चारों ओर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। लहराते हुए नीले जल पर हरी सेवार छाई हुई है।"

विवरणात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी घटना, कहानी आदि का वर्णन किया जाता है। जीवन-चरित्र, ऐतिहासिक घटना, आत्म-कहानी आदि इसी के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार के निबन्धों में घटनाओं का वर्णन कालक्रम के अनुसार होना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा न होगा तो निबन्ध भद्दा हो जायगा। किसी व्यक्ति का जीवन-चरित्र बतलाते हुए यदि पहले उसकी मृत्यु का विवरण दिया जाय और तत्पश्चात् उसके कार्यों का, तो वह किसे अच्छा लगेगा? क्रम के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि घटनाओं का वर्णन इतिहास की भाँति रूखा-सूखा न होकर रोचक हो, जिससे आदि से अन्त तक निबन्ध में पाठक की रुचि बनी रहे।

विचारात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी अमूर्त (Abstract) विषय पर विचार प्रकट किये जाते हैं अथवा किसी विषय पर वाद-विवाद या तर्क किया जाता है; जैसे: स्वच्छता, स्वदेश-प्रेम, सच्चरित्रता, ग्राम-निवास अथवा नगर-निवास, शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो, स्त्री-शिक्षा, बेकारी की समस्या आदि। प्रायः देखा जाता है कि इस प्रकार के निबन्धों के आदि में विद्यार्थी परिभाषा देते हैं; जैसे: स्वच्छता क्या वस्तु है? स्वदेश-प्रेम किसे कहते हैं? मातृ-भाषा क्या है? बेकारी से क्या तात्पर्य है? ऐसा करना अच्छा नहीं। अत्यन्त जटिल विषय हो तो परिभाषा दी भी जा सकती है, पर

साधारण विषय की परिभाषा देना बहुत खटकता है। अमूर्त विषयों पर लिखे गये लेखों में प्रायः विषय के हानि-लाभों का विवेचन रहता है और तर्क-सम्बन्धी निबन्धों में तर्क-वितर्क द्वारा अपने मत का प्रतिपादन किया जाता है। वस्तुतः विचारात्मक निबन्ध लिखना वर्णनात्मक या विवरणात्मक लेख लिखने की अपेक्षा कहीं कठिन हैं। इसके लिये विद्यार्थी को बहुत सोचने की आवश्यकता है। तर्क-सम्बन्धी निबन्ध में विभिन्न मतों को मन में तौलना पड़ता है और बुद्धि-सङ्गत बातों द्वारा अपने मत का प्रतिपादन करना पड़ता है। विचारात्मक निबन्धों के लिये विद्यार्थी का अध्ययन विस्तृत होना चाहिए और उसमें तीव्र बुद्धि भी वाञ्छनीय है।

अन्त में यही कहना है कि निबन्ध-लेखन एक कला है। इसमें कुशल बनने के लिए निरीक्षण, अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है। विद्यार्थी को चाहिये कि वह निबन्ध की पुस्तकों का अवलोकन करे, मासिक पत्र-पत्रिकाओं को पढ़े और प्रति सप्ताह एक निबन्ध लिखकर उसे किसी योग्य व्यक्ति से जँचवा लिया करे। आजकल देखा जाता है कि विद्यार्थी-गण निबन्ध लिखने से जी-चुराते हैं। दुष्परिणाम यह होता है कि वे परीक्षा-भवन में बैठकर बहुत बुरा निबन्ध लिखते हैं और बहुत कम अङ्क पाते हैं। यहाँ तक कि बहुत से विद्यार्थी अच्छा निबन्ध न लिख सकने के कारण ही परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं और इस प्रकार अपने वर्ष भर के परिश्रम पर पानी फेरते हैं।

ग्राम्य जीवन

(१) प्रस्तावना—कवि की उक्ति
(२) ग्राम्य जीवन के गुण—
    (क) प्रकृति की खुली गोद
    (ख) स्वच्छ जल-वायु
    (ग) थोड़े में निर्वाह
    (घ) सरल एवं अकृत्रिम जीवन
(३) ग्राम्य जीवन के दोष—
    (क) गन्दगी
    (ख) अशिक्षा
    (ग) चिकित्सा की अवस्था
    (घ) नगर की सुविधाओं का अभाव
(४) उपसंहार—सारांश

"अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है !
क्यों न इसे सबका मन चाहे ?"

सचमुच ग्राम्य जीवन बहुत अच्छा होता है। गाँव प्रकृति की खुली गोद है, जिसमें धनी-निर्धन, बालक-वृद्ध, नर-नारी सभी को समान रूप से विहार करने का सौभाग्य प्राप्त है। गाँव प्रकृति का दर्पण है, जिसमें प्रत्येक ऋतु की रंग-विरंगी छटा झलकती है और दर्शकों का मन लुभाती है। जहाँ देखिए वहीं अनुपम सौन्दर्य दिखाई देता है। कहीं हरी-भरी घास है, तो कहीं लहलहाते हुए खेत। कहीं पक्षी द्रुम-लताओं के साथ अठखेलियाँ कर रहे हैं, तो कहीं रंग-विरंगे महकते हुए फूलों पर तितलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। कहीं वनस्थली में हरिण हरिणियों के साथ विचर रहे हैं, तो कहीं मयूर मयूरियों के साथ नाच रहे हैं। जलाशयों में लहराते हुए जल पर हरी सेवार छाई हुई है। सरोवरों में कमल खिले हुए हैं, उन पर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। बौरों से लदी हुई अमराइयों में

कोयल की 'कुहू' 'कुहू' कानों में अमृत उँडेलती है। कुंजों में पक्षियों का कलरव हृदय में आनन्द का सञ्चार कर देता है। ऐसा आनन्द और कहाँ मिल सकता है?

गाँव में स्वच्छ जल-वायु की सुविधा भी है। प्रातःकाल पर्यटन को बाहर निकल जाइए। शीतल, मंद तथा सुगंधित वायु से आपका मन बाग-बाग हो जायगा। शुद्ध वायु आपको अपूर्व स्फूर्ति, अपूर्व शक्ति प्रदान करेगी। कल-कल नाद करते हुए झरने, वक्र गति से प्रवाहित होती हुई नदी, अथवा कुएँ के निर्मल शीतल एवं मधुर जल में से दो चुल्लू पानी पी लीजिए, देखिए चित्त को कैसी शांति मिलती है!

गाँव में थोड़े में निर्वाह हो जाता है। वहाँ के निवासियों की आवश्यकताएँ कम होती हैं। और उनमें से अधिकांश की पूर्ति उनके खेतों में से हो जाती है। न उन्हें शहरों का मुँह ताकना पड़ता है और न कस्बों का। घी-दूध की वहाँ कमी नहीं। खाने-पीने के पदार्थों का वहाँ बाहुल्य है। अतः निर्वाह के लिए उन्हें अधिक धन व्यय नहीं करना पड़ता।

ग्राम्य जीवन सरल तथा अकृत्रिम होता है। गाँव के निवासी सीधे और भोले होते हैं। नगर-निवासियों की भाँति छल-छिद्र और दाँव-पेंच उनमें नहीं होता। घर पर आने वाले का सत्कार करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। Plain living (सादा-जीवन) उनका लक्ष्य है। भोजन, वस्त्र तथा रहन-सहन में सादगी उन्हें प्रिय है। दिखावटीपन से उन्हें घृणा है। कृत्रिमता से उन्हें अरुचि है बाहरी तड़क-भड़क, टीमटाम में वे अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा व्यय करना अनुचित समझते हैं।

ग्राम्य जीवन में जहाँ इतने आनन्द हैं; ग्राम्य जीवन में जहाँ इतने गुण हैं, वहाँ कुछ दोष भी हैं। गाँव में स्वच्छता का नितान्त अभाव पाया जाता है। गाँव को गन्दगी की मूर्ति कहना अत्युक्ति नहीं होगी। जहाँ देखिए वहीं घूरे लगे हैं, मोरियों का गन्दा पानी बह रहा है। जिधर निकल जाइए उधर ही कूड़ा-करकट फैला

हुआ है। गाँव में घर के द्वार पर कूड़ा फेंकने का बुरा रिवाज है। उसे बटोर कर दूर फेंकने का कष्ट कोई नहीं करता। स्थान-स्थान पर गड्ढों में भरा हुआ जल सड़ा करता है। गाँव वाले चाहे जहाँ मल-मूत्र विसर्जन के लिए बैठ जाते हैं। पशुओं का पेशाब तथा गोबर भी सड़ता रहता है। उस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। दुर्गन्ध के मारे आपको प्राणायाम साधना पड़ेगा। वर्षा के दिनों में तो गाँव साक्षात् नरक हो जाता है। गन्दगी के कारण गाँव में सदैव कोई न कोई रोग डेरा डाले रहता है। रोग-कीटाणु और मच्छर मोरियों, घूरों तथा गन्दे पानी के गड्ढों में पलते रहते हैं। कभी मलेरिया का प्रकोप होता है, तो कभी हैजा का। कभी चेचक का दौरदौरा होता है, तो कभी मोतीझरा का।

गाँव में अशिक्षा का अखंड साम्राज्य है। ग्रामीण जन निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं। उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है। बड़े-बड़े गाँवों में भले ही पाठशालाएँ मिल जाएँ, पर यदि कहीं पाठशाला है भी तो वहाँ पुस्तकालय अथवा वाचनालय नहीं है जिसकी सहायता से गाँव वाले देश-विदेश के समाचारों से अवगत रह सकें और ज्ञान को बढ़ा सकें। फलतः उनमें कूप-मण्डूकता पाई जाती है। मानसिक विकास के कारण उनमें लड़ाई-झगड़े और मुकदमे-बाजी होती रहती है। उनकी अशिक्षा का लाभ पटवारी, सिपाही आदि सरकारी कर्मचारी उठाते हैं, जो उन्हें लूटते रहते हैं।

ग्रामों में चिकित्सा की सुव्यवस्था नहीं है। न वहाँ चिकित्सालय हैं, न वहाँ अच्छे डाक्टर-वैद्य हैं। वहाँ वाले कुत्ते की मौत मरते हैं। चिकित्सा के अभाव में ग्राम्य जीवन दुःखदायी हो जाता है।

हमारे गाँव नगर की सुविधाओं से भी वञ्चित हैं। न वहाँ पक्की सड़कें हैं, न वहाँ रेल की सुविधा है, न वहाँ बिजली का दम-दमाता हुआ प्रकाश है, न वहाँ बिजली के पंखे हैं, न वहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन हैं, न वहाँ टेलीफून हैं, न वहाँ तारघर हैं,

धन-जन की रक्षा का भी हमारे गाँवों में सुप्रबन्ध नहीं है। आए दिन लूट-मार की घटनाएँ घटित होती हैं।

सारांश यह है कि यद्यपि ग्राम्य जीवन में उपर्युक्त दोष विद्यमान हैं, तथापि जो आनन्द ग्राम्य जीवन को प्राप्त हैं वे नागरिक जीवन को नहीं। घी, दूध, मक्खन ताजी साग-सब्जी, कंद-मूल-फल, स्वास्थ्यवर्धक जल वायु और प्राकृतिक सौंदर्य गाँव की अच्छाइयाँ हैं। पंचायत-राज-योजना के श्रीगणेश से अब हमारे गाँव शनैः शनैः दोष-मुक्त होते जा रहे हैं। गंदगी, अशिक्षा, चिकित्सा का अभाव, पक्की सड़कों की कमी, धन-जन की अरक्षा आदि के निराकरण के हेतु उचित प्रयत्न किए जा रहे हैं। आशा है निकट भविष्य में हमारे ग्राम्य स्वर्ग-तुल्य हो जायँगे और ग्राम्य जीवन-वरदान-स्वरूप।

किसी तीर्थ-स्थान का वर्णन

(तीर्थराज प्रयाग)

(१) प्रस्तावना—प्रयाग की धार्मिक महत्ता
(२) स्थिति
(३) संगम का दृश्य
(४) दर्शनीय धार्मिक स्थान
(५) प्राचीन प्रयाग
(६) उपसंहार—सारांश

"को कहि सकै प्रयाग प्रभाऊ,
कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।"

वास्तव में प्रयाग का प्रभाव अवर्णनीय है। इसकी धार्मिक महत्ता समस्त तीर्थ-स्थानों से बढ़कर है। तभी तो इसे तीर्थराज के नाम से विभूषित किया गया है। देश के कोने-कोने से धार्मिक व्यक्ति यहाँ आते हैं और यहाँ की यात्रा से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। यहाँ प्रतिवर्ष माघ मास में एक धार्मिक मेला लगता है जो 'माघ-मेला' के

नाम से प्रसिद्ध है। प्रति छः वर्ष बाद 'कुम्भी' और प्रति बारह वर्ष व्यतीत होने पर 'कुम्भ' नामक मेला लगता है। इन अवसरों पर अपार जन-समूह उमड़ता है और तीर्थराज के दर्शन का पुण्य लूटता है।

प्रयाग हमारे देश की पुनीत नदियों, गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर, जो त्रिवेणी कहलाता है, स्थित है। सरस्वती आजकल अदृश्य हैं। क्यों ? सीताजी की कल्पित उक्ति सुनिए—

"संगम-शोभा निरख निमग्न हुई यहाँ।
धूप-छाँह का वस्त्र-मात्र उसका बड़ा,
मन्द पवन से लहर रहा है यह पड़ा।"

यहाँ गंगा-यमुना को सरस्वती का धूप-छाँह-वस्त्र माना गया है। प्रयाग को गंगा बाईं ओर से तथा जमुना दाहिनी ओर से घेरे हुई हैं। इसे दोनों ने ललककर अपनाया है। इसे दोनों के स्नेहाञ्चल में खेलने का सौभाग्य उपलब्ध है। इसे दोनों की वात्सल्य-पूर्ण गोद मिली है।

संगम की शोभा का क्या कहना ! अनुपम है। देखिए, गोस्वामी तुलसीदासजी क्या कहते हैं—

"सोहै सितासित को मिलिबो,
तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं,
बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥"

कितनी सुन्दर उक्ति है ! सचमुच गंगा-यमुना की श्वेत-श्याम धाराओं का पारस्परिक मिलन और उनसे उत्पन्न तरंगों का दृश्य हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों वर्षा की घटा से शरद्-घटा आ मिली हो। तट पर नावों का जाल-सा बिछा रहता है, जिनमें बैठकर यात्री संगम पर स्नान करने के निमित्त जाते हैं। वहाँ का दृश्य मनोहर होता है। कोई जल में गोते लगाता है, तो कोई तैरता है। कोई दुग्ध-पुष्पादि से त्रिवेणी की पूजा करता है, तो कोई ध्यान-मग्न होकर भगवान

की वन्दना करता है। कोई पितरों को पिंड-दान करता है, तो कोई तीर्थराज की नौकारूढ़ मूर्ति के दर्शन करता है। कोई पण्डों को दान-दक्षिणा देता है, तो कोई काँच अथवा धातु-पात्र में त्रिवेणी-जल भरता है। नर-नारियों की पर्याप्त भीड़ रहती है। हिलोरों के कारण नौकाएँ डगमगाती हैं। पंडों की रंग-बिरंगी पताकाएँ वायु के थपेड़ों से फरफराती हुई उड़ती हैं। नावों के डाँडों से छिहरती हुई बूँदें मोतियों को मात करती हैं। संगम का कितना सुहावना दृश्य है! कैसी अनूठी छवि है!

प्रयाग में भरद्वाज-आश्रम है जहाँ सुविख्यात भरद्वाज मुनि निवास करते थे। यह आश्रम पं० जवाहरलाल नेहरू के 'आनन्द-भवन' के सन्निकट है। स्वयं रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी सहित भरद्वाज जी के आश्रम पर पधारे थे। मुनि ने कंद मूल-फल से उनका अतिथि-सत्कार किया था। अन्य धार्मिक स्थान वेणी माधवजी का मन्दिर है। किले के अन्दर अक्षयवट है, जिसकी पूजा का बहुत माहात्म्य है। यहाँ कई बड़े-बड़े देव मन्दिर और महन्तों के अखाड़े भी हैं।

प्राचीन काल में प्रयाग का धार्मिक गौरव विशेष था। यहाँ धर्म-जिज्ञासु और महात्मा रहा करते थे। भरद्वाजजी के यहाँ संत-समागम होता था। याज्ञवल्क्यजी ने यहीं भरद्वाजजी को रामकथा सुनाई थी। महान् सम्राट् अशोक प्रयाग में ही धर्म-सभा बुलाते थे और धर्म का प्रचार करते थे। वे यहीं प्रतिवर्ष सहस्रों मुद्राओं का दान करते थे। पुराने समय से ही प्रयाग आर्य-संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र रहा है। आज भी यहाँ संस्कृत के कई विद्यालय तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रधान कार्यालय है।

सारांश यह है कि 'सकल सुमङ्गल-देनी', पुण्य सलिला त्रिवेणी ने प्रयाग को जो धार्मिक महत्ता प्रदान की है, जो पवित्रता प्रदान की है, जो सांस्कृतिक-गरिमा प्रदान की है, वह अन्यत्र अलभ्य है। वीतराग मुनि भरद्वाज के सम्पर्क के कारण भी प्रयाग का स्थान बहुत ऊँचा उठ गया है। अक्षयवट भी भक्त-लोगों के आकर्षण की

वस्तु है। भारत में प्रयाग से बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है। हो भी कैसे? वह स्थान जिसने सुरसरि भगवती भागीरथी को अपने निकट आकृष्ट कर लिया, वह स्थान जिसने तरणि-तनया कालिन्दी को अपने पास बुला लिया, वह स्थान जहाँ रामभक्ति में चूर रहने वाले महामुनि भरद्वाज ने निवास किया, वह स्थान जिसने भारत-माता के अनन्य सेवक श्री जवाहरलाल नेहरू को उत्पन्न किया, क्यों न हिन्दू-मात्र की श्रद्धा का पात्र बने, क्यों न हिन्दू नर-नारियों के हृदय में उच्च आसन ग्रहण करे, क्यों न अगणित धार्मिक व्यक्तियों की धर्म-पिपासा शान्त करे? 'हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागर-संगमे' वाले श्लोक में तीर्थराज प्रयाग की धार्मिक महत्ता ठीक ही प्रतिपादित हुई है। स्वयं भगवान् राम ने अपने श्रीमुख से इसकी महिमा का गान किया है, जो इस प्रकार है—

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी
माधव सरिस मीत हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू।
पुण्य प्रदेश देश अति चारू॥
क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा।
सपनेहुँ जिन्ह प्रतिपच्छ न भावा॥
सेन सकल तीरथ वर बीरा।
कलुष अनीक दलन रणधीरा॥
संगम सिंहासन सुठि सोहा।
छत्र अछयबट मुनि-मन मोहा॥
चमर जमुनजल गंग तरंगा।
देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

सेवहिं सुकृति साधु सुचि, पावहिं मन सब काम।
बंदी वेद पुराण गण, कहहिं विमल गुणग्राम॥

उत्तर-प्रदेश में सहकारिता आन्दोलन

(१) प्रस्तावना—सहकारिता की आवश्यकता
(२) सहकारी समितियों के प्रकार—(क) बहुधंधी-समिति (ख) दूध-समिति (ग) घी-समिति (घ) गन्ना विकास-समिति (ङ) सहकारी कृषि-समिति (च) उपभोक्ता-भंडार
(३) सहकारिता से लाभ
(४) सहकारिता-आन्दोलन की प्रगति
(५) मार्ग में अड़चनें
(६) उपसंहार—सहकारिता आन्दोलन का भविष्य

भारत जैसे निर्धन देश के लिए सहकारिता की आवश्यकता कौन स्वीकार नहीं करेगा ? सहकारिता हमारे ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगी। हमारा देश कृषि-प्रधान है। यहाँ की ७५ प्रतिशत से भी अधिक जनता कृषि-कार्य से अपनी जीविका उपार्जन करती है। कृषकों की दशा दयनीय है। उनके पास छोटे-छोटे खेत हैं, पैसा नहीं है, बल्कि वे ऋण-ग्रस्त हैं। उनके खेतों से बहुत कम उपज होती है और वह भी प्रायः लगान एवं ऋण चुकाने में समाप्त हो जाती है। बेचारों के पास खाने भर को अन्न नहीं बच पाता। ऐसी दशा में सहकारिता ही उनकी रक्षा कर सकेगी। यही हमारे भूखे-नंगे किसानों की भोजन-वस्त्र की समस्या हल करेगी। यही हमारे किसानों के अस्थि-पंजर शरीर में नवीन रक्त, नवीन आभा, नवीन जीवन का संचार करेगी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें निजी सम्पत्ति पर मनुष्य का अधिकार ज्यों का त्यों बना रहता है और इसके साथ ही बहुत से लोग अपने साधनों और परिश्रम को सामूहिक रूप प्रदान करके अधिक उत्पादन में समर्थ हो सकते हैं।

अतः विदेशी शासन में वर्त्तमान शताब्दी के आरम्भ में ही ग्रामीण जनता के लाभार्थ सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। किन्तु उस युग में सहकारिता के विकास की ओर हमारी

विदेशी सरकार ने अधिक ध्यान नहीं दिया। केवल सहकारी समितियों की स्थापना की गई जिनका एक मात्र कार्य लेन-देन करना था। जन-प्रिय सरकार के शासन-भार ग्रहण करते ही सहकारिता आन्दोलन को पर्याप्त बल मिला और आज प्रत्येक प्रदेश में यह आन्दोलन द्रुत गति से बढ़ रहा है। हमारे प्रदेश में आज ३६ सहस्र सहकारी समितियाँ हैं, जिनकी सदस्य संख्या ३० लाख से अधिक है। ये पाँच प्रकार की हैं—१) बहुधंधी-समिति (२) दूध-समिति (३) घी समिति (४) गन्ना विकास-समिति (५) सहकारी कृषि-समिति और (६) उपभोक्ता-भंडार। बहुधंधी-समितियाँ लेन-देन, अच्छा बीज, रासायनिक खाद, कृषि के औजार, उपज की बिक्री, पशुओं की नस्ल सुधार, गृह-उद्योगों का विकास, उपभोक्ता-सामग्री आदि की व्यवस्था करती हैं। दूध-समितियाँ अपने सदस्यों से दूध एकत्र करके नगरों में स्थापित अपने दूध संघों को पहुँचाती हैं, जहाँ से वह ग्राहकों में वितरित किया जाता है। इस समय लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, मेरठ, हलद्वानी, और नैनीताल में दूध-संघ हैं। इन समितियों की संख्या ४३० है। हमारे प्रदेश में इस समय १० सहकारी घी-संघ कार्य कर रहे हैं। इनके अन्तर्गत कार्य करनेवाली समितियों की संख्या ५६६ है। ये समितियाँ घी-उत्पादन के प्रमुख क्षेत्रों में स्थापित हैं और गाँवों में शुद्ध घी एकत्र करके अपने संघों में भेज देती हैं जहाँ उसकी बिक्री की व्यवस्था की जाती है। गन्ना-विकास-समितियों की संख्या इस समय १०४ है। इनका कार्य गन्ने की बिक्री की व्यवस्था करने के अतिरिक्त गन्ना-विकास-सम्बन्धी विभिन्न कार्य करना भी है। सहकारी कृषि-समितियों की स्थापना भी की जा रही है। इनमें झाँसी जिले के नैनवारा और दनवारा ग्रामों की सहकारी कृषि-समितियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इस समय २० से अधिक सहकारी कृषि-समितियाँ विभिन्न जिलों में संतोषजनक रीति से कार्य करा रही हैं। इनके सदस्य अपनी-अपनी भूमि समिति को सौंप देते हैं। सारी भूमि की जुताई, बुआई, सिंचाई,

फसल की कटाई, उपज की बिक्री आदि कार्य इन समितियों की पंचायतों द्वारा होता है।

सहकारिता-आन्दोलन ने नगरों में भी प्रगति की है। उपभोक्ता सामग्री की कमी और सरकारी नियंत्रण के फलस्वरूप नागरिक-जनता को इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता थी जिनके द्वारा चोर-बाजार और मुनाफाखोरी से बचा जा सके। उपभोक्ता-भंडारों के संगठन ने इस आवश्यकता की पूर्ति कर दी। प्रायः समस्त निमंत्रित नगरों में उपभोक्ता भंडार खुल गये हैं। इस समय उनकी संख्या लगभग २५० है। ये उत्तर-प्रदेश की राशन पाने वाली लगभग दो-तिहाई जनता की सेवा कर रहे हैं।

सहकारी समितियों के कई लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि लोग पारस्परिक सहयोग की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करते हैं, आपस में मिलकर काम करना सीखते हैं। 'अपनी-अपनी ढापली और अपना-अपना राग' की मनोवृत्ति दूर होती है। इसके अतिरिक्त पृथक् रूप से कार्य करने की अपेक्षा सामूहिक रूप से कार्य करने में व्यय कम होता है और आय अधिक। गरीब लोग धनिकों के आर्थिक शोषण से भी मुक्ति पा जाते हैं। प्रबन्ध में भी सुविधा होती है। एक व्यक्ति की अपेक्षा अनेक व्यक्ति किसी कार्य को सरलता से अच्छाई के साथ कर सकते हैं।

सहकारिता-आन्दोलन ने गत पाँच वर्षों में पर्याप्त प्रगति की है। इस काल में सहकारी-समितियों की संख्या एवं कार्य-क्षेत्र दोनों में ही आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। यह प्रयत्न किया गया है कि गाँव-गाँव में सहकारी-समितियों की स्थापना हो और ग्रामीण जनता की प्रायः सभी आवश्यकताओं की पूर्ति ये समितियाँ करें।

पर मार्ग में कतिपय अड़चनें हैं जिनके कारण इन समितियों का जितना विस्तार होना चाहिए उतना नहीं हुआ। पहली अड़चन तो यह है कि गाँवों में अशिक्षा के कारण सहकारी-समितियों के कार्य-संचालन तथा आय-व्यय लेखा ठीक रखने के लिए उपयुक्त मनुष्यों

की कमी है। दूसरी अड़चन यह है कि ग्रामीण लोगों में दायित्व की भावना नहीं है। वे बेईमानी करने अथवा अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को अनुचित लाभ पहुँचाने में नहीं हिचकिचाते। तीसरी अड़चन यह है कि निर्धनता के कारण कृषक सहकारी-समितियों में अधिक रुपया नहीं लगा सकते। चौथी अड़चन यह है कि सहकारिता के उद्देश्य एवं अभिप्राय से अपरिचित होने के कारण अधिकांश ग्रामीण जनता का सहकारी समितियों में कोई विश्वास नहीं है।

सारांश यह है कि यद्यपि सहकारिता उत्तम वस्तु है तथापि ग्रामीण जनता उससे अधिक लाभान्वित नहीं हो रही है। इसका एक कारण यह भी है कि हमारे यहाँ के लिए यह आन्दोलन अभी नया है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता में सहकारिता कि भावना उत्पन्न की जाय। तभी यह आन्दोलन हमारे वर्त्तमान दूषित आर्थिक ढाँचे को बदलने में समर्थ हो सकेगा। इस आन्दोलन ने गत वर्षों में जो प्रगति की है उससे स्पष्ट हो जाता है कि जनता ने इसका स्वागत किया है। उसने सहकारिता की उपयोगिता पहचान ली है और अब उसके सहयोग से इस जनोपयोगी कार्य के विकास में और अधिक सहायता मिलेगी। सहकारिता-आन्दोलन का भविष्य उज्ज्वल है और हमें आशा है कि यह गाँवों की कायापलट करने में समर्थ होगा।

अपने विद्यालय के आदर्श विद्यार्थी का चित्रण

(१) प्रस्तावना—विद्यार्थी की महत्ता

(२) हमारे विद्यालय के आदर्श विद्यार्थी का चित्रण—(क) परिश्रमी तथा अध्ययनशील है, (ख) जिज्ञासु है, (ग) एकाग्र चित्त से पढ़ता है और अध्यापकों की बताई हुई बातें सुनता है, (घ) खेल-कूद में भाग लेता है, (ङ) सादगी-प्रिय है, (च) विनम्र है, (छ) आज्ञाकारी हैं, (ज) अध्यापकों का आदर करता है, (झ) संयमी है व (ञ) समय का पाबंद है।

(३) उपसंहार—हमको उसका अनुकरण करना चाहिए।

आज का विद्यार्थी कल का नागरिक है। उस पर राष्ट्र की भावी उन्नति निर्भर है। वह यदि आदर्श हुआ तो भविष्य में राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है, देश में सुधार की सुरसरि प्रवाहित कर सकता है, समाज की कुरीतियों एवं अन्ध-विश्वासों का अन्त कर सकता है, अपने यहाँ ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैला सकता है, जाति का नैतिक स्तर उँचा उठा सकता है। हमारे विद्यालय में शशिभूषण ऐसा ही विद्यार्थी है।

वह बहुत परिश्रमी तथा अध्ययनशील है। दिन-रात पुस्तकों से चिपटा रहता है। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का अध्ययन भी उसे प्रिय है। ज्ञान-वृद्धि के लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहता है। ज्ञान की एक किरण मिलने की भी जहाँ उसे आशा होती है वहाँ जाने में वह आलस्य नहीं करता। विद्वानों के व्याख्यान एवं वाद-विवाद से वह अपने ज्ञान-भंडार को भरता रहता है।

शशिभूषण जिज्ञासु है। विभिन्न विषयों के अध्यापकों से प्रश्न पूछ-पूछ कर अपनी शंकाओं का समाधान एवं कठिनाइयों का निराकरण करता रहता है। ऐसा करने में उसे तनिक भी संकोच नहीं है। जो बात नहीं जानता उसे सदैव इच्छा रहती है। छुद्र से छुद्र व्यक्ति से भी कोई बात सीखने में यह आगा-पीछा नहीं करता। उसका सिद्धान्त है—

"उत्तम विद्या लीजिए जदपि नीच पै होय"

शशिभूषण एकाग्रचित से पुस्तकों का पठन करता है और अध्यापकों की बताई हुई बातें सुनता है। पढ़ते समय अपने ध्यान को इधर-उधर नहीं जाने देता। चित्त की चंचलता उसके पास नहीं भटकती। जिस समय ध्यानावस्थित होकर वह अध्ययन में संलग्न होता है उस समय उसे दीन-दुनियाँ का कुछ ज्ञान नहीं रहता, भूख-प्यास नहीं लगती, समय व्यतीत होने का पता नहीं चलता, तन्मयता एवं तल्लीनता पाई जाती है।

जिस प्रकार शशिभूषण पढ़ने में दत्तचित्त रहता है। उसी प्रकार वह खेल-कूद में भी चाव से भाग लेता है। 'Work while you work and play while you play.' (जब काम करो खूब काम करो और जब खेलो खूब खेलो) उसके जीवन का सिद्धान्त है। खेल में भी वह तल्लीन हो जाता है, उस समय उसे पढ़ने की बात नहीं सुहाती, पढ़ाई की चर्चा अखरती है।

शशिभूषण को सादगी-प्रिय है। Plain living (सादा जीवन) उसका सिद्धान्त है। उसके भोजन, वस्त्र, मनोरञ्जन सभी में सादगी पाई जाती है। दिखावटीपन तथा फैशन को वह घृणा करता है। टीम-टाम और तड़क-भड़क से उसे अरुचि है। सिनेमा, सिगरेट, नाच-रंग, क्रीम-पाउडर, सूट-बूट आदि में वह अपने माता-पिता की पसीने की कमाई का अपव्यय नहीं करता। फैशन के गुलाम विद्यार्थियों को देखकर वह हँसता है और कहता है कि व्यर्थ रुपये उड़ाने में इन्हें लज्जा नहीं आती।

शशिभूषण विनम्रता की साक्षात् मूर्ति है। अहंभाव उसे छू तक नहीं गया है। यद्यपि वह परीक्षा में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त करता है और उसकी बुद्धि कुशाग्र है तथापि उसमें तनिक भी गर्व नहीं है। वह अपने को एक तुच्छ छात्र समझता है। कमजोर से कमजोर विद्यार्थी की बात ध्यानपूर्वक सुनता है और उसको आवश्यक एवं उचित सहायता प्रदान करने के लिए सदैव सन्नद्ध रहता है। वह गुरुजनों तथा सहपाठियों को हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक अभिवादन करता है। प्रत्येक व्यक्ति उसकी सुशीलता की भूरि-भूरि सराहना करता है।

शशिभूषण में आज्ञाकारिता का गुण भी विद्यमान है। वह अध्यापकों की आज्ञा का सहर्ष पालन करता है। ऐसा करने में उसे तनिक भी आलस्य नहीं होता। वह कैसे ही आवश्यक कार्य में व्यस्त क्यों न हो, आज्ञा पाते ही उससे विरत हो जाता है और ऐसा करने में यदि उसका कार्य बिगड़ जाय तो भी वह

उसकी चिन्ता नहीं करता। उसका विश्वास है कि गुरुजनों के आज्ञा-पालन में सर्वथा हित सन्निहित रहता है। भगवान् राम ने स्वयं कहा है—

"अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुयस के, बसहिं अमरपति ऐन॥"

शशिभूषण अध्यापकों का बहुत आदर करता है। उनके प्रति उसकी असीम श्रद्धा है। अतः सभी अध्यापकों के स्नेह और कृपा का वह पात्र है। सभी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। फिर भला क्यों न विद्यादात्री उस पर प्रसन्न हो, क्यों न भगवती वीणापाणि का प्रसाद उसे मिले?

शशिभूषण एक संयमी व्यक्ति है। आहार विहार और निद्रा में वह संयम से काम लेता है। वह अल्पाहारी है और कम सोता है। उसका सोने का समय रात्रि के १० बजे से प्रातःकाल ४ बजे तक है। उसने अपनी चित्त-वृत्तियों को, इच्छाओं को वशीभूत कर रखा है। रात्रि में जब सर्वत्र शांति विराजती है, जब सब लोग निद्रा-देवी की शीतल गोद में विश्राम करते हैं, तब वह एक योगी की भाँति अध्ययन रूपी योग-साधना में संलग्न रहता है, दीपक के टिमटिमाते हुए प्रकाश में विद्या का अलख जगाता है। वही उसका साध्य है। वही उसका सर्वस्व है। उसी पर उसका तन, मन और धन निछावर है।

शशिभूषण समय का पाबंद भी है। उसका प्रत्येक कार्य निर्धारित समय पर होता है। क्या मजाल है कि समय चूक जाय। भोजन, विश्राम, अध्ययन, खेल-कूद, मनोरंजन, शौचादि सबका समय निश्चित है। इससे उसके कार्यों में सुचारुता एवं नियमबद्धता आ गई है और उन्हें वह सुगमतापूर्वक कर लेता है। अवधि के अन्दर ही उसके समस्त कार्य समाप्त हो जाते हैं। समय के अभाव की शिकायत करता हुआ वह कभी नहीं देखा गया।

सारांश यह है कि शशिभूषण हमारे विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए आदर्श है। हमें उसके पद-चिह्नों पर चलना चाहिए। आज के

विद्यार्थी-समाज के लिए वह एक सच्चा पथ-प्रदर्शक है। आज हम अधःपतित हैं। आज हम पढ़ने-लिखने से जी चुराते हैं, परिश्रम से दूर भागते हैं, उद्दंड हैं, असंयमी हैं, अनुशासन-हीन हैं, अध्यापकों की अवज्ञा करते हैं, उन पर हाथ उठाने में भी नहीं हिचकिचाते, नियमोल्लंघन में अपनी शान समझते हैं, फैशन पर फिदा हैं, चरित्रहीन हैं। शशिभूषण के अनुकरण से सारे विद्यार्थी-समाज का कल्याण होगा। प्राचीन काल के निम्नांकित लक्षणों की आज भी हम विद्यार्थियों को नितांत आवश्यकता है—

"काक चेष्टा वकुल ध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिम पंच लक्षणम् ॥"

'अहा बाल्य जीवन भी क्या है !'

(१) प्रस्तावना—बाल्य जीवन की विशेषता
(२) बाल्य जीवन के आनन्द—
  (क) कोई चिन्ता नहीं होती।
  (ख) कोई दायित्व नहीं होता।
  (ग) मस्ती रहती है।
  (घ) काल्पनिक दुनिया में विचरण होता है।
  (ङ) रँगीली रचना में संलग्नता रहती है।
(३) बाल-सुलभ प्रवृत्तियाँ
(४) उपसंहार—सारांश

'अहा बाल्य जीवन भी क्या है !' बाल्यावस्था भी कैसी मनोरम अवस्था है। इसमें कितना आकर्षण, कितना माधुर्य, कितनी रमणीयता, कितनी सरसता है! बाल्य जीवन की समता कोई जीवन नहीं कर सकता। बालक विश्व की अनुपम विभूति है, विधाता की अद्वितीय रचना है, प्रकृति की अनूठी निधि है, माता-पिता के नेत्रों का तारा है, अँधेरे घर का प्रकाश है। उसमें दैवी प्रभा है, अलौकिक शक्ति है। वह संसार की कलुषित छाया से

अछूता है। पवित्रता का प्रतीक है। वह झोंपड़ी और चिथड़ों में राज्य-सुख का अनुभव करता है। प्रकृति ने उसे चंचल और नटखट बनाया है। चुपचाप एक स्थान पर बैठना उसके लिए असंभव है। शक्ति-आधिक्य के कारण वह कभी थकान का अनुभव नहीं करता और दिनभर कुदकता, फुदकता, कूदता, फाँदता, खेलता फिरता है।

बाल्य-जीवन के अनेक आनन्द हैं। बालक को किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं होती। जब भूख लगी तब खाना खा लिया। जब प्यास लगी तब पानी पी लिया। खाने-पीने के जिस पदार्थ की रुचि हुई उसे मचल कर माता-पिता से प्राप्त कर लिया। कभी दही बड़े को चाट खाई तो कभी भल्ले की। कभी कचौड़ी खाई तो कभी समोसा। कभी लाइमजूस पर पैसे खर्च किए तो कभी टाफी पर। कभी रसगुल्ला पर हाथ साफ किया तो कभी चमचम पर। कभी मलाई से रसनेन्द्रिय तृप्त की तो कभी लच्छेदार रबड़ी से। कभी आइसक्रीम का स्वाद लिया तो कभी सुगन्धित शर्बत का। कभी सेव खाया तो कभी संतरा। कभी आम खाया तो कभी अनार। कभी काजू खाया तो कभी अखरोट। कभी बादाम खाया तो कभी मूँग-फली। इसी प्रकार मनोरंजन की इच्छित वस्तुएँ भी बालक को उपलब्ध हो जाती हैं। इसके लिए उसके पास रोना, मचलना एवं रूठना अमोघ साधन हैं। न उसे कमाई की चिन्ता है और न धन के सदु-पयोग की। दूध के कुल्ले करने में उसका मन मैला नहीं होता।

बाल्य जीवन में कोई दायित्व नहीं होता। बालक पूर्णतया स्वच्छन्द होता है। उस पर किसी प्रकार का कोई भार नहीं होता। न उसके जिम्मे कोई कार्य होता है और न कोई प्रबन्ध। वह अपने कार्यों के लिये अपने को किसी के प्रति उत्तरदायी भी नहीं समझता। इस प्रकार की चेतना उसमें होती ही नहीं। वह जो कुछ करता है 'स्वान्तः सुखाय' करता है, खेल-खेल में करता है। काम के बनने-बिगड़ने या परिणाम का उसे ज्ञान कहाँ? खूब खाना, खूब खेलना और खूब घूमना-फिरना बचपन का प्रसाद है।

बाल्य जीवन में अजीब मस्ती रहती है। बालक सदैव प्रसन्न-चित्त एवं निश्चिन्त रहता है। वह खेल-कूद में मग्न रहता है और मौज से समय व्यतीत करता है। वह पागल की भाँति बेसुध होकर विभिन्न क्रीड़ाओं में संलग्न हो जाता है और भूख-प्यास को भूल जाता है ! कभी-कभी तो वह इतना तल्लीन हो जाता है कि माता-पिता द्वारा भोजन के लिये बुलाने पर भी अपने खेल से विरत नहीं होता। देखिये बालक राम की दशा—

"भोजन करत बुलावत राजा।
नहीं आवत तजि बाल-समाजा ॥"

बालक की दुनिया अलौकिक होती है। वह अतीन्द्रिय जगत् में सैर करता है, काल्पनिक दुनिया में विचरता है। उसकी दुनिया के नर-नारी हाड़-माँस के नहीं होते और न कभी मरते ही हैं। उन पर प्रकृति का कोई नियम लागू नहीं होता। न वे कुछ खाते हैं, न कुछ पीते हैं। फिर भी बहुत कार्य करते हैं, बालक के हाथ के खिलौने बनकर दिन भर क्रियाशील रहते हैं।

इस काल्पनिक दुनिया का निर्माता एवं नियामक स्वयं बालक ही होता है। वही अपनी स्वप्निल सृष्टि की रचना करता है। सारे दिन अपनी रंगीली रचना में तन्मयता के साथ जुटा रहता है। कल्पना की तूलिका से वह सुन्दर से सुन्दर रंग भरकर बढ़िया से बढ़िया चित्र उपस्थित करता है। उसकी बुद्धि विश्लेषणात्मक होती है। वह संसार की प्रत्येक वस्तु का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। आप उसे कोई यंत्र दीजिए। वह उसके कल-पुर्जे खोलने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार के प्रयत्न में कभी-कभी यंत्र टूटकर बेकार भी हो जायगा, जिसके लिए उसे दंड का भागी होना पड़ेगा।

बाल्य-जीवन में कतिपय प्रवृत्तियों की प्रमुखता रहती है। स्पर्द्धा (होड़) करना बालकों का स्वभाव है। कोई बालक अपने को दूसरे से हीन नहीं समझता और न किसी को अपने से बढ़कर देख सकता है। देखिये बालक कृष्ण अपनी चोटी को बलदाऊ की चोटी से छोटा देखकर किस प्रकार माता यशोदा से प्रश्न कर रहे हैं—

"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी ॥"

खिजाने की प्रवृत्ति भी बालकों में पाई जाती है। चिढ़ाना उन्हें अच्छा लगता है। इसी प्रवृत्ति के कारण बच्चे प्रायः पागलों एवं बुड्ढों को बहुत चिढ़ाया करते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में कृष्ण बलदाऊ द्वारा चिढ़ाये जाने की माता यशोदा से कर रहे हैं—

"मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनों तू जसुमति कब जायो ॥"

हठ करना भी बाल-स्वभाव है। बाल-हठ प्रसिद्ध है। इच्छा की पूर्ति न होने पर बालक प्रायः धरती पर लोट जाया करते हैं। देखिए बालक कृष्ण के ऐसा करने पर यशोदाजी उन्हें समझा रही हैं—

"कत हौ आरि करत मेरे मोहन यो तुम आँगन लोटी।"

चपलता भी बालकों की विशेष प्रवृत्ति है। मछली के समान बालकों का चित्त चंचल रहता है। बालक राम की चपलता का एक दृश्य देखिये—

"भोजन करत चपल चित, इत-उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥"

नकल करना भी बाल-स्वभाव की एक विशेषता है। बालक अपने माता-पिता, भाई-बहिन, पड़ौसी आदि की नकल किया करते हैं। ऐसा करने में उन्हें बहुत आनन्द आता है। नकली विवाह, नकली भोज, नकली दुकान आदि की योजना इस प्रवृत्ति का फल है।

सारांश यह है कि बाल्य जीवन अत्युत्तम है। इसमें आनन्द ही आनन्द है। सिर पर न कोई भार रहता है और न कोई चिंता। पूर्ण स्वच्छन्दता के साथ खेल-कूद में मन लगा रहता है। क्या संसार की कोई वस्तु बाल्य-जीवन की तुलना कर सकती है ?

ग्राम-पंचायत-राज्य

(१) प्रस्तावना—हमारे महान् देश का पतन और महात्मा गाँधी द्वारा उसकी रक्षा।
(२) गाँवों की उन्नति से देश की उन्नति, पंचायत-राज्य द्वारा गाँवों का उत्थान।
(३) बापू के अनुसार पंचायत-राज्य के लक्षण।
(४) प्राचीन भारत में पंचायत-राज्य
(५) ग्राम-पंचायत-राज्य का वर्त्तमान स्वरूप
(६) ग्राम-पंचायत-राज्य योजना के अन्तर्गत न्याय-वितरण
(७) उपसंहार—ग्राम-पंचायत-राज्य से ग्रामों की सर्वतोन्मुखी उन्नति एवं समृद्धि।

वह भारतवर्ष जिसकी भूमि पर गंगा, यमुना आदि की पवित्र जल-धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं, वह भारतवर्ष जो कभी ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रहा, वह भारतवर्ष जहाँ भगवान ने राम, कृष्ण के रूप में अवतीर्ण होकर क्रीड़ाएँ कीं और पापियों का विनाश करके भू-भार हल्का किया, काल-देव की कुदृष्टि से अधःपतन के गर्त में जा गिरा। पराधीनता की बेड़ियाँ पहनकर उसने अविद्या तथा दरिद्रता की शरण ली और अपनी संस्कृति का परित्याग किया। ऐसे संकट के समय राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी का आविर्भाव हुआ जिन्होंने पराधीनता-दानवी के चंगुल से मुक्त करके हमें स्वतन्त्रता के वायुमंडल में विचरण करने का सुअवसर प्रदान किया। प्रातः-स्मरणीय बापू का कथन था कि भारतवर्ष ग्रामों में बसता है, गाँव हमारी प्राचीन संस्कृति के केन्द्र-स्थान हैं। जब तक भारत के ७ लाख ग्राम उन्नत, स्वावलम्बी एवं समृद्धिशाली न होंगे, जब तक यहाँ से अविद्या का अन्धकार, दरिद्रता का दानव और ऊँच-नीच का भेद-भाव नष्ट न होगा; तब तक स्वतन्त्रता अथवा स्वराज्य का भारत के लिये कोई मूल्य नहीं। वस्तुतः आज हमारे ग्राम नरक बने हुए हैं। वे गंदगी, अशिक्षा, दरिद्रता, भेदभाव और पारस्परिक झगड़ों

की मूर्ति हैं। आज देहाती जीवन अभिशाप बना हुआ है। न उसमें कोई सरसता है और न उत्साह। ग्रामों की सर्वतोमुखी उन्नति में ही हमारे देश की उन्नति सन्निहित है। सुखी, समृद्ध तथा स्वावलम्बी समाज ही सच्चे लोकतन्त्र का प्रतीक है। सच्चा लोकतन्त्र अथवा सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए पंचायत-राज्य की आवश्यकता कौन स्वीकार न करेगा ?

बापू के अनुसार पंचायत-राज्य उस लोकतन्त्र को कहते हैं जिसके मुख्य लक्षण हैं—सुखी, समृद्ध एवं स्वावलम्बी देहात और देहाती प्रजा; जिसमें निर्धन और धनिक, स्त्री और पुरुष, काले और गोरे, जाति या धर्म के कारण असमानता मिट गई हो, जिसमें सब भूमि और सत्ता जनता के हाथ में हो; न्याय शीघ्र, शुद्ध और सस्ता हो; उपासना, वाणी और लेखनी की स्वतन्त्रता हो और इन सबका आधार हो स्वेच्छा से संयम और धर्म का पालन।

जब हम भारतीय इतिहास के पन्ने उलटते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में छोटे-छोटे प्रजातन्त्र थे, जो पंचायत-राज्य के प्रतिरूप थे। उनका उद्देश्य जनता के नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर को ऊँचा उठाना था। उन्हें जीवन के विविध-पहलुओं के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त थे और वे शासन के अतिरिक्त शिक्षा एवं न्याय सम्बन्धी कार्य भी करते थे। इन प्रजातन्त्रों के अधिकारों का उपभोग अनेक नियमों के अनुसार होता था, जिनमें बहुत से अलिखित होते थे और कुछ लिखित प्रतिज्ञा-पत्र के रूप में। इनके कई विभाग होते थे; जैसे—चिकित्सा, स्वच्छता, उद्योग, न्याय, सार्वजनिक भवनों, मंदिरों, तालावों, विश्रामगृहों, कुओं एवं जलमार्गों का निर्माण, धार्मिक स्थानों का संरक्षण आदि। दुखियों के दुःख-निवारण और मृतकों की अन्त्येष्टि-क्रिया का दायित्व भी इन प्रजातन्त्रों पर होता था। शासन की विभिन्न शाखाओं की देख-रेख समितियों द्वारा होती थी, जिनके सदस्य वोट द्वारा निर्वाचित होते थे। कालान्तर में यह व्यवस्था लुप्त हो गई।
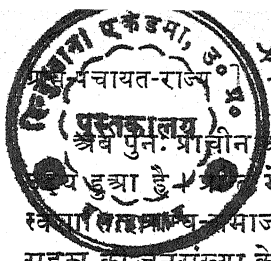
अब पुनः प्राचीन आदर्श के आधार पर हमारे पंचायत-राज्य का उदय हुआ है। प्रान्त में इसके अनुसार सारी सत्ता विकेन्द्रित होकर स्वशासित ग्राम्य-समाज में व्यापक रूप से निहित हो गई है। एक सहस्र की जनसंख्या के प्रत्येक ग्राम को शासन का केन्द्र बनाया गया है। वहाँ एक ग्राम-सभा की स्थापना की गई है। निकटस्थ छोटे-छोटे ग्राम जिनकी जन-संख्या पाँच सौ से न्यून है, बड़े ग्राम में सम्मलित कर लिए गए हैं। किन्तु तीन मील से अधिक दूर वाले ग्रामों की पृथक् ग्राम-सभाएँ बनाई गई हैं। २१ वर्ष अथवा इससे अधिक वयस्क स्त्री-पुरुष ग्राम-सभा के सदस्य हैं। हाँ; पागल, नैतिक अपराध में दंडित, दिवालिया, और राजकीय कर्मचारी इस अधिकार से वंचित किए गए हैं। ग्राम-सभा अपनी एक कार्यकारिणी सभा का निर्माण करती है, जिसका नाम 'ग्राम-पंचायत' होता है। इसमें जनसंख्या के अनुसार ३० से ५१ तक पंच होते हैं, जिनका निर्वाचन ग्राम-सभा के सदस्य करते हैं। पंचों के अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम-पंचायत का एक निर्वाचित प्रधान तथा उपप्रधान भी होता है। निर्वाचन सम्मिलित प्रणाली पर होता है। परिगणित तथा अल्पसंख्यक जातियों के लिये उनकी जन-संख्या के अनुसार स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं। यदि कोई पंच, प्रधान अथवा उपप्रधान ठीक-ठीक कार्य न करे अथवा जनता के साथ अनुचित व्यवहार करे तो ग्राम-सभा के सदस्य, कम से कम दो-तिहाई वोटों से, उसे पृथक कर सकते हैं।

ग्राम-पंचायत का सम्बन्ध स्वायत्त-शासन तथा नागरिक संगठन से है। उसका ध्येय सार्वजनिक सेवा द्वारा जर्जरित एवं जीर्ण-शीर्ण ग्रामों का पुनर्निर्माण है। उसके कार्य-क्रम के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य स्वच्छता, कृषि-उद्योग आदि हैं।

उपर्युक्त जन-हित-कार्यों के अतिरिक्त पंचायत-राज्य द्वारा न्याय-वितरण सुलभ करने की योजना भी बनी है। अङ्गरेजी शासन में न्याय-वितरण बहुमूल्य था। धनवान् व्यक्ति के विरुद्ध निर्धन मनुष्य का न्याय पाना यदि असंभव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य था। उत्तरोत्तर अपील की व्यवस्था से गाँव वालों की पसीने की कमाई का

रुपया पानी की भाँति बह जाता था और वे मुकदमेबाजी में अपना सत्यानाश कर बैठते थे। छोटे-छोटे मामले बढ़कर इतना विकराल रूप धारण कर लेते थे कि उनके निर्णयार्थ हाईकोर्टों तक की शरण लेनी पड़ती थी। वास्तव में न्याय-वितरण की इस दूषित व्यवस्था से ग्रामीण जनता का जो अहित हुआ है वह वर्णनातीत है। पंचायत-राज्य की योजना के अनुसार ग्राम-सभाएँ पंचायती अदालतों का निर्माण करती हैं। तीन से पाँच ग्राम-सभाओं का क्षेत्र एक पंचायती अदालत का क्षेत्र होता है। प्रत्येक ग्राम-सभा पंचायती अदालतों के निमित्त पढ़े-लिखे पाँच पंच चुनती है। इस प्रकार चुने हुए १५ से २५ तक पंचों का एक पंच-मंडल बन जाता है। यह पंच-मंडल अपना एक सरपंच चुन लेता है। जब कोई झगड़ा या मामला पंच-मंडल के समक्ष उपस्थित होता है तब सरपंच उसके निर्णय के लिए पंच-मंडल में से पाँच पंच नियुक्त कर देता है। इन पाँच पंचों में एक पंच उस ग्राम-सभा-क्षेत्र का निवासी होना चाहिए जहाँ वादी निवास करता है; और दूसरा उस ग्राम-सभा-क्षेत्र का निवासी जहाँ प्रतिवादी रहता है। इन पाँच पंचों की एक बेंच सरपंच के अभाव में अपने किसी पंच को अध्यक्ष चुन लेती है। बेंच का निर्णय अन्तिम होता है। उसके विरुद्ध अपील नहीं हो सकती। हाँ, अन्याय की दशा में निगरानी हो सकती है। पंचायती अदालतों में वकील द्वारा पैरवी का निषेध है। उन्हें गाँव के छोटे-छोटे दीवानी, माल तथा फौज-दारी के मुकदमे निबटाने का अधिकार है। यदि पंचायती अदालत के पंचों और सरपंचों ने सत्यनारायण का ध्यान रखते हुए न्याय किया और पक्षपात-रहित होकर अपने को पंच-परमेश्वर सिद्ध किया तो हमारे ग्राम्य-कलेवर को खोखला बना देने वाले पारस्परिक झगड़ों का शीघ्र अन्त हो सकता है और बापू के "सस्ते शीघ्र और शुद्ध न्याय" की इच्छा पूर्ण हो सकती है।

इस प्रकार हमारी वर्त्तमान सरकार ने बापू की कामना के अनुसार प्रान्त में ग्राम-पंचायत-राज्य का श्रीगणेश करके शासन-क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात किया है और प्रान्त में सच्चा जनतन्त्र,

सच्चा स्वराज्य स्थापित करने का बीड़ा उठाया है। प्रत्येक नर-नारी अब स्वयं अपने शासन में भाग ले रहा है। जन-जन के हाथ में अब सत्ता आ गई है। अपनी उन्नति, अपनी समृद्धि, अपने सुख का दायित्व उसी पर है। वह स्वयं अपनी कठिनाइयों का निवारण करके, अपने पथ को परिष्कृत करके उत्थान-पथ पर अग्रसर हो सकता है। जहाँ वह अपना भला कर सकता है वहाँ सेवा द्वारा समाज के कल्याण में भी योग दे सकता है। पंचायत-राज्य-योजना ने इस प्रकार का पर्याप्त सुयोग उसे प्रदान किया है। इससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों बनते हैं। सचमुच यह योजना राम-राज्य की ओर पहला कदम है।

यदि पंचायत राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकारों का ग्रामीण जनता ने सदुपयोग किया, यदि गाँव वालों ने पारस्परिक मनमुटाव, शत्रुता, दलबन्दी, जातीय विद्वेष, साम्प्रदायिकता और भेद-भाव को तिलांजलि देकर तन-मन-धन से अपना कर्त्तव्य-पालन किया, यदि उन्होंने पारस्परिक सहयोग से अपनी जन्म-भूमि की सेवा करना स्वीकार किया, तो हमारे ग्राम अल्पकाल में ही स्वर्ग तुल्य हो जायँगे वहाँ न कोई दरिद्र रहेगा, न दीन, न दुःखी न दलित। पंचायत-राज्य हमारे गाँवों की काया पलट देगा, उनमें नवीन जीवन, नवीन स्फूर्ति, नवीन उमंग, नवीन शक्ति का संचार करेगा। कंकाल-मात्र हमारे गाँव उसकी दिव्य प्रभा से जगमगाने लगेंगे और हमारे देश में सच्चा स्वराज्य, सच्चा रामराज्य स्थापित हो जायगा। तभी हमारे राष्ट्र-पिता की स्वर्गीय आत्मा को परमानन्द प्राप्त होगा।

उत्तर प्रदेश में साक्षरता प्रसार

(१) प्रस्तावना—मानव-जीवन में शिक्षा की आवश्यकता
(२) भारत में निरक्षरता
(३) उत्तर प्रदेश में साक्षरता-प्रसार योजना के दो पहलू—
(अ) साक्षर बनाना (आ) साक्षरता कायम रखना
(४) साक्षर बनाने के साधन—
(क) प्रौढ़ स्कूलों की स्थापना (ख) स्कूलों और कालेजों से सहायता

(५) साक्षरता कायम रखने के साधन—

(क) वाचनालयों और पुस्तकालयों की स्थापना (ख) असरकारी पुस्तकालयों एवं वाचनालयों को सहायता

(६) प्रतिवर्ष 'साक्षरता दिवस' मनाने की योजना

(७) उपसंहार—सारांश

शिक्षा जीवन के विकास का साधन है। यह व्यक्तिगत जीवन के ही विकास का साधन नहीं, वरन् उससे राष्ट्र और समाज की उन्नति में भी पर्याप्त सहायता मिलती है। जहाँ शिक्षा का प्रचार है, जहाँ के स्त्री- पुरुष शिक्षा द्वारा ज्ञान प्राप्त करके नई-नई वस्तुओं की खोज एवं निर्माण करते हैं, जहाँ के नर-नारी साक्षर बनकर सामाजिक कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वासों का निवारण करते हैं, उस राष्ट्र को सचमुच राष्ट्र के नाम से पुकारते हुए गर्व होता है। ऐसे राष्ट्र को समस्त विश्व मस्तक झुकाता है। वस्तुतः शिक्षा अमृत है, अशिक्षा विष। शिक्षा उत्थान है, अशिक्षा पतन। शिक्षा दिव्य सम्पत्ति है, अशिक्षा फूटी कौड़ी।

वर्त्तमान काल में हमारा देश अशिक्षा के अभिशाप से पीड़ित है। क्या बालक क्या प्रौढ़, क्या स्त्री क्या पुरुष, सभी इस रोग से आक्रान्त हैं। देश का केवल दसमांश ही साक्षर नाम से पुकारा जा सकता है। बालक-बालिकाओं में तो शिक्षा का कुछ प्रचार है भी, पर प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें से अधिकांश के लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' ही है। हमारे ग्राम तो पूर्णतया अशिक्षा के केन्द्र बने हुए हैं। वहां निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। देश के लिए यह कितनी लज्जा की बात है! जो देश एक दिन अन्य देशों का विद्या-गुरु था वह आज काल देव की कुदृष्टि से कितना नीचे गिर गया है! आज उसके शिष्य उससे बहुत आगे बढ़ गये हैं।

हमारे प्रान्त में कांग्रेसी सरकार ने जहाँ प्रान्त की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर कदम बढ़ाया है वहाँ अशिक्षा दानवी का संहार करने के भी साधन जुटाए। १ अगस्त १९३८ ई० को

उत्तर-प्रदेश में पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी की अध्यक्षता में शिक्षा-प्रसार विभाग की स्थापना की गई और १५ जनवरी सन् १९३९ ई० को शिक्षा प्रसार योजना का श्रीगणेश हुआ। इसका श्रेय हमारे प्रांत के भूतपूर्व शिक्षा-सचिव श्री सम्पूर्णानन्द जी को है। विभाग ने अपने अल्प जीवन में जो आशातीत कार्य कर दिखाया है उससे हमें विश्वास होता है कि हमारे-प्रान्त की अशिक्षा-दानवी से शीघ्र छुटकारा मिल जायगा।

शिक्षा-प्रसार'योजना दो भागों में विभाजित है—साक्षर बनाना और साक्षरता कायम रखना। साक्षर बनाने के लिये प्रौढ़ स्कूलों की स्थापना की गई है। यद्यपि अर्थाभाव के कारण इन स्कूलों की संख्या अपर्याप्त है तथापि इनसे बहुत लाभ हुआ है। इन स्कूलों में रात्रि के समय प्रौढ़ों को शिक्षा दी जाती है, क्योंकि यही ऐसा समय है जब वे लोग अपने कार्य से अवकाश पाते हैं। ५-६ माह तक की अवधि प्रत्येक प्रौढ़ को शिक्षा के लिये नियत है। पाठ्य-क्रम में तीसरी कक्षा के स्तर की एक हिन्दी रीडर और भारतवर्ष के भूगोल तथा गणित का साधारण ज्ञान रक्खा गया है। हिन्दी रीडर में ऐसी साधारण भाषा रहती है जैसी नित्य-प्रति व्यवहार में आती है। ऐसी सादी भाषा लिखना पढ़ना और सिखाना ही उक्त रीडर का उद्देश्य होता है। स्कूलों के डिप्टी इंसपैक्टर से साक्षरता का प्रमाण-पत्र मिलने से पहले विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती है। परीक्षक प्रायः हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल का प्रधानाध्यापक होता है।

इस साधन के अतिरिक्त अ-सरकारी संस्थाओं को भी इस कार्य में योग देने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। इण्टरमीडिएट कॉलिज, हाई स्कूल और हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलों से एक-एक गाँव घूमकर उनमें साक्षरता का प्रचार करने की प्रार्थना की गई है। इस योजना के अनुसार बहुत से स्कूलों और कॉलिजों ने कार्य किया है। विद्यार्थी समुदाय ने विशेषकर अँगूठा-निशानी के विरुद्ध (No thumb impression) आन्दोलन में भाग लिया है। वे अनेक मनुष्यों को हस्ताक्षर करना सिखाकर इस दशा में प्रशंसनीय कार्य

कर रहे हैं।

यह तो हुई साक्षर बनने की बात। अब साक्षरता कायम रखने की बात लीजिए। जब तक साक्षरों को निरक्षर होने से बचाने के लिए कोई उपाय न किया जायगा तब तक साक्षरता-प्रसार-योजना कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। अतः हमारे प्रान्त की सरकार ने साक्षरता कायम रखने की ओर विशेष ध्यान दिया है। इस कार्य के सम्पादन के लिए पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना की गई है। बॉक्स आदि आवश्यक सामान के अतिरिक्त प्रत्येक पुस्तकालय को प्रति वर्ष हिन्दी-उर्दू की पुस्तकें दी जाती हैं। ये पुस्तकालय गाँवों में खोले गए हैं। प्रत्येक पुस्तकालय की ५ से ८ मील की परिधि के भीतर चार-पाँच शाखाएँ होनी हैं जिनको प्रतिमाह २० से ३० पुस्तकों का एक बॉक्स मिलता है। इन शाखाओं का प्रबन्ध वही पुस्तकालय करता है। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार प्रत्येक पुस्तकालय को दो साप्ताहिक और एक मासिक-पत्र दिया जाता है। वाचनालय के अध्यक्षों को निरक्षर व्यक्तियों को सामाचार-पत्र पढ़कर सुनाने के लिए प्रतिमास एक रुपया भत्ता दिया जाता है।

सरकारी पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना के अतिरिक्त अ-सरकारी पुस्तकालयों एवं वाचनालयों को भी सहायता दी जाती है। पुस्तकालय की उपयोगिता के अनुसार ३२) से ९६) तक वार्षिक सहायता दी जाती है। हर पुस्तकालय को दो पत्र भी मिलते हैं।

प्रतिवर्ष लोगों में उत्साह भरने के लिये 'साक्षरता दिवस' की आयोजना की जाती है। उस दिन स्कूलों के जुलूस निकलते हैं और सभाएं होती हैं जिनमें साक्षरता-प्रसार की उपयोगिता पर भाषण दिये जाते हैं और लोगों से अपील की जाती है कि वे देश से निरक्षरता के कलंक को दूर करें। लोगों से प्रतिज्ञा-पत्रों पर इस आशय के हस्ताक्षर कराये जाते हैं कि वे आगामी वर्ष में कम से कम एक व्यक्ति को साक्षर बनायेंगे।

इस प्रकार हमारे प्रान्त में साक्षरता का कार्य द्रुत गति से चल रहा है और इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। हाँ, धन की कमी से यह कार्य और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इस पवित्र कार्य में हाथ बँटाए। अपने देशवासियों की सेवा के निमित्त पाश्चात्य देशों में जहाँ लाखों मनुष्य अपना सर्वस्व बलिदान कर रहे हैं, वहाँ क्या हमारे प्रान्त के शिक्षित स्त्री-पुरुष अपने भाइयों और बहिनों को साक्षर बनाने में भी संकोच करेंगे।

मनोरंजन के आधुनिक साधन

(१) प्रस्तावना—मनोरंजन की आवश्यकता,
(२) समय के साथ-साथ मनोरंजन के साधनों में परिवर्तन,
(३) रेडियो, (४) सिनेमा, (५) सरकस और कार्नीवाल,
(६) शतरंज; ताश आदि घर के भीतर खेले जाने वाले खेल (Indoor games),
(७) क्रिकेट, हॉकी आदि मैदान के खेल (Outdoor games),
(८) उपन्यास, कहानी और कविता (६) मेले, तमाशे आदि;
(१०) पार्क, उद्यानादि की सैर,
(११) उपसंहार—सारांश।

मानव-जीवन के दो पहलू हैं और हमारी आवश्यकताएँ भी दो प्रकार की होती हैं—एक शारीरिक अथवा बाह्य जीवन की; और दूसरी मानसिक अथवा आन्तरिक जीवन की। जब हमारे बाह्य जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, जब हम दिन-भर के परिश्रम से उकता जाते हैं, तब हमारे मन को भूख लगती है, तब हम मनोरंजन के साधन ढूँढ़ते हैं। हममें से कोई शतरंज से मन बहलाता है, तो कोई ताशों से। कोई क्रिकेट खेलता है, तो कोई टैनिस। कोई हारमोनियम पर राग अलापता है, तो कोई ग्रामोफोन सुनता है। कोई सिनेमा-हाल की ओर पदार्पण करता है, तो कोई रेडियो से अपना मनोरंजन करता है। कोई नृत्य से मन की भूख मिटाता है, तो कोई वनस्थली में प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर। कोई

पशु-पक्षियों से खेलता है, तो कोई आराम-कुर्सी पर लेटकर उपन्यास कहानी पढ़कर दिल बहलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी--सभी जीवधारी कुछ-न-कुछ समय मनोरंजन के लिए अवश्य देते हैं।

समय के साथ-साथ जैसे हमारी रुचि में परिवर्तन होता गया है वैसे ही हमारे मनोरंजन के साधन भी बदलते गये हैं। एक समय था जब कठपुतली का नाच हमारा मनोरंजन करता था, पर आज नहीं करता। एक समय था जब नाटक हमारे मन को खूब बहलाते थे, पर आज उतना नहीं बहलाते। एक समय था जब बाजीगर का खेल हमें बहुत प्यारा लगता था आज उतना प्यारा नहीं लगता। आज से सौ वर्ष पूर्व जो मनोरंजन के साधन थे वे प्रायः अब नहीं रह गये हैं। विज्ञान ने इस क्षेत्र में उलट-पुलट कर दी है। रेडियो और सिनेमा का, जो आधुनिक काल के मनोविनोद के प्रधान साधन बने हुए हैं, प्राचीन काल में कोई नाम भी नहीं जानता था।

रेडियो एक यन्त्र है जिसके द्वारा कितनी ही दूर की ध्वनि सुनी जा सकती है। इसका उपयोग समाचार और संगीत प्रसारित करने के लिए किया जाता है। किसी बड़े नगर में रेडियो का स्टेशन होता है, जहाँ से समाचार अथवा संगीत प्रसारित किया जाता है। इस यन्त्र द्वारा संसार के अच्छे-से-अच्छे गायक का गायन घर पर बैठे सुना जा सकता है। इसके अभाव में अच्छे-अच्छे गायकों का गाना सुनने के लिए लोगों को इधर-उधर जाना पड़ता था, अब वे अपनी गायन-क्षुधा की निवृत्ति घर पर ही कर सकते हैं। रेडियो वाले के लिए मानो संसार के विख्यात गवैये द्वार पर खड़े रहते हैं। परन्तु यह मनोरंजन का साधन केवल धनिकों को उपलब्ध है। दरिद्र इसके आनन्द से वँचित रहते हैं। उन बेचारों के पास इतना रुपया कहाँ कि वे रेडियो खरीद कर उससे अपना मनोविनोद कर सकें। हाँ, यदि किसी लक्ष्मी के लाल की कोठी में रेडियो बज रहा हो तो बाहर खड़े होकर उन्हें भले ही उसका आनन्द मिल जाय।

रेडियो के अतिरिक्त ग्रामोफोन, हारमोनियम, बाँसुरी आदि वाद्य यन्त्र भी आमोद प्रमोद के साधन हैं।

रेडियो से भी बढ़कर मनोरंजन का साधन टेलीविजन है, जो विज्ञान का नवीनतम आविष्कार है। रेडियो हमारी कर्णेन्द्रिय को ही तृप्त करता है, टेलीविजन नेत्रेन्द्रिय को भी तृप्त कर सकेगा। इसके द्वारा नेत्रों को सुन्दर से सुन्दर दृश्य, मनोहर से मनोहर रूप, भव्य से भव्य नृत्य, अभिराम से अभिराम छटा देखने को मिलेगी और धनवानों के लिए घर पर ही सिनेमा के आनन्द की योजना हो जायगी।

पर दिन भर की थकान मिटाने के लिए, सिनेमा से सुलभ और सस्ता मनोरंजन का कोई साधन नहीं है। गरीब जन-समाज के लिए सिनेमा विज्ञान की अमूल्य भेंट है। इसमें पुरुष स्त्रियों के चलते-फिरते चित्रों द्वारा कोई कहानी दर्शकों को दिखलाई जाती है। नाटक से इसमें यह भिन्नता है कि इसमें अभिनेता-अभिनेत्रियों के चित्र रहते हैं और नाटक में साक्षात् अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ रहती हैं। पहले सिनेमा में मूक चित्र होते थे। अब यह कमी दूर हो गई है और चित्रों में वाणी का संचार हो गया है। यही नहीं, अब तो रंगीन चित्र भी बनने लगे हैं। प्राकृतिक दृश्यों के वास्तविक रंग अब चित्रपट पर देखे जाने लगे हैं। बसन्त की बहार, ऊषा की लालिमा, पुष्पों की रंगविरंगी छटा और अभिनेत्रियों के शरीर का गुलाबी रंग देखकर दर्शक मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। वस्तुतः दृश्य-विभाग और संगीत सिनेमा के प्राण हैं। जब दर्शक प्रकृति के सुन्दर दृश्य के बीच किसी अभिनेत्री अथवा अभिनेता को गाते हुए देखता है तो उसके हृदय की कली-कली खिल जाती है। क्षणभर के लिए वह अपने को भूल जाता है। निस्सन्देह आधुनिक काल में सिनेमा मनोरंजन का सवश्रेष्ठ साधन है। बलिहारी है विज्ञान की जिसने जन-साधारण के लिए सिनेमा जैसा सुलभ मनोरंजन का साधन प्रस्तुत किया।

सरकस और कॉर्नीवाल भी सर्व-साधारण का मनोरंजन करते

हैं। विचित्र और रोचक बातों को देखकर दर्शक का मन प्रसन्न होता है। मोटर-साइकिल का गोले में दौड़ना, बन्दर का साइकिल चलाना, तार पर साइकिल चलाना, भागते हुए घोड़े पर शीर्षासन लगाना, सिंह और बकरे का एक-साथ पानी पीना आदि दृश्य मनोविनोद की सामग्री जुटाते हैं। इसके साथ साथ लॉटरी मिलने की अभिलाषा तथा मिलने पर प्राप्त आनन्द मनोरंजन को दुगना कर देते हैं। यह मानव-स्वभाव की विशेषता है कि आश्चर्यजनक वस्तुएँ उसे आनन्द देती हैं। जब हम बाजीगर के चकित करने वाले खेलों को देखते हैं तब खेल के स्थान को छोड़ने की इच्छा नहीं होती। हमारा मन वहीं रम जाता है। इसी प्रकार सरकस और कॉर्नीवाल हमें अचम्भित करके प्रसन्न करते हैं।

शतरंज, ताश, चौपड़ आदि घर के भीतर खेले जाने वाले खेल (Indoor games) भी आजकल मन-बहलाव के अच्छे साधन हैं। यह देखा गया है कि शतरंज के खिलाड़ी खेल में इतने मस्त हो जाते हैं कि भोजन, निद्रा और काम-काज को भी भूल जाते हैं। स्वर्गीय प्रेमचन्द्रजी ने 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी में बतलाया है कि शतरंज के खेल में मस्त होकर दो व्यक्तियों ने सब भुला दिया और बातों-बातों में ही झगड़कर एक-दूसरे के प्राण ले लिये। ताश और चौपड़ भी अच्छे खेल हैं, पर यह शतरंज की समानता नहीं कर सकते। यदि शतरंज रानी है तो ताश और चौपड़ उसके दास और दासी हैं। बैडमिंटन, पिंगपोंग आदि कई अँगरेजी खेल भी बहुत रोचक होते हैं।

क्रिकेट, हॉकी, फुटबौल, वॉलीबौल, टैनिस इत्यादि मैदान के खेल (Outdoor games) भी मनोरंजन करते हैं और कॉलेज के विद्यार्थियों को प्राय: ये ही खेल खिलाये जाते हैं। विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार व्यायाम तथा मनोरंजन के लिए इन्हीं में से कोई-सा चुन लेता है। खेलने वालों को तो यह खेल आनन्द देते ही हैं, दर्शकों का भी इनसे मनोविनोद होता है। जब कभी मैच होता है तब सैकड़ों दर्शक उसे देखने के लिए एकत्र हो जाते हैं। बीच-

बीच में वे अपने हर्ष को करतल-ध्वनि द्वारा प्रकट करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनोरंजन के अन्य साधनों से यह खेल इसलिए अच्छे कहे जा सकते हैं कि इनसे दो कार्य सिद्ध होते हैं—शारीरिक व्यायाम होता है और मनोविनोद भी।

उपन्यास और कहानी, साहित्य के ये अङ्ग भी मनोरंनज की सामग्री जुटाते हैं। आजकल इनकी बहुत भरमार देखी जाती है। प्रतिमास अनेक नए-नए उपन्यास निकलते हैं और हाथोंहाथ बिक जाते हैं। यही दशा कहानियों की है। भारतवर्ष में मनुष्य को बचपन से कहानी के प्रति प्रेम हो जाता है। बालक को उसकी माता, दादी, नानी आदि स्त्रियाँ कहानी सुनाया करती हैं। यही प्रेम बड़े होने पर बना रहता है। मनुष्य समाचार-पत्रों, मासिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में कहानियाँ पढ़कर अपने इस प्रेम को तृप्त करता है। आजकल पत्र-पत्रकाएँ कहानियों से बे-तरह भरी रहती हैं। कविता से भी मनोरंजन होता है। आजकल कवि-सम्मेलनों की खूब धूम रहती है।

मेले और तमाशे भी मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। कहीं भी छोटे से छोटा मेला होगा अनेक दर्शक उसे देखने पहुँच जायँगे। क्यों? इसलिये कि वहाँ नई-नई वस्तुएँ देखने को मिलेंगी जिनसे मन बहलेगा। बाजीगर, रीछ, बन्दर, नट आदि के तमाशे जन-साधारण को पर्याप्त आमोद-प्रमोद देते हैं। पशु पक्षियों का संग्रह भी मन को प्रसन्न करता है।

पार्क, उद्यानादि की प्राकृतिक छटा से भी हमारा मनोरंजन होता है। जब हम रंग-विरंगे पुष्पों को देखते हैं, जब हम मखमल सी मुलायम हरी-भरी दूब पर मोती सी झलकती हुई ओस की बूंद देखते हैं, जब हम कुञ्जों में चहचहाती हुई चिड़ियों का मधुर स्वर सुनते हैं, जब हम शीतल-मन्द-सुगंधित पवन द्वारा आन्दोलित लताओं की वृक्षों के साथ अठखेलियाँ देखते हैं तब हम आनन्द-सागर में निमग्न हो जाते हैं।

सारांश यह है कि आधुनिक काल में हमें मनोरंजन के अनेक

साधन उपलब्ध हैं और विज्ञान इन साधनों में निरन्तर वृद्धि करता जारहा है। मनुष्य अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार उनमें से कुछ चुन लेते हैं, जिनसे उनके जीवन में मिठास आ जाता है। यदि किसी व्यक्ति के पास कोई मनोरंजनकारी वस्तु अथवा सामग्री न हो तो उसका जीवन-भारस्वरूप हो जाय, उसका जीवन कटु हो जाय इसमें सन्देह नहीं। मनोरंजन के साधन जीवन-यात्रा के लिए सम्बलस्वरूप हैं।

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी सर्व-प्रियता

(१) प्रस्तावना—तुलसीदास जी के जन्म के समय की परिस्थिति
(२) तुलसीदास का जन्म और बाल्य-काल
(३) शिक्षा-दीक्षा और विवाह
(४) संन्यास और भ्रमण
(५) कव्य-रचना (६) मृत्यु
(७) तुलसीदास जी की सर्वप्रियता—
(क) कविता, (ख) भक्ति, (ग) समाज-सुधार
(८) उपसंहार—हिन्दू जाति पर तुलसीदासजी का ऋण

भारतवर्ष में मुसलमानों का आधिपत्य पूर्णतः स्थापित हो जाने पर हिन्दुओं के हृदय में गौरव और आत्माभिमान के भाव नहीं रह गए। कट्टर और धार्मिक असहिष्णु मुसलमान हिन्दुओं के धर्म पर आक्षेप करते थे, उनपर अत्याचार करते थे और पराधीन हिन्दू दीन बने हुए सब कुछ सह लेते थे। वस्तुतः हिन्दुओं का जीवन निराशामय था। उनके लिए उसमें कोई माधुर्य नहीं रह गया था। संसार में उनके आँसू पोंछने वाला कोई नहीं था। गज की एक ही पुकार पर पैदल दौड़ आनेवाला परमेश्वर अब उनकी सहस्रों पुकारों को नहीं सुनता था। हिन्दुओं में ऐसी दुर्दशा के समय भारतवर्ष में गोस्वामी तुलसीदास जी का आविर्भाव हुआ जिन्होंने हिन्दुओं के भग्न होते हुए हृदय को संभाला और उन्हें दुष्ट-दलनकारी भगवान् राम की झाँकी कराकर उनके जीवन को सरस बना दिया। साथ

ही अपनी अलौकिक प्रतिभा से हिन्दी-साहित्य को प्रौढ़ता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया, उसके कलेवर को देदीप्यमान रत्नों से अलंकृत किया।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ल ७ को बाँदा जिले के अन्तर्गत राजापुर नामक गाँव में जन्म धारण किया। इनके जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है।

"पन्द्रह सौ चौअन विषै कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्‌यो शरीर॥"

इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी माना जाता है। ये सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनका जन्म का नाम रामबोला था। ये जब उत्पन्न हुए तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे और इनके मुँह में ३२ दाँत भी थे। जन्म के समय ये रोये नहीं बल्कि इनके मुख से 'राम' शब्द निकला। पिता ने बालक को राक्षस समझा और उसकी उपेक्षा की। पर माता ने उसे अपनी मुनिया नामक दासी को पालन पोषणार्थ दे दिया। जन्म के पाँच दिन बाद माता का स्वर्गवास होगया। पाँच वर्ष पीछे मुनिया भी मर गई। तब बालक के पिता के पास बालक ले जाने का संवाद भेजा गया पर उन्होंने उसे लेना स्वीकार न किया। इस प्रकार पिता-परित्यक्त बालक तुलसीदास लोगों के द्वार-द्वार भटकता फिरा।

दो वर्ष तक बालक तुलसीदास की यही दशा रही। इसके अनंतर बाबा नरहरिदास ने उसे अपने पास रख लिया और शिक्षा दी। ये ही गोस्वामीजी को रामचन्द्रजी की कथा सुनाया करते थे। इन्हीं के साथ वे काशी गये और इनके गुरु स्वामी रामानन्दजी के निवास-स्थान पंचगंगा घाट पर रहने लगे। वहाँ पर पास ही एक विद्वान महात्मा शेषसनातनजी रहते थे जिन्होंने तुलसीदासजी को वेद, पुराण, दर्शन-शास्त्र, इतिहास आदि पढ़ाया। कुछ समय पश्चात् नरिहरिदास वहाँ से चित्रकूट चले गए और तुलसीदासजी वहाँ विद्या पढ़ते रहे। शेषसनातनजी की मृत्यु के बाद १५ वर्ष तक अध्ययन कर के गोस्वामीजी अपनी जन्म-भूमि राजापुर को लौट आए। यहाँ

इनके परिवार में कोई नहीं रहा था। गाँव के लोगों के आग्रह से तुलसीदासजी ने यहीं रहना निश्चय किया। ये रामचन्द्रजी की कथा में मग्न रहा करते थे और लोगों को उसका रसास्वाद कराया करते थे। एक बार यमुना पार करके एक ग्राम के रहनेवाले भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण राजापुर स्नान करने आये। उन्होंने तुलसीदास जी की कथा सुनी। गोस्वामीजी की योग्यता और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्होंने अपनी लड़की इन्हें ब्याह दी। जनश्रुति इस ब्राह्मण को दीनबन्धु और लड़की को रत्नावली के नाम से जानती है।

तुलसीदासजी अपनी पत्नी में इतने अनुरक्त रहते थे कि एक बार इनकी अनुपस्थिति में उसके नैहर चले जाने पर ये उसका वियोग न सह सके और आधी रात में ससुराल जाकर उससे मिले। स्त्री इनके इस कार्य से अत्यन्त क्षुब्ध होकर इन्हें फटकारती हुई बोली—

"अस्थि चर्म-मय देह मम तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भव-भीति॥"

यह बात तुलसीदास जी को ऐसी लगी कि ये तुरन्त काशी आकर संन्यासी हो गये। वहाँ से अयोध्या जाकर चार महीने रहे। फिर तीर्थ-यात्रा के लिए निकले और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका होते हुए बद्रिकाश्रम गये। यहाँ से ये कैलाश और मानसरोवर तक चले गये। इस यात्रा में लगभग १६ वर्ष लग गए। अन्त में चित्रकूट जाकर ये बहुत दिनों तक रहे।

संवत् १६१६ में चित्रकूट में सूरदासजी इनसे मिलने आये और यहीं इन्होंने 'गीतावली' तथा 'कृष्ण गीतावली' की रचना की। इसके पीछे अयोध्या जाकर संवत १६३१ में इन्होंने 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ किया और उसे २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश विशेषतः किष्किन्धाकाण्ड काशी में लिखा गया। इन तीनों ग्रन्थों के अतिरिक्त नौ ग्रन्थ गोस्वामीजी के और प्रसिद्ध हैं। वे हैं—दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा-प्रश्नावली, विनय-पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी-मंगल, बरवै-रामायण और वैराग्य संदीपिनी।

संवत् १६८० में श्रावण कृष्णा ३ को गोस्वामीजी का शरीरान्त हुआ, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—

"संवत् सोरहसो असी, असी गङ्ग के तीर ।
श्रावण कृष्णा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर ॥"

गोस्वामीजी की सर्व-प्रियता के कारण इनकी कविता, भक्ति और समाज-सुधार हैं। कविता की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में इनका स्थान सर्वोच्च है। इनकी कविता में प्रायः हृदय के सभी भाव चित्रित हुए हैं। मानव-हृदय पर जैसा विस्तृत अधिकार इन महानुभाव का देखा जाता है वैसा हिन्दी के किसी भी अन्य कवि का नहीं। रामचन्द्रजी की कथा के मार्मिक स्थलों के हृदयग्राही वर्णनों से इनकी भावुकता का परिचय मिलता है। बाहरी दृश्यों के चित्रण में भी इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। इस दृष्टि से भी हिन्दी के अन्य कवियों से ये बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। भिन्न-भिन्न व्यापारों में संलग्न मनुष्यों की मुद्राओं और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बड़े सजीव उतरे हैं। इन्होंने काव्य की सभी प्रचलित शैलियों में अपनी रचनाएँ की हैं और उनमें पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कविता के बाहरी अङ्ग अर्थात् उक्ति का अनूठापन, अलङ्कार और भाषा का जैसा सुन्दर रूप इनकी कविता में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-भाषा ब्रज और अवधी दोनों पर इनका समान अधिकार देखा जाता है। इनकी-सी प्रौढ़, सुव्यवस्थित और शुद्ध भाषा बहुत थोड़े कवि लिख सके हैं। हिन्दी में ऐसा कोई कवि नहीं हुआ जिसका भिन्न-भिन्न भाषाओं पर गोस्वामीजी के समान अधिकार रहा हो। सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामीजी का वर्णनीय विषय है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी को अपने काव्य का विषय बनाकर इन्होंने अपनी वाणी से सुधा-धारा प्रवाहित की और उसमें हिन्दू-जाति को स्नान कराके उसका दुःख दूर किया।

कविता से गोस्वामीजी को जितनी लोक-प्रियता मिली है उससे किसी अंश में भी कम भक्ति से नहीं प्राप्त हुई है। जो मनुष्य कविता के गुण-दोष विवेचन करना नहीं जानता वह भी इनकी

भक्ति-भावना पर मुग्ध है। इन्होंने अपनी राम-भक्ति में हिन्दू-धर्म के सब पक्षों का सामञ्जस्य करके शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और कर्मठों के झगड़ों का अन्त किया और धर्म को अधिक चलता रूप प्रदान किया। 'विनय-पत्रिका' में इन्होंने गणेशजी, शिवजी, हनुमानजी, सूर्य भगवान्, देवीजी, भैरवजी आदि देवी-देवताओं की स्तुति करके अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है। 'रामचरित-मानस' में तो यहाँ तक कह दिया गया है :—

"शिव-द्रोही मम दास कहावै। सो नर मोहि सपनेहुँ न भावै ॥"

गोस्वामीजी की भक्ति में उदारता के साथ-साथ अनन्यता भी पाई जाती है। 'दोहावली' की 'चातक-चौतीसी' और 'विनय-पत्रिका' के कतिपय पद इसके परिचायक हैं। इनकी भक्ति मर्यादा की सर्वदा रक्षा करती है। मर्यादा उसका प्रधान अङ्ग है। काकभुशुण्डि और शिवजी के शाप का मामला इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है।

वास्तव में गोस्वामीजी की सबसे अधिक सर्व-प्रियता का कारण है इनका समाज-सुधार। इनसे पहले हिन्दू-समाज की बड़ी हीन-दशा थी। हिन्दू वर्णाश्रम-धर्म को छोड़ बैठे थे। वेद-शास्त्रों की निंदा होती थी। विद्वानों, सन्तों और पूज्य व्यक्तियों का निरादर होता था। नये-नये मत बढ़ रहे थे। उधर मुसलमानों के अत्याचार भी हो रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था कि हिन्दू-समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। गोस्वामीजी ने ऐसी भयङ्कर परिस्थिति में उत्पन्न होकर हिन्दू-समाज को बचाया, उसे नया जीवन प्रदान किया। वर्णाश्रम धर्म की फिर से प्रतिष्ठा हुई। वेद-शास्त्रों का महत्त्व जन-साधारण को ज्ञात हुआ। धर्म के वास्तविक रूप से विमुख करने वाले मतों का उन्मूलन किया गया। दुष्ट-दलनकारी भगवान् राम का मङ्गलमय रूप दिखाकर जनता में आशा और शक्ति का सञ्चार किया गया। 'रामचरित-मानस' सरीखा अद्वितीय ग्रन्थ रचकर गोस्वामीजी ने हिन्दू-जाति का कल्याण कर दिया। इससे समाज का कितना हित हुआ है, यह बतलाना शब्द की शक्ति से परे है। आज उसी पवित्र

ग्रन्थ का यह प्रभाव है कि प्रत्येक हिन्दू धर्म पर श्रद्धा रखता है, सन्मार्ग में पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य रखता है, पापों से घृणा करता है और राम-नाम को नहीं भूलता।

अन्त में यही कहना है कि हिन्दू-समाज पर गोस्वामीजी का अपार ऋण है। इन्होंने हिन्दू-समाज के लिए जो कुछ किया है उसे सहस्रों उपदेशक भी नहीं कर सकते थे। हिन्दी, हिन्दू-धर्म और हिन्दुओं का कल्याण करने वाले गोस्वामी धन्य हैं और धन्य है वह जननी जिसके गर्भ से ऐसी महान् आत्मा अभिभूति हुई।

"भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो।"

बेसिक शिक्षा

(१) प्रस्तावना—वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति से असन्तोष
(२) महात्मा गाँधी की शिक्षा योजना
(३) बेसिक शिक्षा की प्रधान विशेषताएँ
(४) बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की उल्लेखनीय बातें
(५) उपसंहार—बेकारी ग्रामों की अशिक्षा का निराकरण

कुछ काल से हमारे देश में जिन अनेक बातों से असन्तोष फैला हुआ था उनमें शिक्षा-प्रणाली भी एक थी। शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध देश के कोने-कोने में आवाज उठाई जा रही थी। प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि इससे समाज को कितनी हानि हुई थी, इससे देश कितना नीचे गिरा था शिक्षित बेकारों की भीषण समस्या का उत्तर-दायित्व भी इसी पर था। हमारी शिक्षा-प्रणाली का जन्म जिस ध्येय (कार्यालयों के लिए लेखक तैयार करना) को लेकर हुआ था उसकी पूर्ति आवश्यकता से अधिक होगई। परिवर्तित देशकालानु-सार शिक्षा का ध्येय और प्रणाली दोनों में उलट-फेर की आवश्यकता थी, इस बात का प्रत्येक भारतीय अनुभव करता था।

विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी की दृष्टि इस दूषित शिक्षा-पद्धति पर बहुत दिनों से पड़ रही थी, पर वे उपयुक्त समय की प्रतीक्षा कर रहे

थे। कांग्रेस मंत्रि-मंडल की स्थापना हो जाने पर महात्माजी ने अपने शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी विचारों को जनता के सम्मुख उपस्थित किया। उनका ध्यान विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा की ओर गया और उन्होंने अपने कर-कमलों से एक शिक्षा-योजना का सूत्रपात किया जिसे 'वर्धा शिक्षा-योजना' कहते हैं। हमारी सरकार में इस शिक्षा-योजना में प्रांतीय आवश्यकताओं के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके उसे संयुक्त-प्रांत के लिए स्वीकार किया है और उसे 'बेसिक-शिक्षा' के नाम से विभूषित किया है। बेसिक शिक्षा की प्रधान विशेषताएँ चार हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) ६ वर्ष की अवस्था से १४ वर्ष की अवस्था तक के प्रत्येक बालक-बालिका के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का विधान किया गया है।

(२) शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखा गया है।

(३) शिक्षा में हस्तकलाओं को स्थान दिया गया है।

(४) हस्तकलाओं अथवा बालक-बालिका के घरेलू या सामाजिक वातावरण द्वारा शिक्षा-प्रदान की व्यवस्था की गई है। अर्थात् विभिन्न विषयों के ज्ञान का आधार बच्चे के दैनिक जीवन अथवा हस्तकला रखी गई है। इसे समन्वय (correlation) का सिद्धांत कहते हैं।

इन्हीं चार आधार-स्तम्भों पर बेसिक शिक्षा का भवन खड़ा किया गया है। इसके पाठ्यक्रम की कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। एक बात तो अँग्रेजी भाषा का बहिष्कार है; और दूसरी नागरिक शास्त्र के अध्ययन का स्थान है। हस्तकला की शिक्षा को दो वर्गों में विभाजित कर दिया गया है—अनिवार्य हस्तकला और वैकल्पिक हस्तकला। अनिवार्य हस्तकला के लिए कताई और कृषि और बागवानी का साधारण ज्ञान रक्खा गया है। वैकल्पिक हस्तकला के लिए (१) कताई-बुनाई, (२) कृषि, (३) दफ्ती,लकड़ी और धातु का उद्योग, (४) चमड़े का धन्धा, (५) मिट्टी का काम, आदि में से किसी एक का अध्ययन रक्खा गया है। बालक-बालिकाओं का पाठ्यक्रम

समान रखा गया है। हाँ, बालिकाओं को गृह-शिल्प का ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। गाँवों में १० वर्ष की आयु तक और नगरों में ६ वर्ष की अवस्था तक बालिकाओं को बालकों के साथ ही पढ़ने की व्यवस्था की गई है। तत्पश्चात् उनके लिए पृथक् स्कूलों की व्यवस्था है।

बेसिक शिक्षा में सर्वप्रथम स्थान हस्तकला की शिक्षा को मिला है। सच पूछिये तो नवीन शिक्षा रूपी काया का मेरु-दण्ड ही इसको माना गया है। आजकल के शिक्षा-शास्त्री प्रारम्भिक शिक्षा में हस्तकला को सर्वोच्च स्थान देते हैं। उनकी धारणा है कि बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं आत्म विकास के लिए इसका बड़ा महत्त्व है। यह तो हुआ हस्तकला का शिक्षा-सम्बन्धी महत्त्व। अब जीविका-सम्बन्धी महत्त्व लीजिए। विभिन्न हस्तकलाओं की शिक्षा प्राप्त करके बालक बड़े होकर उन्हें जीविकोपार्जन का साधन बना सकते हैं।

हस्तकला के ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों का उससे समन्वय बेसिक-शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता है। समन्वय क्या है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये हमें गणित पढ़ाना है। इस विषय का समन्वय हम कताई से कर सकते हैं। जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि की प्रतिक्रियाएँ लट्टी या गुण्डी बनाना, कताई की मजदूरी निकालना, सूत का नम्बर निकालना आदि द्वारा भली-भाति पढ़ाई जा सकती हैं। समन्वय का यह आशय नहीं है कि किसी विषय का अध्ययन कराते समय किसी हस्तकला को ढूँढकर उसके साथ विषय का सम्बन्ध भिड़ाया जाय, वरन् यह है कि बालक को किसी हस्तकला का कार्य करते समय भूगोल, गणित आदि जिन विषयों की जानकारी की आवश्यकता पड़े उनका ज्ञान उसी हस्तकला द्वारा कराया जाय। बालक के घरेलू अथवा सामाजिक वातावरण से भी विषय का समन्वय किया जा सकता है। प्रश्न उठता है कि समन्वय की क्या आवश्यकता है? बच्चे की यह प्रकृति होती है कि वह व्यवहारिक कार्य करना पसन्द करता है और अव्यवहारिक कार्य से घृणा करता है। अतः यदि उसे व्यव-

हारिक कार्य द्वारा अव्यवहारिक बातों का ज्ञान प्रदान किया जाय तो वह उसे अच्छी तरह ग्रहण कर सकेगा। हस्तकला द्वारा गणित आदि विषय पढ़ना ऐसा ही करना है। इस (समन्वय) को हम कुनाइन की गोली पर शक्कर लपेट कर खिलाना कह सकते हैं।

इस प्रकार विषयों का ज्ञान करने से तीन प्रधान लाभ होंगे। एक तो बालक का मन विषय का ज्ञान प्राप्त करने में लगेगा। दूसरे जो कुछ पढ़ाया जायगा वह उसकी समझ में भली-भाँति आ जायगा। आजकल की भाँति बिना समझे-बूझे रटने की आवश्यकता कभी न पड़ेगी। इसके अतिरिक्त शिक्षा का सम्बन्ध उसके दैनिक जीवन से हो जायगा। आजकल की शिक्षा किसी प्रकार भी बालक के दैनिक जीवन से सम्बन्धित नहीं है। यहाँ एक बालक की कहानी याद आ जाती है, जिसे अध्यापक ने बतलाया कि 'कन्द' का अर्थ 'मोटी-जड़' है। पर उसे यह नहीं बतलाया गया कि 'सकरकंद' भी एक कन्द है। फलतः वह यह कभी नहीं समझ सका कि 'सकरकन्द' जिसको वह नित्य खाता है एक कन्द ही है।

हस्तकला के पश्चात् दूसरा स्थान मातृ-भाषा की पढ़ाई-लिखाई को मिला है। अब तक मातृ-भाषा की पढ़ाई-लिखाई की सुव्यवस्था न थी। विशेषकर अङ्गरेजी-स्कूलों में तो उसकी दुर्दशा ही रही। हिन्दी-स्कूलों में भी उसकी दशा संतोषजनक नहीं रही। हर्ष का विषय है कि हमारे नेताओं का ध्यान मातृ-भाषा की ओर गया है। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में मातृ-भाषा का ज्ञान बच्चे की वृद्धि के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि माता का दूध। जाकिरहुसेन-कमेटी ने भी मातृ-भाषा के महत्त्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है—The proper teaching of the mother-tongue is the foundation of all education, अर्थात् मातृ-भाषा की समुचित शिक्षा ही सब प्रकार की शिक्षा का आधार है।

नागरिकता की शिक्षा को बेसिक-शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वास्तव में इसकी हमारे देश में सबसे अधिक आवश्यकता है। प्रचलित शिक्षा में यह बड़ी कमी है कि बालक-बालिकाओं

को नागरिक के अधिकार, कर्त्तव्य आदि से परिचित नहीं कराया जाता, उनके हृदय में समाज-हित, समाज सेवा आदि भावों की उत्पत्ति नहीं कराई जाती।

सारांश यह है कि बेसिक-शिक्षा सचमुच बड़ी ही अच्छी शिक्षा है। इससे बेकारी की भीषण समस्या तो हल होगी ही, साथ में ग्रामों की अशिक्षा का भी निवारण होगा। प्रत्येक बालक कोई न कोई उद्योग अथवा धंधा सीख जायगा, जिससे वह अपनी जीविका उपार्जन कर सकेगा। आजकल गाँवों की अशिक्षा का एक प्रधान कारण यह है कि शिक्षा अरुचिकर है और ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। ग्रामीण जनता का प्रधान व्यवसाय खेती है। बेसिक-शिक्षा में कृषि को सर्व-प्रथम स्थान मिला है। अतः माता-पिता अपने बालकों को सहर्ष इस शिक्षा की प्राप्ति के लिए स्कूल भेजेंगे, क्योंकि उनके बालक पढ़कर उनके उद्योग को वैज्ञानिक ढँग से कर सकेंगे इसके अतिरिक्त बालकों को हस्तकला से प्रेम होने के कारण स्कूल घर के समान प्यारा लगेगा, आजकल की भाँति कारागृह की भाँति नहीं, जहाँ उन्हें डंडों की मार खानी पड़ती है। ऐसी श्रेष्ठ शिक्षा से हमें पूर्ण लाभ उठाना चाहिए और इसके प्रचार में तन, मन, धन से प्रयत्नशील होना चाहिए। निस्संदेह महात्मा गाँधी के प्रौढ़ मस्तिष्क से प्रसूत यह शिक्षा-योजना हमारे बालकों तथा हमारे देश का कल्याण करेगी। हमको शीघ्र इस शिक्षा का प्रचार करके इसे देश के कोने-कोने में फैलाना चाहिए, नहीं तो—

"समय चूकि पुनि का पछिताने।
का वर्षा जब कृषी सुखाने॥"

ऋतुराज बसन्त

(१) प्रस्तावना—शिशिर का अन्त और बसन्त का आगमन
(२) बसन्त में प्रकृति का रूप
(३) बसन्त में मनुष्यों की दशा
(४) होली का त्यौहार

(५) बसन्त और कवि
(६) उपसंहार—सारांश

फागुन का महीना है। शिशिर ऋतु का अन्त हो रहा है। वह शीत जिसने मनुष्य के हाथ-पैर ठिठुरा दिये थे अब जारहा है। वह शीत जिसने अपनी भीषणता से सबको कँपा दिया था अब नष्ट होरहा है। वह शीत जिसके कारण पशु-पक्षियों की जान पर आ-बनी थी अब भाग रहा है। वह शीत जिसके कारण वृक्ष-लतादि मुरझा गये थे अब विदा होरहा है। उसकी बिदाई पर चराचर इस प्रकार प्रसन्न हैं जिस प्रकार अत्याचारी शासक के न रहने पर प्रजा। अब ऋतुराज बसन्त आरहा है। उसके स्वागत के लिए वृक्ष-लतादि ने पुलकित होकर पत्र रूपी नए-नए वस्त्र धारण किए हैं और सरसों ने बसन्ती साड़ी पहनी है। पक्षी चहचहाते हुए स्वागत गान की योजना कर रहे हैं। दक्षिण पवन सबको स्वागत-सम्मेलन का निमन्त्रण दे रहा है। कोकिल स्वागताध्यक्ष का आसन ग्रहण किए हुए है। आम मंजरियों से और पेड़-पौधे पुष्पों से लदकर हर्ष प्रकट कर रहे हैं। बड़ा सुहावना समय है। न ठण्डक है न गरमी।

इस समय प्रकृति में अद्वितीय सौन्दर्य देखा जाता है। बसन्त ने उसे खूब सजाया है। सरसों पीले पुष्पों से सजकर मन को लुभा रही है। सरोवरों में विकसित कमल नेत्रों को बहुत सुन्दर लग रहे हैं। गुलाब के फूलों की भाँवरी भरते हुए भ्रमरों की गुञ्जार हृदय में प्रविष्ट हो रही है। वनस्थली में लाल, नीले, गुलाबी, हरे, पीले, सफेद तरह-तरह के पुष्प देखकर हृदय हर्ष से उमड़ रहा है। चम्पा, चमेली, केतकी आदि-आदि वृक्ष अपनी सुगन्ध से पवन को आमोदित कर रहे हैं। अमराइयों में आम मंजरियों से विभूषित हो रहे हैं। उनमें कूकती कोयल मन को मदोन्मत्त कर रही है। माधवी आदि लताएँ लहलहाती हुई अपना उल्लास प्रदर्शित कर रही हैं। पलाश सिर से पैर तक रक्तिम वर्ण के प्रसूनों से अलंकृत हो रहा है। वृक्ष नई-नई कोपलों से अपना पुलक प्रकट कर रहे हैं। तरह-तरह के पक्षी अपने-अपने मधुर संगीत से श्रवणेन्द्रिय में अमृत

उँडेल रहे हैं। शीतल और सुगन्धित दक्षिणी वायु मन्द-मन्द बहकर जीवधारियों को मस्त कर रही है। चन्द्रमा का प्रकाश अत्यन्त स्वच्छ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति के रूप पर मुग्ध होकर वह हर्ष में खूब खिलखिला रहा है। प्रातःकाल और सायंकाल के दृश्य विशेष आकर्षक हैं। उस समय प्रकृति की शोभा कई गुनी बढ़ जाती है। उद्यान और कुञ्ज में उस समय का घूमना मन को तो अनिर्वचनीय आनन्द देता ही है, साथ ही स्वास्थ्यवर्द्धक भी होता है। बसन्त ऋतु के दिनों में प्रकृति में चारों ओर आनन्द ही आनन्द देखा जाता है। चारों ओर एक नवीन जीवन का सा संचार हो जाता है। चारों ओर एक प्रकार की मादकता-सी छा जाती है।

बसन्त में मनुष्य की दशा में भी पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। मानव-हृदय में उमंग उठती है, स्फूर्ति हो जाती है और छा जाती है एक प्रकार की मस्ती। शीतल और सुगन्धित वायु, रंग-बिरंगे कुसुमों की अवली, भ्रमरों की गुञ्जार, आम्र-मंजरी का सौरभ और कोयल की कूक हृदय में हूक उत्पन्न कर देती है। हृदय में प्रेम-भाव प्रबल हो जाता है। यह वह समय है जब मनुष्य नाच-रंग, गाना-बजाना आदि आमोद-प्रमोद के साधनों में संलग्न रहते हैं और अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं।

इसी ऋतु में हिन्दुओं का प्रसिद्ध त्यौहार होली मनाया जाता है। इस अवसर पर नाना प्रकार के नाच-गान होते हैं और बाजे बजाए जाते हैं। क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध, सभी खेल-कूद में भाग लेते हैं। हास्य और विनोद के लिए तरह-तरह की युक्तियाँ की जाती हैं। नाना प्रकार के स्वाँग रचे जाते हैं। नाटक आदि भी खेले जाते हैं। फाग की धूम रहती है और गुलाल की चारों ओर आँधी-सी उड़ती है। रंग-पानी पिचकारियों द्वारा फेंका जाता है। प्रत्येक के मुख पर उल्लास की छटा छा जाती है। कुछ वर्षों से इस मनोरंजक त्यौहार में कुछ गंदगी आगई है। मनुष्य धूल-मिट्टी भी एक दूसरे पर फेंकते हैं। गाँवों में तो यह बहुत घृणास्पद हो

गया है। कीचड़ और पेशाब मटकों में भर कर सोते हुए अथवा मार्ग चलते हुए मनुष्यों पर डाल दिया जाता है। गंदगी की दृष्टि से तो ऐसा करना बुरा है ही, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कम बुरा नहीं। इस प्रकरा का खेल ा शीघ्र बन्द हो जाय उतना ही अच्छा। ऐसा खेल, जिससे एक पक्ष को हर्ष होता है और दूसरे पक्ष को दुःख, सच्चा खेल नहीं कहा जा सकता। खेल से दोनों पक्षों का मनोरंजन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह कुरुचिपूर्ण भी न हो।

बसन्त कवियों को बहुत प्रभावित करता है। कवि सौन्दर्योपासक होते हैं और बसन्त में प्राकृतिक सौन्दर्य का अखंड राज्य रहता है। अतः कवियों की लेखनी अद्भुत सज-धज के साथ प्रकृति के प्रांगण में नृत्य करने लगती है। कवियों ने इस ऋतु का खूब वर्णन किया है। मानव-हृदय पर इस ऋतु का जो प्रभाव पड़ता है उसका भी उन्होंने अच्छा चित्रण किया है। पहले प्रकृति का रूप रूप-वर्णन देखिए—

"कूलन में केलिन में कछारन में कुञ्जन में,
क्यारिन में कलित कलीन विकसंत है।
कहै पद्माकर परागहू में पौनहू में,
पातन में पीकन पलाशन पगंत है।
द्वार में दिशान में दुनी में देश-देशन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरयौ बसंत है॥"

अब मानव-हृदय के प्रभाव को भी देखिए—

"भौ यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुख देत।
चैत-चाँद की चाँदनी, डारति किये अचेत॥"

सारांश यह है कि बसन्त सब ऋतुओं में श्रेष्ठ है। यही कारण है कि इसे ऋतुराज कहा जाता है। इस ऋतु में शीत अथवा गर्मी किसी को पीड़ित नहीं करती। प्रकृति अपना सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदर्शित

करती है और सभी प्राणी आनन्द-सागर में निमग्न रहते हैं। यह ऋतु प्रत्येक वस्तु में नवीन आभा, नवीन स्फूर्ति, नवीन जीवन भर देती है। क्या प्रकृति, क्या मनुष्य, हर्ष में फूले नहीं समाते।

ताज महल

(१) प्रस्तावना—संसार में ताज महल की ख्याति
(२) ताज महल की स्थिति और इसके बनने का कारण
(३) ताज महल के बनने में परिश्रम और व्यय
(४) ताज महल के बाह्याङ्गों का वर्णन
(५) ताज महल के आन्तरिक अङ्गों का वर्णन
(६) शरद-पूर्णिमा की रात को ताज महल का अनुपम सौन्दर्य
(७) उपसंहार—वास्तु-कला का अद्वितीय उदाहरण

विश्व की अद्भुत वस्तुओं में ताज महल की भी गणना है। संसार में जितनी ख्याति इस विशाल भवन की है उतनी शायद ही किसी अन्य भवन की हो। यह समाधि-मन्दिर मुगल-सम्राट् शाहजहाँ के पत्नी-प्रेम का जीता-जागता और मूर्तिमान् रूप है। यह इतना सुन्दर है कि संसार के कोने-कोने से स्त्री-पुरुष इसे देखने आते हैं और देखकर तृप्त नहीं होते। अतः स्मृति-रक्षा के लिये यात्री-गण प्रायः पत्थर की बनी हुई इसकी छोटी-छोटी प्रतिमूर्तियों को अपने साथ ले जाते हैं।

यह विशाल भवन आगरा में यमुना जी के दाहिने किनारे पर स्थित है और फोर्ट स्टेशन से लगभग दो मील दूर है। इसके तीन ओर बाग लगा हुआ है और चौथी ओर यमुनाजी हैं। इस मनोरम स्थिति से ताजमहल की शोभा और बढ़ गई है। इसके बनने का कारण शाहजाँ की प्राण-प्रिया मुमताजमहल की मृत्यु थी, जिसके नाम पर इसका नाम ताज महल रक्खा गया है। जब मुमताज को जीने की आशा नहीं रही तब उसने सम्राट् से प्रार्थना की कि आप मेरा ऐसा समाधि-मन्दिर बनवाएँ जिससे बढ़कर दूसरी इमारत दुनियाँ में न हो। शाहजहाँ ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और

उसकी मृत्यु के उपरांत संसार में अपनी सानी न रखने वाली इस इमारत को बनवाया।

ताज महल का नकशा शाहजहाँ ने स्वप्न में देखा था, ऐसी दंत-कथा प्रचलित है। उसी के अनुसार उसका निर्माण हुआ है। दूर-दूर के देशों से अच्छे से अच्छे कारीगर बुलाए गए। संगमरमर राजपूताने की खानों से मँगाया गया। सन् १६३१ ई० में इस विश्व-विख्यात भवन का निर्माण आरम्भ हुआ। बीस सहस्र कारीगर, मजदूर आदि इसमें नित्य कार्य करते थे। बीस वर्ष में यह बनकर पूरा हुआ। ऐसा प्रसिद्ध है कि शाहजहाँ ने इसके बनाने वाले कारीगरों के हाथ इस आशंका से काट लिए कि कहीं वे ऐसा सुन्दर भवन अन्यत्र न बना दें। इसके बनने में कई करोड़ रुपये व्यय हुए।

ताज महल की सुन्दरता का वास्तविक परिचय कराना लेखनी की शक्ति के परे है। इस महल तक पहुँचने के लिए हमको लाल पत्थर के एक विशाल प्रवेश-द्वार में होकर जाना पड़ता है। उस पर कुरान की आयतें श्वेत पत्थर के अक्षरों में इस अनुपात से लिखी हुई हैं कि सभी अक्षर एक ही आकार के दिखाई पड़ते हैं। इस द्वार के पास एक अजायबघर है जिसमें मुगल बादशाहों के अस्त्र-शस्त्र बर्तन, चित्र आदि सुरक्षित हैं। आगे बढ़कर हम मार्ग के दोनों ओर सर्व के पेड़ों की लुभावनी पंक्तियों और फुब्बारों को देखते हैं। हरी-हरी दूब के मखमली गद्दे इधर-उधर बिछे हुए हैं। आगे एक परम रम्य जल-कुण्ड है, जिसमें विकसित कमल और रंग-विरंगी मछलियों की क्रीड़ा मन को उल्लास से भर देती है। इसमें जल की चंचलता से इधर-उधर हिलता हुआ ताज का प्रतिविम्ब बड़ा अच्छा लगता है। इस जल-कुण्ड के चारों ओर संगमरमर की बेञ्चें पड़ी हुई हैं, जिन पर दर्शक गण बैठकर कुण्ड के मनोरम दृश्य का आनन्द लेते हैं। यहीं से वे केमरा द्वारा ताज का फोटो भी लेते हैं। इसी स्थान से हम ताज के उद्यान की शोभा देखते हैं जो हमारे चारों ओर प्रसारित है। यहीं से श्वेत संगमर-

मर-निर्मित ताज संगमरमर के बने हुए मनोरम चबूतरे पर खड़ा हुआ स्पष्ट दृग्गोचर होता है। चबूतरे के चारों कोनों पर गगन चुम्बी चार मीनारें हैं, जिनमें ऊपर चढ़ने को चक्करदार सीढ़ियाँ हैं। मध्य में ताज की विशाल गुम्बद है जो २७५ फीट ऊंचा है। संसार में इतना ऊंचा गुम्बद दूसरा नहीं है। इसके चारों ओर छोटे-छोटे चार गुम्बद और हैं। ताज के बाह्य आकर्षक दृश्य को देखकर कौन प्रशंसा और आश्चर्य में मग्न न हो जायगा? ताज महल के चारों ओर दीवारों पर काले पत्थर के अक्षरों में कुरान की आयतें खुदी हुई हैं। उनपर इतनी सुन्दर पच्चीकारी है कि देखते ही बनती है। तरह-तरह के बेल-बूटे रंग-बिरंगे पत्थर के टुकड़ों से बने हुए हैं। नाना प्रकार के फूल-पत्ते प्राकृतिक से प्रतीत होते हैं।

ताज महल के भीतर का दृश्य भी बड़ा चित्ताकर्षक है। विशाल गुम्बद के नीचे मुमताजमहल और शाहजहाँ की समाधियाँ हैं। वे वास्तविक समाधियों की नकल हैं, जो ठीक उन्हीं के नीचे एक तहखाने में सुरक्षित हैं। समाधियों के चारों ओर संगमरमर की जालीदार परिक्रमा है, जो दर्शकों के निर्माता के हाथ की सुन्दर सफाई का प्रभूत परिचय कराती है। समाधियों पर बहुमूल्य पत्थरों का जड़ाऊ काम ऐसा सुन्दर है कि देखकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। नीचे सीढ़ियों द्वारा तहखाने में जाकर असली समाधि देखी जाती हैं। तहखाने में अन्धकार छाया रहता है। अतः प्रकाश की सहायता से समाधियों के दर्शन होते हैं। वहाँ का दृश्य बहुत मनोरंजक है। सुगन्धित अगरबत्तियाँ जला करती हैं। प्रकाश में जड़ाऊ काम जगमगाता हुआ नेत्रों को बड़ा सुहावना लगता है। शाहजहाँ और मुमताजमहल की समाधियों में एक अन्तर है जो किसी भी दर्शक से नहीं छिप सकता। मुमताजमहल की समाधि पर तो कुरान की आयतें अङ्कित हैं, पर शाहजहाँ की समाधि पर नहीं। इसका कारण औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता है। उसने यह सोचकर कि किसी दिन इस समाधि पर मनुष्य के पैर पड़ सकते हैं, कुरान की आयतों को उसपर लिखाकर उनका

निरादर करना नहीं चाहा।

शरद्-पूर्णिमा की रात्रि को ताज महल की जो अनुपम छटा हो जाती है वह वर्णनातीत है। सुधाकर की निर्मल एवं उज्ज्वल ज्योत्स्ना में ताज ऐसा प्रतीत होता है मानो साँचे में ढला हो। चन्द्रमा की किरणों से वह जगमगाने लगता है। उसकी एक दीवार का कुछ भाग तो शीशे के समान झिलमिलाता है। दूध-सी चाँदनी में श्वेत संगमरमर-निर्मित चमचमाता हुआ ताज देखकर हृदय में अपूर्व शान्ति और हर्ष उत्पन्न होता है। यमुना के निर्मल और शांत जल में उसका प्रतिविम्ब अद्वितीय सौन्दर्य की सृष्टि करता है। शरद्-पूर्णिमा की रात्रि को ताज की अनुपम छटा देखने के लिए दूर-दूर से मनुष्य आते हैं जिससे वहाँ बड़ी भीड़ रहती है। दर्शकों के मुख पर आश्चर्य और अलौकिक आनन्द की झलक देखी जाती है। कवि ताज पर कविता बनाने में मग्न और चित्रकार ताज का चित्र खींचने में संलग्न देखे जाते हैं। कोई दर्शक-मण्डली मीनारों पर आसन जमाती है, तो कोई चबूतरों पर। कोई दर्शक-मण्डली गप्पों से मनोरंजन करती है, तो कोई शान्तिपूर्वक ताज को निर्निमेष नेत्रों से निहारती है। कोई दर्शक-मण्डली गाती-बजाती है, तो कोई कविता से मन बहलाती है। कभी-कभी कोई मनचला दर्शक अपनी बुलन्द आवाज से उस विशाल भवन को गुँजाकर उसकी शान्ति भंग कर देता है।

कितने आश्चर्य की बात है कि लगभग तीन सौ वर्ष समाप्त होने पर भी ताज के सौन्दर्य में, ताज की शोभा में, किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आई है। तीन सौ वर्ष से सूर्य के ताप, बिजली के प्रकोप, वायु के थपेड़ों, मेघों की झड़ियों, ओलों की बौछारों; और शीत के कसालों को ताज उसी प्रकार शान्तिपूर्वक सहता रहा है जिस प्रकार एक योगी सहता है। इसका श्रेय भारतीय शिलपकला को है। ताज में पत्थरों की जुड़ाई, चित्रकारी, पच्चीकारी, खुदाई, कटाई आदि देखकर मुगल-कालीन भारत की वास्तु-कला की उत्कृष्टता का प्रचुर परिचय मिलता है। ताज शाहजहाँ के प्रेमासिक्त

हृदय की प्रतिकृति है। मृत्यु का चिर मौन इस समाधि-मन्दिर में सर्वदा विद्यमान रहता है। धन्य है भारतीय कला! जिसने ताज जैसा भव्य भवन विश्व में प्रस्तुत किया, और धन्य है प्रेमी शाहजहाँ! जिसने इस भवन द्वारा अपनी प्रियतमा का नाम संसार में अजर-अमर कर दिया।

नागरिक के अधिकार

(१) प्रस्तावना—प्रत्येक नागरिक को कतिपय अधिकारों की आवश्यकता
(२) नागरिक के अधिकारों के दो रूप—
(अ) सामान्य अधिकार, (आ) राजनैतिक अधिकार
(३) सामान्य अधिकार—
(क) शिक्षा, (ख) आर्थिक सुविधा, (ग) रक्षा, (घ) न्याय,
(ङ) विचार और भाषण की स्वतन्त्रता, (च) धार्मिक स्वतन्त्रता,
(छ) पारिवारिक स्वतन्त्रता
(४) राजनैतिक अधिकार—
(क) मत देने का अधिकार, (ख) चुनाव के लिए खड़े होने का अधिकार, (ग) पद-प्राप्ति का अधिकार
(५) उपसंहार—सारांश

उन्नति का रहस्य अधिकार है। सरकार का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति एवं समुचित विकास के लिये कतिपय अधिकार प्रदान करे। इससे व्यक्ति को तो लाभ होगा ही, समाज का भी हित-साधन होगा। समाज व्यक्ति का ही समष्टि रूप है। जब व्यक्ति की दशा में सुधार होगा, जब व्यक्ति अपनी शक्तियों के फूलने फलने के लिए उचित वातावरण पाएगा और उनका उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा, तब क्या कारण है कि समाज समुन्नत न हो? उदाहरण के लिए, एक अशिक्षित मनुष्य की अपेक्षा उच्च शिक्षित मनुष्य द्वारा समाज का बहुत भला हो सकता है। ऐसे समाज में जिसे नागरिकता के अधिकार प्राप्त रहते हैं, अनेक वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, विद्वान, सुधारक एवं विचार-शील व्यक्ति अवतीर्ण होते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक अधिकार मिलने चाहिएँ।

ये आवश्यक अधिकार दो प्रकार के होते हैं—सामान्य; और राजनैतिक। पहले सामान्य अधिकारों को लीजिए, सामान्य अधिकारों में सर्व-प्रथम स्थान शिक्षा का है। सरकार का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष को अनिवार्य रूप से प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करे। शिक्षा प्रकाश है, जाग्रति, उन्नति है। अशिक्षित व्यक्ति पूँछ और सींग-रहित पशु ही है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है सरकार ऐसे साधन जुटाए जिनसे प्रत्येक व्यक्ति सुशिक्षित हो सके, प्रत्येक व्यक्ति भगवती वीणापाणि के प्रसाद का पात्र बन सके।

आर्थिक सुविधा भी व्यक्ति के लिए किसी प्रकार कम आवश्यक नहीं। मनुष्य की चार प्रधान आवश्यकताओं में प्रथम आवश्यकता भोजन; और द्वितीय वस्त्रों की है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह जनता की इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करे। भूखे के लिए अन्न और नंगे के लिए कपड़े के प्रबन्ध का भार सरकार पर है। सरकार बेकारों के लिए कार्य दे और इस प्रकार के कानून बनाए जिससे कोई भी भूखा अथवा नंगा न रहे। इसके अतिरिक्त योग्य एवं परिश्रमी मनुष्यों के लिए जीविकोपार्जन की सुविधा भी होनी चाहिए।

सरकार का कर्त्तव्य है कि वह जनता के प्राण और सम्पत्ति की रक्षा करे, जनता में शांति रखे। कोई किसी को सताए नहीं, कोई किसी का धन अपहरण न करे। चोरों और लुटेरों को दण्ड दिया जाय। मार-पीट करने वालों तथा हत्यारों को सजा दी जाय। प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह अपनी सम्पत्ति का उचित उपयोग करे और अपने शरीर को सुरक्षित रखे।

न्याय-प्राप्ति पर भी प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। सरकार किसी के साथ स्वयं अन्याय न करे और न किसी को अन्याय करने दे। प्रत्येक को कानून की दृष्टि में समान समझा जाय और न्यायालयों में निष्पक्षता से काम लिया जाय। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि न्याय-वितरण सस्ता और शीघ्र हो, अन्यथा गरीब उससे लाभ न उठा सकेंगे।

प्रत्येक नागरिक को विचार और भाषण की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इससे मस्तिष्क का विकास होता है। यदि विचारों को व्यक्त होने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता तो वे मस्तिष्क में विकार उत्पन्न करके उसके विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त पारस्परिक वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय की स्वतंत्रता से हम तथ्य तक सरलता से पहुँच जाते हैं। परन्तु विचार और भाषण की स्वतन्त्रता से यह तात्पर्य नहीं है कि एक मनुष्य दूसरे को गालियाँ दे, उसकी मान-हानि करे। एक को दूसरे की स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए।

प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार जिस धर्म का अनुयायी होना चाहे, हो; जिस देवता की पूजा करना चाहे, करे; जिस प्रकार किसी धार्मिक उत्सव को मनाना चाहे, मनाए। दूसरे धर्म वालों के साथ अनुचित व्यवहार न करे, अथवा ऐसा कोई कार्य न करे जिससे समाज को हानि पहुँचे। विपरीत दशा में सरकार का कर्त्तव्य है कि वह हस्तक्षेप करे।

पारिवारिक स्वतन्त्रता पर भी प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। जो जिसको चाहे अपना जीवन-साथी चुने, जो जिसको चाहे अपनी पत्नी बनाए, जो किसको चाहे अपना पति चुने। सरकार को इस कार्य में दखल देने की आवश्यकता नहीं। अपने परिवार की व्यवस्था के लिए प्रत्येक व्यक्ति जैसे नियम उचित समझे, बनाए। अपने बालकों को जिस स्कूल में ठीक समझे, भेजे, भोजन-वस्त्रादि का जैसा चाहे प्रबन्ध करे, घर में जिस प्रकार चाहे मनोरंजन करे। पर वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उसके अन्य भाइयों का अथवा पड़ोसियों का अहित हो।

उपर्युक्त सामान्य अधिकारों के अतिरिक्त प्रत्येक नागरिक को कुछ राजनैतिक अधिकार भी मिलने चाहिएँ। उसे अधिकार हो कि वह क्या म्यूनिसिपल बोर्ड, क्या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, क्या प्रान्तीय धारा-सभा, क्या केन्द्रीय धारा-सभा सभी के चुनाव में अपना मत दे

सके। प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यह न्याय-संगत ही है कि जिन व्यक्तियों के हाथ में शासन की बागडोर हो उनके चुनने में प्रत्येक शासित स्त्री-पुरुष का हाथ रहे।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक नागरिक को चुनाव के लिए खड़े होने का अधिकार होना चाहिए। यह अनुचित है कि कुछ लोगों को ही यह अधिकार प्राप्त हो। जिसे मत देने का अधिकार हो उसे स्वयं भी चुनाव के लिए खड़े होने का अधिकार मिलना चाहिए। जो दूसरों से शासित हो उसे स्वयं भी शासन करने का अधिकार मिलना चाहिए।

पद-प्राप्ति का अधिकार भी प्रत्येक व्यक्ति को मिलना चाहिए। सरकारी नौकरी में जाति-पाँति, सम्प्रदाय, धर्म आदि का विचार न किया जाय। कोई भी व्यक्ति किसी पद को पा सके। योग्यता ही पद-प्रदान की कसौटी रखी जाय।

सारांश यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उपर्युक्त अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ। हर्ष की बात है कि हमारे देश में गणतन्त्र के अरुणोदय के फलस्वरूप ये अधिकार प्रत्येक नागरिक को मिल गए हैं। विदेशी शासन के चंगुल से मुक्त होकर हम भारतीय अपने जन्मसिद्ध नागरिक अधिकारों को पुनः पा गए हैं।

हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव

(१) प्रस्तावना—विद्यालयों में वार्षिकोत्सव का आयोजन
(२) खेल-कूद की प्रतियोगिताएँ
(३) वाद-विवाद, कविता और निबन्ध प्रतियोगिताएँ
(४) वार्षिकोत्सव की तैयारियाँ
(५) आमन्त्रित व्यक्तियों का स्वागत-सत्कार
(६) विद्यालय के प्रधानाध्यापक की रिपोर्ट
(७) पुरस्कार-वितरण
(८) सभापतिजी का भाषण और जल-पान
(९) उपसंहार—वार्षिकोत्सव की उपयोगिता

प्रायः प्रत्येक विद्यालय में वार्षिकोत्सव मनाया जाता है। यह प्रायः वर्ष के अन्तिम भाग में होता है। हमारे विद्यालय में फरवरी मास में यह उत्सव बड़े ठाठ से मनाया गया। विद्यालय के प्रधानाध्यापकजी ने ६, ७ और ८ फरवरी, तीन दिन इसके लिये निश्चित किए। प्रथम दिन विद्यार्थियों की खेल-कूद प्रतियोगिता के लिए रखा गया। द्वितीय दिन वाद-विवाद, निबन्ध और कविता प्रतियोगिताओं के लिए रखा गया। तृतीय दिन पुरस्कार-वितरण और जल-पान के लिए रखा गया।

वार्षिकोत्सव के कार्य-क्रम का सबसे प्रथम अङ्ग खेल-कूद-प्रतियोगिता बड़े उत्साह और हर्ष के साथ आरम्भ हुआ। विद्यार्थी नेकर पहिन-पहिन कर खेल के स्थान पर ११ बजे एकत्रित हुए। प्रधानाध्यापक जी तथा अध्यापकगण भी उपस्थित थे। ठीक ११॥ बजे खेल आरम्भ हुआ। सबसे पहले १०० गज की दौड़ हुई। इसमें केवल ८ विद्यार्थी सम्मिलित हुए। इनमें से एक तो १० गज ही दौड़ कर रह गया और दूसरा दौड़ते-दौड़ते गिर गया। सौभाग्यवश उसके कुछ चोट न लगी। शेष में से प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थी पुरस्कार के लिए चुने गये। प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला मेरा मित्र था। मुझे उसकी विजय पर बड़ा हर्ष हुआ और मैं दौड़कर उससे लिपट गया। फिर रस्साकशी आरम्भ हुई। उपस्थित विद्यार्थी दो श्रेणी में बाँट दिए गए। तीन बार रस्सा खींचा गया। पहली बार हमारी टीम की विजय हुई। दूसरी बार विरोधी टीम जीती। तीसरी बार पुनः हमारी टीम विजयी हुई। अतः हर्ष-ध्वनि के बीच हमारी टीम पारितोषिक के लिए चुनी गई। फिर लोहे का गोला फेंकने का खेल आरम्भ हुआ जिसमें केवल ४ विद्यार्थियों ने भाग लिया। उनमें एक पुरस्कार के लिए चुना गया। इन खेलों के अतिरिक्त ऊँचा कूदना, लम्बा कूदना, धीरे साइकिल चलाना आदि कई खेल हुए। ४ बजे खेल-कूद की प्रतियोगिताओं का अन्त हुआ।

दूसरे दिन का कार्य-क्रम भी कम रोचक न था। सबसे पहले

प्रातःकाल ८ बजे से वाद-विवाद प्रतियोगिता आरम्भ हुई। वाद-विवाद का विषय था—'ग्राम्य जीवन अच्छा है या नागरिक जीवन' प्रतियोगिता में भाग लेने वाले १० विद्यार्थी थे, जिनमें से ५ पक्ष में बोले और ५ विपक्ष में। वाद-विवाद का आरम्भ करने वाला विद्यार्थी बड़ा अच्छा वक्ता था। उसने अनेक तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्राम्य जीवन कहीं अच्छा है। उसके कहने के ढङ्ग, उच्च स्वर, भाषा तर्क आदि का श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बीच-बीच में तालियाँ पीट कर वक्ता की सराहना की और जब उसने वक्तृता का अन्त किया तब तो तालियों की लगातार तुमुल-ध्वनि से वाद-विवाद का कमरा गूँज उठा। उसके पश्चात् विपक्षी वक्ता बोलने को खड़ा हुआ। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। उसके मुख से बार-बार प्रयत्न करने पर भी शब्द न निकले श्रोताओं ने तालियाँ पीट दीं। बेचारा घबड़ा गया। चुपचाप आकर नीचा मुख करके अपने स्थान पर बैठ गया। अन्य वक्ताओं में एक और अच्छा बोलने वाला था, वह विपक्ष में बोला। उसका भी कहने का ढङ्ग प्रशंसनीय था। उसको और प्रथम वक्ता को क्रमशः द्वितीय और प्रथम पुरस्कार घोषित हुआ। ठीक १० बजे वाद-विवाद समाप्त हुआ। १२ बजे से निबन्ध-प्रतियोगिता आरम्भ हुई। निबन्ध का विषय था—'विद्यार्थी-जीवन का महत्व'। मेरे अतिरिक्त ६ विद्यार्थियों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। हम लोगों को १॥ घंटे का समय दिया गया। मुझे पहले तो बड़ी कठिनाई मालूम हुई। कोई विचार मेरे मस्तिष्क में न आया। पर जब मैं ५ मिनट एकाग्र-चित्त से विषय पर सोचता रहा तब कहीं मुझे लिखने के लिए मसाला मिला। १॥ बजे हम सभी ने अपना-अपना निबन्ध प्रधानाध्यापकजी को दे दिया। उन्होंने स्वयं निबन्धों को जाँचा और परीक्षा-फल सुनाया। जब मैंने सर्व-प्रथम अपना नाम सुना तब मेरे हृदय में हर्ष का समुद्र उमड़ने लगा। मेरे मित्रों ने आकर मुझे बधाई दी। सायंकाल ६ बजे कवि-सम्मेलन आरम्भ हुआ। सभापति का आसन कवि-सम्राट पं० अयोध्यासिहजी उपाध्याय ने सुशोभित किया।

विद्यालय का हॉल श्रोताओं और दर्शकों से खचाखच भर गया। इस कवि-सम्मेलन में स्थानीय सभी विद्यालयों से कवि बुलाए गए थे। समस्याएँ थीं—'मानव भवन में' और 'बसन्त है'। स्वतन्त्र विषय था—'स्वदेश प्रेम'। बड़ी-बड़ी सुन्दर रचनाएँ सुनने को मिलीं। कतिपय सुमधुर कण्ठ वाले कवियों की वाणी ने श्रवणों में अमृत उँडेल दिया। श्रोता मंत्र-मुग्ध हो गए। 'पुनः पुनः' की ध्वनि से हॉल गूँजने लगा। उपाध्यायजी से भी प्रार्थना की गई। उन्होंने कविता सुनाकर हमारे हर्ष को चरम कोटि पर पहुँचा दिया। जब प्रतियोगिता का फल सुनाया गया तब मुझे कुछ खेद हुआ, क्योंकि हमारे विद्यालय का कोई भी विद्यार्थी पुरस्कार न पा सका।

तीसरे दिवस का कार्य-क्रम विशेष रोचक था। उस दिन विशेष तैयारियाँ की गईं। एक विशाल पण्डाल बनाया गया, रंग-विरंगे तोरण और पताकाएँ चारों ओर लगाई गईं। सफाई की गई और चारों ओर जल का छिड़काव किया गया। प्रवेश-द्वार पर 'शुभागमन' और वार्षिकोत्सव फूल-पत्तियों से बनाकर सम्पूर्ण केले के खम्भों में लगाए। प्रवेश-द्वार से पण्डाल तक सुसज्जित मार्ग बनाया गया। पण्डाल के भीतर सभापतिजी और आमन्त्रित सज्जनों के बैठने के लिए ऊँचा रंगमंच बनाया गया। उस पर गलीचे बिछाए गए और गलीचों पर पंक्तियों में कुर्सियाँ रखी गईं। सभापतिजी के लिए केन्द्र में एक कुर्सी और मेज लगाई गई। पंडाल में विद्यार्थियों के बैठने का प्रबन्ध था। वह खूब सजाया गया था। नाना प्रकार के चित्र दीवारों पर टाँगे गए थे। उस दिन की कार्यवाही के सभापति शिक्षा-विभाग के मंत्री थे। कार्यवाही का आरम्भ ४ बजे सायंकाल से होने को था।

विद्यार्थी, प्रधानाध्यापक जी और अध्यापक-गण ३ बजे ही आ गए और प्रबन्ध करने लगे। प्रवेश-द्वार पर स्वागत के लिए एक अध्यापक और दो विद्यार्थी नियुक्त हुए। पंडाल के चारों ओर बालचर खड़े किये गए। सभापतिजी और आमंत्रित जनों के लिए पुष्प-मालाएँ मँगाई गईं। ३॥ बजे से आमंत्रित व्यक्ति आने लगे। प्रवेश-

द्वार पर स्वागत के पश्चात् प्रधानाध्यापकजी उन्हें रंगमंच पर बिठाने लगे। ठीक ४ बजे सभापतिजी मोटर से उतरे। प्रवेश-द्वार पर उनका स्वागत किया गया। फिर वे रंगमंच पर ले जाये गये। उनके आसन पर विराजने पर विद्यालय के छोटे-छोटे बच्चों की करतल-ध्वनि के बीच उनको तथा आमंत्रित महानुभावों को पुष्प-मालाएँ पहिनाईं। फिर बालचरों के राष्ट्र-गीत के साथ उत्सव की कार्यवाही आरम्भ हुई।

सबसे पहले प्रधानाध्यापकजी ने विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट सुनाई जिसे उपस्थित सज्जनों ने बड़े ध्यान से सुना। उसमें प्रधानतः विद्यालय की आर्थिक दशा, परीक्षा-फल, विद्यार्थियों की संख्या, उन्नति, आवश्यकताएँ आदि का दिग्दर्शन कराया गया और जनता से बीस सहस्र रुपयों की सहायतार्थ अपील की गई।

इसके पश्चात् पुरस्कार-वितरण समारोह आरम्भ हुआ। विद्यार्थियों को पदक, पुस्तकें आदि वस्तुएँ पारितोषिक-स्वरूप मिलीं सभापतिजी ने स्वयं अपने हाथ से पुरस्कार दिए और बड़े प्रेम से प्रत्येक विजेता से हाथ मिलाया। उस समय का दृश्य विचित्र था। हर्ष और विषाद दोनों का संयोग देखा जाता था। पुरस्कार पाने वाले हर्ष के समुद्र में डूबे हुए थे और न पाने वाले उदासी के तड़ाग में।

फिर सभापतिजी का भाषण हुआ। उन्होंने पहले विद्यालय के अधिकारियों को अपने सभापति के पद पर आसीन किए जाने के उपलक्ष में धन्यवाद दिया। तदनन्तर पारितोषिक-विजेताओं को बधाई दी और अन्य विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। अन्त में उन्होंने विद्यालय के कार्य की प्रशंसा करते हुए प्रधानाध्यापकजी की भूरि-भूरि सराहना की। तत्पश्चात् प्रधानाध्यापकजी ने आगन्तुक महानुभावों और सभापतिजी को अनेक धन्यवाद दिए। फिर जल-पान हुआ। इस भाँति हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव बड़े आनन्द के साथ समाप्त हुआ।

अन्त में यही कहना है कि विद्यालय के वार्षिकोत्सव से विद्यालय और विद्यार्थी-गण दोनों को ही लाभ पहुँचता है। चारों ओर

विद्यालय की ख्याति होती है। जनता और विद्यालय का सम्बन्ध घनिष्ठ होता है। पुरस्कार प्राप्त करने से विद्यार्थी प्रोत्साहित होते हैं। वे मिल-जुल कर कार्य करना सीखते हैं, उनमें प्रबन्ध-शक्ति आती है, उनका मनोरंजन भी होता है।

भारतवर्ष को समृद्ध बनाने के साधन

(१) प्रस्तावना—भारतवर्ष की प्राचीन समृद्धि

(२) भारत को समृद्ध बनाने के साधन—

(क) कृषि की उन्नति, (ख) प्राचीन उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान, (ग) नवीन उद्योगों का प्रचार, (घ) वैज्ञानिक उन्नति, (ङ) स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम, (च) परिश्रम एवं अध्यवसाय

(३) उपसंहार—सारांश

विश्व में आजकल कई देश समृद्धि के शिखर पर चढ़े हुए हैं। अमेरिका को ही ले लीजिए। इस देश ने कितनी समृद्धि प्राप्त कर ली है! आज यह कितना धनाढ्य है! हमारा देश भी एक दिन ऐसा ही समृद्ध था। एक वह समय था जब भारतवर्ष में दूध-घी की नदियाँ बहती थीं और एक यह समय है जब वह दाने-दाने को तरसता है। एक वह समय था जब यह देश 'सोने की चिड़िया' कहलाता था और एक यह समय है जब यह 'मिट्टी की चिड़िया' बना हुआ है। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने प्राचीन भारत की समृद्धि के सम्बन्ध में लिखा है, "यह हिन्दुस्तान एक ऐसा अथाह गडढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।" पर क्या आज यह अपनी खोई हुई समृद्धि को पुनः प्राप्त नहीं कर सकता है? अवश्य। हाँ, प्रयत्न की आवश्यकता है।

भारत को समृद्ध बनाने के लिये हमें कृषि की उन्नति करनी होगी। कृषि हमारे देश को समृद्धिशाली बनाने का प्रधान साधन है, क्योंकि यह यहाँ का प्रधान व्यवसाय है। इस के सहारे देश

के असंख्य व्यक्तियों को खाने के लिये रोटी और पहनने को कपड़ा मिलता है। आजकल खेती की बुरी दशा है। किसी भी देश में प्रति एकड़ और प्रति किसान भारतवर्ष की बराबर कम उपज नहीं होती। भरसक परिश्रम करने पर भी किसान अच्छी फसल नहीं उगा सकते। इसके कई कारण हैं। यहाँ सिंचाई का सुप्रबन्ध नहीं है। पुराने ढंग के लकड़ी के हल प्रयोग में आते हैं जो जमीन में अधिक नीचे नहीं घुस सकते और नीचे की उपजाऊ मिट्टी को ऊपर नहीं ला सकते। ऊपर की मिट्टी अधिक दिनों तक उपजाऊ नहीं बनी रह सकती। अच्छे खाद का अभाव भी खेती की कम पैदावार का उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अच्छे बीजों के अभाव से भी अच्छी फसल नहीं उगती। अनेक प्रकार के रोगों से फसल का नाश हो जाता है। अतः हमें चाहिये कि हम इन सब बातों का समुचित प्रबन्ध करें जिससे खेती की उन्नति हो।

प्राचीन उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान भी हमारे देश को समृद्ध शाली बनाने का अच्छा उपाय है। सुनते हैं, यहाँ पहले इतना बारीक कपड़ा हाथ से बुना जाता था कि उसका थान का थान अंगूठी में होकर निकल सकता था। यहाँ के खिलौने देश-देशान्तरों में भेजे जाते थे। आज हम अपने प्राचीन कला-कौशल को भूले हुए हैं। जहाँ प्राचीन काल में हमारे कला-कौशल और उद्योग-धन्धों के कारण विदेशों से असंख्य रुपया खिचकर हमारे देश में आता था वहाँ आजकल देश का बहुत-सा धन विदेशों में जा रहा है। इस धन को अपने देश से बाहर जाने से रोकने का साधन यही है कि हम अपनी आवश्यक वस्तुओं को जुटाने के लिए प्राचीन उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करें और नये-नये धन्धे सीखें। कपड़ा बुनना, चरखा चलाना, रेशम के कीड़े पालना, साबुन बनाना, कागज बनाना रंग बनाना, मधु-मक्खी पालना, तेल-इत्र बनाना, मुर्गियाँ पालना, खिलौने बनाना आदि ऐसे धन्धे हैं जिनको थोड़ी-सी पूँजी से किया जा सकता है। जापान ने जो इतनी अधिक समृद्धि प्राप्ति की है इसका कारण उसके उद्योग-धन्धे हैं। जापान के प्रत्येक स्कूल में

बालक को कुछ न कुछ धंधा सिखाया जाता है। बालक घड़ी बनाना, साईकिल की मरम्मत करना, फोटोग्राफी आदि धन्धे स्कूलों में सीखते हैं। इन कामों से बालकों का मनोरंजन होता है और राष्ट्रीय धन-धान्य की वृद्धि भी होती है। जापान की विशेषता को हम क्यों न अपनी शिक्षा में स्थान दें ? क्या ही अच्छा हो यदि हमारे बालकों को आरम्भ से ही हस्तकला की शिक्षा दी जाय।

इसके अतिरिक्त नवीन उद्योगों के प्रचार की भी आवश्यकता है। आजकल मशीनों का युग है। हमें उनकी सहायता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, किसी देश के शोषण के लिए नहीं, नए उद्योगों को अपनाना चाहिए; जिससे हमारे देश का धन बाहर जाने से रुक सके। साइकिल, मोटर, रेल, जलयान, वायुयान आदि भी हमारे यहाँ तैयार हो सकें। जहाँ तक हो सके हमें दूसरों का मुँह न ताकना पड़े।

यह तभी हो सकता है जब हमारे देश में विज्ञान की उन्नति हो, नवीन-नवीन आविष्कार तथा अन्वेषण हों। इसके लिए सरकार को देश के प्रधान प्रधान वैज्ञानिकों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए और उन्हें सहायता देकर प्रोत्साहित करना चाहिए। अच्छा हो यदि एक केन्द्रीय प्रयोगशाला की स्थापना की जाय और उसमें विख्यात वैज्ञानिक रखे जायँ।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम-भाव रखने से ही भारतवर्ष की समृद्धि होगी। आजकल हम में से अधिकांश मनुष्यों में यह भाव नहीं पाया जाता। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वदेशी वस्तुओं से न करके विदेशी वस्तुओं से करते हैं। जापान, इङ्गलैंड, जर्मनी आदि विदेशी वस्तुओं की खपत हमारे देश में होती है। परिणाम यह होता है कि देश की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग विदेशों में चला जाता है और हमारा देश निर्धन होता जाता है। इससे अधिक और हमारी मूर्खता क्या हो सकती है कि हम स्वयं अपनी लक्ष्मी का बहिष्कार कर रहे हैं, हम स्वयं अपने हाथों से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है

कि प्रत्येक व्यक्ति जिसकी नाड़ियों में भारत माता का रक्त बहता है यह प्रण करे कि वह आजीवन कभी कोई विदेशी वस्तु नहीं खरीदेगा, चाहे उसे वह वस्तु स्वदेशी वस्तु की अपेक्षा सस्ती ही क्यों न मिले। यहाँ तक कि यदि कोई विदेशी वस्तु मुफ्त दे तो भी उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए और उसके स्थान पर व्यय करके भारतीय वस्तु क्रय करने में गर्व एवं हर्ष का अनुभव करना चाहिये।

हमारे देश की समृद्धि के लिए यह भी आवश्यक है कि हम परिश्रमी एवं व्यवसायी बनें और कार्य करने से कभी जी न चुराएँ। यहाँ संयुक्त-परिवार-प्रणाली के कारण परिवार भर के भरणपोषण का भार गृह-स्वामी पर होता है। वही बेचारा सारे कुटुम्ब की रोटी की समस्या को हल करता है। शेष पारिवारिक व्यक्ति जीविकोपार्जन में कुछ भी सहायता प्रदान नहीं करते और हाथ पर हाथ रखे हुए बैठे खाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ भिखारियों की संख्या भी कम नहीं। ये लोग काम करने से डरते हैं, हाथ-पैर हिलाना नहीं चाहते। लूले, लँगड़े, अन्धे, वृद्ध आदि शक्तिहीन व्यक्तियों का तो भीख माँगकर पेट भरना उचित है, पर हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों के लिए यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय है। हमारे यहाँ पाखण्डी साधु भी बहुत हैं जो एक प्रकार के भिखारी ही हैं। वे देश की सम्पत्ति के एक बड़े भाग को खा जाते हैं। देश की दरिद्रता का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व इन अकर्मण्य लोगों पर है। इस दृष्टि से ये लोग देश के कोढ़, देश के शत्रु हैं।

सारांश यह है कि यदि भारत में कृषि-सुधार हो, प्राचीन उद्योगधन्धों का पुनरुत्थान हो, नवीन उद्योगों का प्रचार हो, विज्ञान की उन्नति हो, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम हो, निवासी परिश्रमी हों तो यह देश शीघ्र समृद्धिशाली हो सकता है और पुनः लक्ष्मीजी का कृपाभाजन बन सकता है, इसमें सन्देह नहीं। हर्ष का विषय है कि अब इन बातों की ओर राष्ट्र के कर्णधारों का ध्यान गया है और समृद्धि का सूत्रपात हो गया है।

राष्ट्र निर्माता महात्मा गाँधी

(१) प्रस्तावना—आविर्भाव के समय भारत की दशा
(२) जन्म, मात-पिता, शिक्षा, विवाह आदि
(३) वकालत
(४) अफ्रीका में सत्याग्रह
(५) सन् १६१४ से १६२० तक के कार्य
(६) सन् १६२० में असहयोग-आन्दोलन का आरम्भ
(७) सन् १६२४ से १६३० तक के कार्य
(८) सन् १६३० से प्रचण्ड आन्दोलन का समय
(६) हरिजन-आन्दोलन से मृत्यु तक
(१०) उपसंहार—गाँधी जी की महत्ता

भारतवर्ष में अङ्गरेजी राज्य का सिक्का भलीभाँति जमा हुआ था। विदेशी सरकार भारतीयों को जैसे चाहती थी नचाती थी। देश पूर्णतः सोया हुआ था। राष्ट्रीयता का कोई नाम भी नहीं जानता था। सभी पाश्चात्य सभ्यता में रँगे हुये थे। जनता संतप्त थी। ऐसे समय झुलसी हुई पृथ्वी को शान्ति प्रदान करने वाले पीयूषवर्षी मेघ के रूप में महात्मा गाँधी का आविर्भाव हुआ।

आपका जन्म २ अक्टूबर सन् १८६६ को काठियावाड़ प्रदेश के पोरबन्दर (सुदामापुरी) राज्य के एक कुलीन घराने में हुआ। आपके पिता कर्मचन्द पहले पोरबन्दर के और तदनन्तर राजकोट तथा बीकानेर के दीवान रहे। आपकी माता पुतलीबाई बहुत साधु-स्वभाव की और पूजा-पाठ तथा व्रत-उपवास में निष्ठा रखने वाली महिला थीं। आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी था। आप बचपन से ही सत्य और अहिंसा के भक्त रहे और माता, पिता, गुरु आदि पूज्य व्यक्तियों के प्रति भक्ति और निष्ठा आपमें जन्म से

ही देखी गई। बाल्यावस्था में आप मन्दबुद्धि, लज्जालु और संकोच-शील थे। आपका विद्यार्थी-जीवन साधारण रहा। आपका विवाह १४ वर्ष की अल्पायु में ही हो गया। इससे जीवन बहुत आसक्तिमय हो गया। यहाँ तक कि कुसंगति में पड़कर मांस, बीड़ी, चोरी और व्यभिचार की ओर आप झुके, पर सँभल गए। सन् १८८५ में आपके पिता का देहान्त हुआ और आपकी स्त्री के पहली सन्तान हुई। बाल-विवाह के परिणाम-स्वरूप सन्तान दो-चार दिन से अधिक जीवित न रही। घर में राम-नाम की चर्चा रहने के कारण आपकी भी राम-नाम और रामायण में श्रद्धा हो गई। सन् १८८७ में मैट्रिक पास करके आप भावनगर कॉलेज में भरती हुए। मांस, मदिरा और स्त्री-प्रसंग से दूर रहने का वचन देकर जाति से बहिष्कृत हो आप सन् १८८८ में बैरिस्टरी पढ़ने विलायत चले गये। वहाँ आपने बड़ी सादगी और पवित्रता का जीवन व्यतीत किया। बाइ-बिल, थियोसोफिस्ट-साहित्य, गीता आदि के अध्ययन से आपका जीवन सात्विक हो गया। सन् १८९१ में बैरिस्टरी पास करके आप भारतवर्ष लौट आए।

बम्बई में एक असफल वकील के रूप में आपका सार्वजनिक जीवन आरम्भ हुआ। आप खूब तैयारी करके अदालत में जाते, पर वहाँ सब कुछ भूल जाते। मुकदमे की पैरवी करने खड़े होते तो आप के हाथ-पैर काँपने लगते। निराश होकर आप राजकोट आ गए और वहाँ अर्जियाँ, दावे आदि लिखकर जीविका कमाने लगे। वहाँ अङ्गरेजों के काले-गोरे के भेद-भाव की आपके हृदय पर ठेस लगी और आपका मन वहाँ से ऊब गया। आप कोई नौकरी ढूँढ़ने लगे। इसी समय पोरबन्दर के एक फर्म के ४० हजार पौण्ड के दावे की देख-रेख के लिए आपको अफ्रीका जाना पड़ा। मार्ग-व्यय, मुफ्त भोजन, निवास और १०५ पौण्ड मेहनताना ठहरा। सन् १८९३ में आपने अफ्रीका को प्रस्थान किया। अफ्रीका पहुँचकर आप पगड़ी पहने अदालत में गए। वहाँ आपसे पगड़ी उतारने को कहा गया। आप उठकर चले आए। उसी दिनसे अफ्रीका

में उस आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। जिसने आगे चलकर इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। स्थान-स्थान पर, रेल में, होटल में, घोड़ा गाड़ी पर, आपका जो अनादर हुआ उससे आपको बहुत दुःख हुआ। भारतीयों के साथ भेद भाव को न सहकर उसके विरुद्ध आपने आन्दोलन आरम्भ किया। ट्रांसवाल में भारतीय मताधिकार से वंचित थे, सड़क की पगडंडी पर नहीं चल सकते थे, रात्रि को ६ बजे के पश्चात् बिना आज्ञा घर से बाहर नहीं निकल सकते थे और भूमि के स्वामी नहीं हो सकते थे। अन्य भू-भागों में भी ऐसे ही अन्याय-पूर्ण निमय थे। दावे के लिए आप अफ्रीका गये थे। उसका समझौता कराके आप अफ्रीका में भारतीयों की दशा सुधारने में लग गए। वकालत का धन्धा आपके जीवन-निर्वाह का साधन था।

सन् १९०६ में ट्रांसवाल सरकार ने एक बिल कौंसिल में पेश किया जिसका आशय यह था कि ट्रांसवाल में रहने वाले भारतीय स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी को एक परवाना लेना होगा जिसके लिए उनको दोनों हाथों के सब अँगुलियों और अँगूठों के निशान देने होंगे। उनके शरीर-चिह्न नोट किए जायेंगे और सदैव वह परवाना उन्हें अपने साथ रखना होगा। इससे अधिक भयानक अपमान भारतीयों का और क्या हो सकता था ? इस बिल के विरोध होने पर भी पास हो जाने पर इसको न मानने का सत्याग्रह आपने आरम्भ कर दिया। चारों ओर सत्याग्रह की आग धधकने लगी। सरकार ने दमन आरम्भ किया। गिरफ्तारियाँ हुईं। आपको भी जेल की हवा खानी पड़ी। दमन से आन्दोलन और जोर पकड़ता गया। अतः सरकार ने आपसे समझौता किया। परवाना-सम्बन्धी कानून रद्द हुआ। फिर सरकार ने ईसाई-धर्म के अनुसार न सम्पन्न हुए विवाहों को गैरकानूनी ठहराया। यह पुनः भारतीयों का अपमान था। अतः फिर सत्याग्रह शुरू हुआ। सरकार को फिर झुकना पड़ा। भारतीय विवाहों को जायज माना गया। सन् १९१४ में अफ्रीका-सत्याग्रह में पूर्ण सफलता पाने के पश्चात् आप स्वदेश लौट आए।

बम्बई और पूना में आपका खूब स्वागत हुआ। कुछ दिन आप श्रीगोपालकृष्ण गोखले के साथ रहे। फिर भारतीय नेताओं से मिलने के लिए आपने भारत का दौरा किया। आप जहाँ जाते थे वहाँ आपका स्वागत होता था। भारत की छोटी-बड़ी सभी समस्याएँ आपके सामने आने लगीं जिनमें आपको खूब सफलता मिली। बिहार में नील की खेती करने वाले गोरों के वहाँ के किसानों पर किये गए अत्याचारों का आपने अन्त किया। अहमदाबाद के मजदूरों की समस्या को भी आपने हल किया। खेड़ा में सत्याग्रह द्वारा किसानों पर फसल नष्ट हो जाने के कारण लगान माफ कराया। यूरुपीय समर में आपने लगन से अँग्रेजों की सहायता की। युद्ध में की गई सेवा और सहायता के पुरस्कार-स्वरूप राजनैतिक अधिकार पाने की आशा पर भारतीय सरकार ने रौलेट एक्ट बनाकर तुषारपात कर दिया। इसके विरुद्ध देश में आन्दोलन हुआ। सरकार से प्रार्थनाएँ की गईं। कुछ भी परिणाम न निकलने पर आपने सत्याग्रह शुरू करने की घोषणा की। ६ अप्रैल, सन् १६१६ को सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा हुई। हड़ताल, उपवास और सभाएँ करना तै हुआ। पंजाब में इसी दिन दंगा होने पर जलियानवाला भयानक गोलीकांड और हत्याकाण्ड हुआ जिससे देश के कोने-कोने में आग धधकने लगी। सत्याग्रह के लिए अहिंसात्मक वातावरण न रहने के कारण आपने उसे बन्द कर दिया। सरकार ने १८५७ के विद्रोह की आशंका के कारण भयानक दमन आरम्भ कर दिया। उन दिनों मुसलमानों में खिलाफत की उत्तेजना थी और हिन्दुओं में जलियान वाले बाग के गोलीकांड की। फलतः सन् १६२० में असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। सरकारी खिताब, वकालत, अदालत, कौंसिल, स्कूल-कॉलेज, विदेशी वस्त्र आदि के बहिष्कार की चारों ओर धूम मच गई। सारे देश में हलचल हो गई। चारों ओर गिरफ्तारियाँ और मारपीट होने लगीं। सन् १६२२ में आप भी गिरफ्तार हुए और आपको ६ साल की सजा दी गई। जेल में आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आपके अपेन्डिसाइटिस हो गया जिसका ऑपरेशन किया गया। तदुपरान्त आप छोड़ दिये गए।

सन् १९२४ में देहली में भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। आपने जाकर दंगे को शांत किया और देश के पाप के प्रायश्चित-स्वरूप २१ दिन का उपवास किया। आपका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। इसलिए सारा देश इस निश्चय से घबड़ा गया। उसी वर्ष आप काँग्रेस के सभापति चुने गए। आपने खादी-प्रचार अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम-एकता आदि का कार्य-क्रम काँग्रेस के सामने रखा। देश में फिर जाग्रति हुई। सरकार ने भारत के नवीन सुधारों की रूप-रेखा तैयार करने के लिए 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति की, जिसमें एक भी भारतीय न था। इससे देश में बड़ा असन्तोष फैला।

सन् १९३० में आपने नमक कानून के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। ६ अप्रैल को डांडी में आपके द्वारा नमक-कानून तोड़ने पर देश के कोने-कोने में आन्दोलन की प्रचण्ड अग्नि सुलग उठी। सरकार ने गिरफ्तारियाँ, मार-पीट आदि साधनों द्वारा खूब दमन किया। पर ज्यों-ज्यों दमन होता था त्यों-त्यों आन्दोलन जोर पकड़ता था। ५ मार्च सन् १९३१ में सरकार ने आपसे समझौता कर लिया और आन्दोलन बन्द हो गया। फिर आप गोलमेज-परिषद् के लिए इङ्गलैंड गए, पर निराश लौटे। यहाँ की परिस्थिति ठीक नहीं थी। सरकार ने समझौते को तोड़ दिया था। अतः आपने फिर आन्दोलन शुरू कर दिया। आपको गिरफ्तार करके यरवदा जेल में रखा गया। सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय में हिन्दुओं से अछूत जातियों को अलग करके उन्हें पृथक् निर्वाचन का विशेषाधिकार दिया। आपने जब यह सुना तब आमरण उपवास आरम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि सरकार ने पृथक् निर्वाचन रद्द कर दिया।

फिर आपने अछूतों की दशा सुधारने के लिए जेल से हरिजन-आन्दोलन आरम्भ किया। सरकार ने आपको जेल से छोड़ दिया। यह आपके प्रयत्नों का ही फल है कि आज हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश, शिक्षा, उच्च पद-प्राप्ति आदि की सुविधाएँ मिल गई हैं और उनके साथ सहानुभूति तथा समानता का व्यवहार होने लगा है।

आपने कुछ वर्षों के लिए कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करके अपने को ग्राम-सुधार में लगाया। फिर आप यूरुपीय समर में भारतीय सहायता के विरुद्ध सत्याग्रह सञ्चालन करने के कारण कारागृह-वासी हुए। कुछ दिनों बाद आप मुक्त होकर भारतीय स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त करने में संलग्न हो गए। फलतः १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को देश स्वतन्त्र हो गया। फिर आप मुस्लिम-लीग की कूटनीति के फलस्वरूप उत्पन्न हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य के निराकरण में संलग्न हुए। ३० जनवरी १९४८ को एक नर-पिशाच द्वारा आपके जीवन का अन्त हो गया। इस कुकर्म से देश शोक-सागर में निमग्न हो गया। भारत-माता का लाड़ला लाल देखते-देखते अचानक उठ गया। भारत-माता दीन-हीन होकर आठ-आठ आँसू रोने लगी। विश्व के कोने-कोने में शोक छा गया।

गाँधीजी एक उत्कृष्ट सुधारक भी थे। आप सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। आपकी रहन सहन एवं प्रकृति बड़ी सीधी-साधी और प्रभावशाली थी। आपका चरित्र उज्ज्वल एवं अनुकरणीय था। आप काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह से परे थे। अतः आप महात्मा नाम से विभूषित थे। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता दिलाने वाले आप ही थे। भारतवर्ष में जाग्रति करने वाले आप ही थे। भारत-माता की सूखी नसों में रक्त का सञ्चार करने वाले आप ही थे। देश के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सबके हृदय-सम्राट् आप ही थे। आप हमारी आशा थे, आप हमारे सर्वस्व थे। आपका कठोर साधना, तपस्या, त्याग तथा आत्मोत्सर्ग धन्य है—और धन्य है वह जननी जिसके गर्भ से आप सरीखी महान् एवं पुनीत आत्मा उत्पन्न हुई। आज यद्यपि आप हमारे बीच नहीं हैं तथापि आपका पवित्र सन्देश हमारे हृदय में विराजमान है।

"सज्जन चरित दिखाते जिससे कर सकते हम निज उज्ज्वल।
जाते समय जगत में छोड़ें अपने चरण-चिह्न निर्मल
चरण चिन्ह को देख कदाचित् उत्साहित होवें भाई।
भव सागर की चट्टानों से नौका जिनकी टकराई ॥"

बालचर-संस्था

(१) प्रस्तावना—बालचर-संस्था का जन्म और विकास
(२) बालचर-संस्था का आधुनिक रूप
(३) वर्त्तमान काल में इसकी सर्व प्रियता
(४) बालचरों की वेश-भूषा
(५) बालचरों की शिक्षा
(६) बालचरों का कर्त्तव्य
(७) बालचरों की सेवा और उपयोगिता
(८) उपसंहार—बालचर-संस्था का भविष्य

बालचर-संस्था का जन्म दक्षिण अफ्रीका में बोअर-युद्ध के समय हुआ था। इसके जन्मदाता सर रॉबर्ट बैडन पॉवल हैं। कहा जाता है कि जब वे भारत में सेनापति थे तब हरद्वार के जंगल में किसी महात्मा से बातें करते समय उन्हें इसका आभास मिला था। उन्होंने सन् १९०० ई० में, जिस समय उक्त युद्ध होरहा था, बालचरों की एक सेना बनाई। इस सेना से अँग्रेजों को बड़ी सहायता पहुँची। सर रॉबर्ट बैडन पॉवल नवयुवकों को सैनिक-शिक्षा देने में दक्ष थे। उन्होंने बड़ी योग्यता से कुछ नवयुवकों को युद्ध के लिए शिक्षित किया। युद्ध के समाप्त होने पर उन्होंने देखा कि बालचर-संस्था जिस प्रकार युद्ध में सहायक हो सकती है उसी प्रकार शान्ति के समय भी। बल्कि शान्ति के समय उससे भी अधिक लाभदायक हो सकती है। ऐसा समझकर उन्होंने बालचर-संस्था का प्रचार इधर-उधर किया। उसी समय से यह संसार के समस्त देशों में प्रचलित हो गई है। भारतवर्ष में इस संस्था की स्थापना यूरुपीय महासमर के समय श्रीमती ऐनीबीसेंट ने की। धीरे-धीरे इसका प्रचार भारत के सब प्रान्तों में हो गया है। प्रायः प्रत्येक स्कूल में बालचर होते हैं।

बालचर-संस्था का आधुनिक रूप इस प्रकार है। ८ वर्ष की आयु का अथवा इससे बड़ा बालक बालचर बन सकता है। उसे कुछ समय शिक्षा दी जाती है, जिसमें उसे बालचरों के नियम,

सेल्यूट आदि बातें सिखाई जाती हैं। इसके पश्चात् उसे ईश्वर, राजा और देश के प्रति कर्त्तव्य-पालन करने की शपथ लेनी पड़ती है। उसे दूसरों की सेवा करने और बालचर-नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। फिर उसे किसी पैट्रौल में प्रविष्ट कर लिया जाता है। पैट्रौल ८ बालचरों का होता है। पैट्रौल का मुखिया पैट्रौल-लीडर कहलाता है। चार से अधिक पैट्रौलों का एक ट्रूप होता है। ट्रूप का मुखिया ट्रूप-लीडर कहलाता है। प्रत्येक ट्रूप के ऊपर एक स्काउट-मास्टर होता है। जिले भर के ट्रूप डिस्ट्रिक्ट स्काउट कमिश्नर के और सूबे भर के स्काउट प्राँविंसयल स्काउट कमिश्नर के अधीन होते हैं।

वर्त्तमान काल में बालचर-संस्था की सर्वप्रियता नित्यप्रति बढ़ती जारही है। प्रत्येक स्कूल में बालचर देखे जाते हैं। मेलों में चले जाइए, आपको बालचरों का प्रबन्ध मिलेगा। तमाशों में चले जाइये, आपको बालचरों द्वारा देख-रेख मिलेगी। किसी भी पर्व पर गंगाजी आदि पवित्र नदियों में स्नान करने जाइए, आपको बालचर इधर-उधर भागते और प्रबन्ध करते हुए दिखाई देंगे। जहाँ कहीं भीड़ होती है वहीं रक्षा, शान्ति, सेवा आदि के लिए बालचरों का समूह पहुँच जाता है।

सभी बालचरों की वेश-भूषा समान होती है। प्रत्येक बालचर खाकी साफा या टोपी, खाकी कमीज, खाकी नेकर, खाकी मोजे, बूट और स्कॉर्फ धारण करता है। प्रत्येक अपने पास झण्डी, लाठी और सीटी रखता है।

बालचरों को भोजन बनाने, तैरने, घायल के पट्टी बाँधने, गाँठ लगाने, मार्ग ढूँढ़ने, सिगनल देने, सामयिक घर बनाने, सामयिक सड़क और पुल बनाने, घायल को अस्पताल पहुँचाने और प्रारम्भिक चिकित्सा करने की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक बालचर को एक डायरी रखनी पड़ती है जिसमें वह दिन-भर के कार्य का विवरण लिखता है। उसे कई प्रकार की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी पड़ती हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिए कई प्रकार के खेल खेलने पड़ते हैं।

बालचरों के अनेक कर्त्तव्य हैं। उनको सर्व-साधारण के हित का सदा ध्यान रखना पड़ता है। निर्बल, दुःखी, अनाथ और अबला की सेवा और सहायता करना उनका प्रधान कर्त्तव्य है। उन्हें सर्वदा कटिबद्ध रहना पड़ता है। किसी भी समय उनको सहायता के लिए बुलाया जा सकता है। दूसरों की जीवन-रक्षा में अपने प्राणों की चिन्ता न करना बालचरों का कर्त्तव्य है। उन्हें सदैव अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। उन्हें सत्यवादी, राजभक्त, देशभक्त, आज्ञा-पालक, आत्म-निष्ठ और ईश्वर-भक्त होना चाहिए। उन्हें दयालु और पवित्र होना चाहिए। उन्हें आपस में भ्रातृ-भाव का व्यवहार करना चाहिए।

बालचरों की सेवाएँ स्थान-स्थान पर देखी जाती हैं। उनसे सर्व-साधारण का नाना प्रकार से हित होता है। किसी के चोट लगने पर वे उसके पट्टियाँ बाँधते हैं और चिकित्सा के लिए उसे अस्पताल पहुँचाते हैं। भीड़-भाड़ और मेलों के अवसर पर वे स्वयं-सेवकों का कार्य करते हैं। अनेक स्त्रियाँ और बच्चे बालचरों द्वारा धूर्तों के हथ-कण्डों से बचाए गए हैं। अनेक बिछुड़े हुए बालक और बालिकाएं बालचरों द्वारा उनके माता-पिता के पास पहुँचाई गई हैं। अनेक जल में डूबते हुए नर-नारियों की उन्होंने प्राण-रक्षा की है। जब कभी किसी स्थान पर दंगा हो जाता है तब वे शान्ति-स्थापना में सरकार की सहायता करते हुए देखे जाते हैं। रोगी अथवा पीड़ित की परिचर्या करना उनकी प्रधान सेवा है। आग लगने पर वे उसको बुझाते समय अपने शरीर की परवाह नहीं करते।

कहने का तात्पर्य यह है कि बालचर सब प्रकार से मानव-जाति की सेवा करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। वास्तव में उन्हें अपने भाइयों की सेवा-सुश्रूषा में हार्दिक प्रसन्नता होती है। बालचर-संस्था मानव-समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है—इसमें सन्देह नहीं। थोड़े-से समय में इतना सर्वप्रिय हो जाना इसकी उपयोगिता का जीता-जागता प्रमाण है। इस प्रकार की संस्था से समाज का भला तो होता ही है, साथ में बालकों का भी कल्याण होता है।

उनका आचरण बनता है, वे सेवा-धर्म सीख जाते हैं और आगे चलकर योग्य नागरिक बनते हैं।

बालचर-संस्था का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसमें बालकों को मनोरंजन के साथ-साथ उपयोगी शिक्षा भी मिलती है। इसलिए माता-पिता अपने लड़कों को सहर्ष बालचर बनाते हैं। बालचरों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सरकार भी बालचर-संस्था का संरक्षण करती है और उसे सब प्रकार की सहायता देती रहती है। लड़कों की देखा-देखी लड़कियों की भी इस प्रकार की एक संस्था स्थापित हुई है जो गर्ल गाइडों की संस्था कहलाती है।

सिनेमा (चित्र-पट)

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का प्रसार
(२) सिनेमा का आविष्कार और रूप
(३) सिनेमा का प्रसार और सर्व-प्रियता
(४) सिनेमा से लाभ—
(क) मनोरंजन, (ख) शिक्षा, (ग), सुधार, (घ) विज्ञापन, और प्रचार कार्य
(५) सिनेमा से हानियाँ—
(क) नेत्रों की दृष्टि पर कुप्रभाव, (ख) गन्दे चित्रों का चरित्र पर कुप्रभाव, (ग) अधिक सिनेमा देखने से समय और धन का अपव्यय
(६) उपसंहार—सिनेमा का भविष्य

बीसवीं शताब्दी विज्ञान का स्वर्ण-युग है। चारों ओर विज्ञान का साम्राज्य देखा जाता है। चारों ओर विज्ञान का बोलबाला है। इसका क्षेत्र समस्त प्रकृति और मानव-समाज है। प्रकृति और मनुष्य का कोई भी विषय इसकी गति से बाहर नहीं है, सभी इसके क्रीड़ा-क्षेत्र बने हुए हैं। मानव-जीवन को इसने उलट-पुलट दिया है, अनेक अन्वेषणों और आविष्कारों द्वारा मनुष्य के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इसने मनोरंजन और सुख के अनेक साधन

जुटाए हैं। सिनेमा इसी की देन है। दिन भर के परिश्रम के पश्चात् थकी-माँदी जनता के लिए मनोविनोद का यही सस्ता साधन है। यही कारण है कि जन साधारण ने इसे बहुत अपनाया है।

सिनेमा का आविष्कार १८६० ई० में अमरीका के ऐडीशन नामक व्यक्ति ने किया था। भारतवर्ष में इसके प्रवेशक दादा साहब फाल्के कहे जाते हैं। उन्होंने सन् १६१३ में अपना प्रथम भारतीय फिल्म-निर्माण किया। पहले सिनेमा में मूक चित्र दिखलाए जाते थे, पर १६२८ ई० से चित्रों में वाणी का भी संचार हो गया है। यही नहीं, अब तो सिनेमा में रंगों का भी समावेश हो गया है। प्रकृति का रंगीन सौन्दर्य भी अब हमारे लिए उपलब्ध हो गया है। बसन्त की बहार, ऊषा की छटा तथा सुमनों का सौन्दर्य प्राकृतिक रूप में अब हमें देखने को मिलता है। आजकल सिनेमा के प्रधान अंग संगीत, नृत्य, कहानी और अभिनय हैं। एक बड़े हॉल में दर्शकों को बैठने का प्रबन्ध रहता है। हॉल के सामने ही दीवार पर एक सफेद परदा लगा रहता है पीछे की दीवार में एक बड़ा छेद होता है जिससे प्रकाश द्वारा पर्दे पर फिल्म के चित्रों का प्रतिबिम्ब फेंका जाता है। सिनेमा में नाटक की भाँति ही कोई कहानी दिखलाई जाती है। दोनों में केवल इतना अन्तर है कि नाटक में साक्षात् अभिनेता और अभिनेत्रियाँ रहती हैं, पर सिनेमा में उनके चित्र ही होते हैं।

मनोरंजन के इस साधन का आजकल खूब प्रचार है। ऐसा कौनसा नगर होगा जहाँ सिनेमा हॉल न हो? बम्बई और कलकत्ता जैसे विशाल नगरों में तो सिनेमा-गृहों की भरमार है। धनी-निर्धन, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, विद्वान-मूर्ख, मजदूर, वकील, विद्यार्थी, दूकानदार सभी सिनेमा देखते हैं। विद्यार्थियों में इसका शौक बहुत बढ़ गया है। बहुत से विद्यार्थी तो ऐसे हैं जो नित्य-प्रति इससे अपना मनोरंजन करते हैं। उनके लिए सिनेमा देखना उतना ही आवश्यक है जितना भोजन। पहले नाटकों का सर्वत्र प्रचार था। अब सिनेमा ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया है। आजकल नाटक जनता का

वैसा मनोरंजन नहीं करते जैसा सिनेमा, सिनेमा ने जन-साधारण की रुचि पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। क्यों न करे ? यह एक से एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, एक से एक मधुर गायन, एक से एक स्वाभाविक अभिनय और एक से एक आकर्षक कहानी हमारे सामने उपस्थित करता है। बसन्त की बसन्ती बहार, लाल, गुलाबी, हरे, पीले, श्वेत और नीले पुष्पों की छटा, श्याम मेघों की घटा, चाँदी से झरते हुए झरनों और सरोवरों की छवि, ऊषा की लालिमा, लहराती हुई लतिकाओं के निकुञ्ज आदि देखकर मन बाग-बाग हो जाता है। झरनों का मधुर निनाद, पक्षियों का कलरव और सुरीले गाने हृदय की कली-कली खिला देते हैं। स्वाभाविक अभिनय वास्तविक-सा प्रतीत होता है। यही विशेषताएँ हैं जिनके कारण सिनेमा आज इतना सर्वप्रिय बना हुआ है।

सिनेमा के प्रचार से जन-समाज को बहुत लाभ हुए हैं और होते जारहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे संसार भर का मन बहलता है। दिन भर परिश्रम में संलग्न रहने से मनुष्य घबड़ा जाता है और कोई वस्तु चाहता है जिससे उसे आमोद-प्रमोद मिले। उसके मन में विनोद की, आनन्द की भूख लगती है। सिनेमा इस भूख को मिटाता है। यों तो मनोविनोद के अनेक साधन हैं, जैसे—नाटक, शतरज, ताश, चौपड़, सरकस, टैनिस, हॉकी, क्रिकेट, बाजीगर का खेल, उद्यान की सैर आदि। पर इन सबसे वैसा मनोरंजन नहीं होता जैसा सिनेमा से।

मनोरंजन के अतिरिक्त सिनेमा शिक्षा का भी श्रेष्ठ साधन है। पाश्चात्य देशों में तो इससे शिक्षा-प्रसार में सहायता मिली ही है, हमारे देश में भी शिक्षा के लिए इसका उपयोग किया जा रहा है। पर अभी तक इस दिशा में अधिक कार्य नहीं हुआ है। पाश्चात्य देशों में इसके द्वारा इतिहास, भूगोल और विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। इतिहास की घटनाओं को चित्रपट पर दिखलाया जाता है। भिन्न-भिन्न स्थानों की रहन-सहन, स्थिति, पैदावार, जलवायु का ज्ञान कराया जाता है। भाँति भाँति के वैज्ञानिक यन्त्रों का उपयोग

समझाया जाता है। पर क्या कभी सिनेमा अध्यापकों का स्थान ले सकता है ? शायद कभी नहीं। यद्यपि अध्यापक जो कुछ पढ़ाता है, समझाता है, वह सब सिनेमा कर सकता है, तथापि इसमें सजीवता एवं प्रत्यक्षानुभव का अभाव रहता है।

सिनेमा से सुधार भी किए जाते हैं। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराता हुआ सिनेमा सुधार का श्री गणेश करता है। सैकड़ों फिल्मों की रचना इसी उद्देश्य से की जाती है। 'महात्मा' अछूत कन्या', 'दुनिया न माने' आदि प्रसिद्ध भारतीय फिल्म इसी उद्देश्य से बने थे। प्रथम दोनों का विषय अछूतोद्धार था। 'दुनिया न माने' का विषय बालिका-विवाह था। इसमें हिन्दू-समाज का स्त्रियों के प्रति अत्याचार और उसके दुष्परिणाम भली-भाँति दिखलाए गये थे। 'संत तुकाराम' में धार्मिक अत्याचारों और उनके दुष्परिणाम का दिग्दर्शन कराया गया था। दर्शक जब इस प्रकार के चित्रों को देखता है तब उसके हृदय में अत्याचारों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वह उनका अन्त करने के लिए अग्रसर होता है। इस प्रकार सुधार के कार्य में सिनेमा खूब हाथ बँटाता है।

विज्ञापन और प्रचार के लिए भी सिनेमा अच्छा साधन है। व्यापारी अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिये सिनेमा द्वारा उनका विज्ञापन कराते हैं। चित्र-पट पर हजारों मनुष्यों के नेत्र विज्ञापनों पर पड़ते हैं। बहुत से उनसे प्रभावित भी होते हैं। इस प्रकार वस्तुओं की बिक्री बढ़ती है। प्रचार-कार्य में भी सिनेमा से बहुत सहायता मिलती है। मान लीजिये, मादक पदार्थों के बहिष्कार का प्रचार करना है। चित्रों द्वारा उनके व्यवहार के दुष्परिणाम दिखाए जायँगे, जिससे दर्शकगण उनसे घृणा करने लगेंगे और उनका व्यवहार करना छोड़ देंगे। इस प्रकार मादक पदार्थों का बहिष्कार हो जायगा।

जहाँ सिनेमा से उपर्युक्त लाभ हैं वहाँ इससे कतिपय हानियाँ भी हैं। सिनेमा देखने से नेत्रों पर जोर पड़ता है। यदि सिनेमा

देखने की आदत पड़ जाती है तो नेत्रों की ज्योति कम हो जाती है। अनेक लोग नित्य-प्रति सिनेमा देखकर अपनी दृष्टि से हाथ धो बैठे हैं।

गन्दे और कुरुचिपूर्ण चित्रों से बहुत हानि होती है। प्रायः फिल्म साधारण जनता की विकृत रुचि के शिकार बन रहे हैं। फिल्म-निर्माताओं को बाध्य होकर अपने निम्न कोटि के दर्शकों को खुश करना पड़ता है, क्योंकि वे ही उनकी आय के अच्छे साधन हैं। दुअन्नी, चवन्नी वालों से उन्हें जितनी आय हो सकती है उतनी रुपये वालों से नहीं। गन्दे गाने और कुवासना पूर्ण खेल कम से कम ७० प्रतिशत् मनुष्यों का मनोरंजन करते हैं। कुवासनापूर्ण फिल्मों से सबसे अधिक हानि युवकों को होती है। वे इनके कुप्रभाव से अपने को बचा नहीं सकते और आचार-भ्रष्ट हो जाते हैं।

अधिक सिनेमा देखने से समय और धन का भी अपव्यय होता है। जिन लोगों को सिनेमा देखने की लत पड़ जाती है वे अपना बहुमूल्य समय और धन व्यय करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते। ऐसा देखा गया है कि विद्यार्थी अपने अध्ययन को तिलाञ्जलि देकर सिनेमा देखते हैं। परिणाम होता है कि वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं।

अन्त में यही कहना है कि सिनेमा का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। धीरे-धीरे गन्दे फिल्मों की संख्या कम होती जा रही है और शिक्षाप्रद फिल्मों की अधिक। आशा है मनोरंजन का यह साधन मर्यादा और आदर्श की रक्षा करता हुआ मानव-समाज का कल्याण करेगा।

पुस्तकों के अध्ययन से आनन्द

(१) प्रस्तावन—मानव-जीवन को आनन्द की आवश्यकता
(२) पुस्तकों के पढ़ने से मनोरंजन
(३) पुस्तकों के पढ़ने से आत्म-संस्कार और आत्म-संस्कार से आनन्द

(४) पुस्तकों के पढ़ने से सान्त्वना
(५) पुस्तकों के पढ़ने से ज्ञान-वृद्धि और ज्ञान वृद्धि-द्वारा आनन्द
(६) उपसंहार—पुस्तक के अध्ययन का आनन्द ही सच्चा आनन्द है।

मानव-जीवन को आनन्द की नितान्त आवश्यकता है। यह वह रसायन है जिससे जीवन में मिठास आ जाता है, यह वह मरहम है जिससे हृदय का घाव पुरता है, यह वह भोजन है जिससे मन स्वस्थ हो जाता है। आनन्द की प्राप्ति के अनेक साधन हैं। किसी को नाच देखने से आनन्द मिलता है, तो किसी को धन पाने से; किसी को पुत्र-जन्म से हर्ष है, तो किसी को विवाह से। विद्यार्थी को परीक्षा में उत्तीर्ण होना उल्लास से भर देता है। वकील के लिए मुकदमे का जीतना आनन्द की सृष्टि करता है। तात्पर्य यह है कि असंख्य प्रकार से मनुष्य के लिए परमेश्वर ने आनन्द का विधान किया है। पुस्तकों का अध्ययन आनन्द-प्रदान का सबसे अच्छा साधन है, क्योंकि इसके साथ-साथ शिक्षा भी मिलती है।

पुस्तकों से मनोरंजन होता है। हाँ, सब प्रकार की पुस्तकें मनोरंजन नहीं कर सकतीं। कविता, प्रहसन, उपन्यास, कहानी, की पुस्तकें इसी उद्देश्य से लिखी जाती हैं। कविता द्वारा मनोरंजन का एक उदाहरण लीजिए—

डार द्रुम पलना बिछौना नवपल्लव के,
सुमन झंगूला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावै देव,
कोकिला हलावै हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारौ करे राई लोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-संतति' नामक उपन्यासों ने मनोरंजन के साधन होने के कारण ही बहुत-से हिन्दी न जानने वालों को हिन्दी सिखाई। आज भी उपन्यासों को जन-साधारण बड़े चाव

से पढ़ते हैं इनकी संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जाती है। यही दशा प्रहसन और कहानियों की पुस्तकों की भी है। इससे बढ़कर आनन्द और क्या हो सकता है कि हम अपने चारों ओर वाल्मीकि, सूर, जायसी, रहीम, प्रेमचन्द आदि महानुभावों को रखते हैं। जब मन में आता है तब हम अन्धे सूर के प्रेम-भरे पदों को सुनकर रस-मग्न होते हैं। जब जी चाहता है तब हम गोस्वामी तुलसीदास के राम-लक्ष्मण को चित्रकूट में देखकर गद्गद् होते हैं! जब इच्छा होती है तब हम जायसी की कहानी-सरिता में गोते लगाकर अपना समय काटते हैं। कभी प्रेमचन्द की उपन्यास-कहानियों में हमारा मन लगता है, कभी वाल्मीकि के आश्रम में विचरण कर हम अपना मन बहलाते हैं।

श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन से आत्म-संस्कार होता है। सत्संगति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता; चाहे सत्संगति मनुष्यों की हो, अथवा पुस्तकों की। जब हम सर्वदा उत्कृष्ट, उपदेश-पूर्ण, मर्यादा गर्भित और नैतिक पुस्तकों का अवलोकन करेंगे, सर्वदा उनके बीच रहेंगे, तब हमारा आचरण स्वतः सुधरेगा। जब हम गोस्वामीजी के 'राम-चरितमानस को पढ़ेंगे तब हमें सेवा, आज्ञा-पालन, भ्रातृ-प्रेम, पतिव्रत धर्म, नम्रता, शिष्टाचार आदि की शिक्षा मिलेगी। जब हम कबीर की वाणी पढ़ेंगे तब हममें सच्चरित्रता अपना घर बनावेगी। जब हम सूर के पदों में मग्न होंगे तब हमारे मन का मैल कटेगा। इसमें सन्देह नहीं कि जिस सद्भाव को उत्पन्न करने में अनेक उपदेशक सफल नहीं होते उसे उत्पन्न करने में पुस्तकें सफल हो सकती हैं। आत्म-संस्कार से जीवन शांतिमय होता है और हृदय को वास्तविक आनंद की अनुभूति होती है। भले ही बाहर से देखने पर आत्म-संस्कृत मनुष्य दुःखी प्रतीत होता हो, पर उसके हृदय में चिर-शांति और आनन्द सदैव विराजमान रहता है।

दुःख के समय पुस्तकें अच्छे मित्र का कार्य करती हैं। जिस प्रकार आपत्ति पड़ने पर, शोकाकुल होने पर, हमें हमारा मित्र सान्त्वना देता है, उसी प्रकार पुस्तकें भी सान्त्वना देती हैं।

बहुत से ऐसे अवसर आ जाते हैं जब हमारा जी टूट जाता है और हमारी शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। उस समय पुस्तकों के उत्साह-पूर्ण मौन वचनों से हमें आश्वासन मिलता है; जैसे—

छोड़िये न हिम्मत, बिसारिये न हरिनाम।
जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए।

इस उक्ति से किसी दुखिया को कितना अधिक उत्साह मिल सकता है? उसे कितना अधिक धैर्य बँध सकता है?

कोउ न काउ दुख सुख कर दाता।
निजकृत करम भोग सब भ्राता॥

इस कथन से कितनी अधिक सान्त्वना मिल सकती है? इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तक मौन सान्त्वना द्वारा हमारे घावों पर पट्टियाँ बाँधती हैं, हमें दुखी नहीं होने देतीं, हमें प्रसन्न रखती हैं।

पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञान-वृद्धि और मस्तिष्क का विकास होता है। हम घर बैठे-बैठे धुरन्धर विद्वानों के विचारों को जान जाते हैं। बहुत सी बातों और विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं जिनके विषय में पुस्तकें पढ़ने के पूर्व हमें कुछ भी ज्ञान न था। अनेक पुस्तकों के अवलोकन से, उन पर मनन करने से मस्तिष्क के विकास द्वारा सुख में वृद्धि होती है। अज्ञान और अशिक्षित मनुष्यों को प्रायः तंग होना पड़ता है। उदाहरण के लिये ग्रामीण मनुष्य को पुलिस, पटवारी और मुखिया खूब दुःख देते हैं, पर ये लोग विद्वानों और पढ़े-लिखों को तंग नहीं कर सकते। उनका तो स्थान-स्थान पर आदर होता है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुस्तकों के अध्ययन से खूब आनन्द मिलता है। पर यह आनन्द इन्द्रियों के आनन्द से भिन्न होता है। यह अलौकिक आनन्द ही सच्चा आनन्द है। अन्य सब आनन्द मिथ्या हैं उनको सुख ही कह सकते हैं, आनन्द के पवित्र नाम से विभूषित नहीं कर सकते।

स्वच्छता

(१) प्रस्ताव—स्वच्छता की आवश्यकता
(२) सफाई के दो भेद—बाह्य और आन्तरिक स्वच्छता
(३) सफाई से लाभ—(क) आचरण की पवित्रता (ख) स्वास्थ्य-रक्षा
(ग) चित्त की प्रसन्नता
(४) भारतीयों में बाह्य स्वच्छता का अभाव
(५) उपसंहार—स्वच्छता की प्राप्ति के साधन

कहावत है—कुत्ता भी पूँछ फटकार कर बैठता है। अर्थात् कुत्ते को स्वच्छता प्रिय है। फिर मनुष्य क्यों न सफाई पसन्द करे? जब ज्ञान रहित पशु भी गन्दगी से दूर रहना चाहता है तब बोधयुक्त मनुष्य क्यों न उससे दूर रहे? वास्तव में स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वदा स्वच्छ रहे। Cleanliness is next godliness के अनुसार स्वच्छता आत्म-शुद्धि का द्वितीय सोपान है।

स्वच्छता दो प्रकार की होती हैं—बाह्य स्वच्छता और आंतरिक स्वच्छता। बाह्य स्वच्छता का तात्पर्य शरीर, निवास-स्थान, जल-वायु, भोजन आदि की स्वच्छता है। आंतरिक स्वच्छता का तात्पर्य मन और हृदय की स्वच्छता से है। हमें अपने शरीर के प्रत्येक अङ्ग को निर्मल रखना चाहिये। हमारे दाँत गन्दे न हों। हमारे नाखूनों में मैल न भरा हो। हमारी आँखों में कीचड़ न हो। हमारी नाक में गन्दगी न हो। हमारे वस्त्र साफ-सुथरे हों। हमारे घर में कूड़ा-करकट न जमा हो और कहीं से दुर्गन्ध न आती हो। हम शुद्ध जल, शुद्ध वायु और शुद्ध भोजन का उपयोग करें। हम अपने मन और हृदय को पवित्र रखें, किसी के साथ कपट व्यवहार न करें।

पहले आन्तरिक स्वच्छता को लीजिए। इससे आचरण अग्नि में तपे हुए स्वर्ण की भाँति चमकने लगता है, गंगाजी के जल के समान निर्मल हो जाता है। संसार में सर्वत्र शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति की पूजा होती है। शुद्ध आचरण में कुछ ऐसा जादू होता है कि वह

समस्त हृदयों को अपने वश में कर लेता है। सदाचारी व्यक्ति के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति का मस्तक आप-से आप झुक जाता है। उसमें लोगों की अटूट श्रद्धा हो जाती है। गाँधीजी को लीजिए। आन्तरिक स्वच्छता के कारण उनका आचरण इतना पवित्र हो गया कि वे भारतवर्ष के मनुष्य-मनुष्य के हृदय-सम्राट् बने।

बाह्य-स्वच्छता आन्तरिक स्वच्छता की प्रथम सीढ़ी है। इससे भी कुछ कम लाभ नहीं होते। यह स्वास्थ्य की जननी है। उसकी अवहेलना करके मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। वह रोगी हो जाता है और नाना प्रकार के दुःख सहता है। वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो कभी स्नान नहीं करता और सदैव मैले-कुचैले वस्त्र धारण करता है? वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो गन्दी और दुर्गन्ध-पूर्ण नालियों के बीच निवास करता है? वह मनुष्य क्या कभी स्वस्थ रह सकता है जो स्वच्छ जलवायु से वंचित रहता है? कदापि नहीं। अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए स्वच्छता अनिवार्य है। यह देखा जाता है कि जो मनुष्य गन्दे रहते हैं वे दुर्बल और रुग्ण होते हैं। जो मनुष्य स्वच्छ रहते हैं वे हृष्ट-पुष्ट और नीरोग होते हैं। महात्मा गाँधी का कथन है—"जहाँ पूर्ण शुद्धता हो, भीतरी और बाहिरी दोनों ही, बीमारी वहाँ असम्भव हो जाती है।"

स्वास्थ्य के अतिरिक्त बाह्य स्वच्छता से चित्त को प्रसन्नता भी मिलती है। यदि आपको ऐसे स्थान में छोड़ दिया जाय जहाँ कूड़ा-करकट फैला हो, मल-मूत्र पड़ा हो, मक्खियाँ भिनभिना रही हों और गन्दे पानी की मोरियाँ-बह रही हों तो क्या आपका चित्त वहाँ रहने को करेगा? नहीं। क्यों? इसलिये कि आपको वहाँ दुःख होगा, घृणा लगेगी। एक बार बिहार की यात्रा करते हुए सरदार पटेल ने कहा था कि मोटर पर सोया हुआ मैं गन्दगी के कारण जाग पड़ता था। इसका कारण यह था कि गन्दगी उनके चित्त की शान्ति को भंग कर देती थी। निःसन्देह स्वच्छता से मनको शान्ति और आनन्द मिलता है। जब हम स्नान कर लेते हैं और

निर्मल कपड़े पहन लेते हैं तब हमें शान्ति मिलती है। जब हम अपने चारों ओर सफाई देखते हैं तब हमारा मन प्रसन्न होता है।

स्वच्छता से सौन्दर्य की वृद्धि होती है। एक स्त्री को ले लीजिए। यदि वह मैले-कुचैले कपड़े लपेटे हुए है और उसका मुख धूल-धूसरित है तो वह देखने में भद्दी लगेगी। यदि वह स्वच्छ वस्त्र धारण कर ले और मुख को धो डाले तो देखने में सुन्दर लगेगी। छोटा बालक जब धूल-मिट्टी से अपने शरीर को सान लेता है तब कुरूप लगता है। फिर वही जब नहला-धुला कर स्वच्छ कर दिया जाता है तब कितना सुन्दर लगता है! उसके मुख और शरीर पर कैसी अद्वितीय कान्ति छा जाती है। मनुष्य ही नहीं, पशु, पक्षी, पेड़, पौधे आदि सभी पदार्थ स्वच्छ होकर अधिक सुन्दर लगते हैं।

हम भारतवासियों में आन्तरिक स्वच्छता का तो अभाव नहीं, पर बाह्य स्वच्छता की पर्याप्त कमी है। गाँव में चले जाइये, वहाँ गंदगी का पूर्ण साम्राज्य मिलेगा। गाँव तो गंदगी की साक्षात् मूर्ति बने हुए हैं। कहीं मल-मूत्र पड़ा रहता है, कहीं घूरे लगे रहते हैं, कहीं नालियाँ बहती रहती हैं, कहीं मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं, कहीं पानी सड़ता रहता है। गाँव के निवासी भी मैले-कुचैले रहते हैं, उनके घरों में एक ओर कूड़ा पड़ा रहता है, एक ओर पानी फैला रहता है, एक ओर थूक-कफ पड़ा रहता है, एक ओर टूटे-फूटे बर्तन अटे रहते हैं, एक ओर फटे पुराने कपड़े पड़े रहते हैं। वे गलीजखाने-से लगते हैं। यद्यपि नगरों में शिक्षा के प्रचार से कुछ स्वच्छता देखी जाती है तो भी अभी उसकी बहुत आवश्यकता है। टट्टियों और नालियों की सुव्यवस्था नहीं है जिससे दुर्गन्ध फैलती रहती है। अँग्रेजों में बाह्य स्वच्छता खूब पाई जाती है, गन्दगी का नाम नहीं मिलता।

स्वच्छता की प्राप्ति के लिये शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा से स्वतः सफाई की ओर प्रवृत्ति होती है। आन्तरिक स्वच्छता सत्संग से मिलती है। बाह्य स्वच्छता रखने के लिये लोगों को उसकी उपयोगिता भी बतलाई जानी चाहिये। सचमुच यह हम लोगों का

दुर्भाग्य है कि हम स्वच्छता प्रेमी नहीं हैं और गन्दगी में रहना हमें रुचिकर है।

कर्त्तव्य-पालन

(१) प्रस्तावना—प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्त्तव्य-पालन की आवश्यकता
(२) कर्त्तव्य पालन मनुष्य-मात्र का धर्म है
(३) कर्त्तव्य-पालन से लाभ
(४) कुछ कर्त्तव्य-परायण व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसंहार—हमें कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए।

सारी सृष्टि में हम जो कुछ देखते हैं उसका कारण कर्त्तव्य-पालन है। यदि समस्त प्राणी अपना-अपना कर्त्तव्य करना छोड़ बैठे तो सृष्टि के नष्ट-भ्रष्ट होने में कितनी देर लगे? कर्त्तव्य-पालन से ही सृष्टि में विकास होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन-रक्षा के लिए इस गुण की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य का आदर, उसकी उन्नति, उसका यश इसी गुण पर निर्भर रहता है। जो अपने कर्त्तव्य से विमुख हुआ वही अधोगति को प्राप्त हुआ। राजा का कर्त्तव्य प्रजा-पालन है। यदि वह प्रजा के हानि-लाभ, सुख-दुख, आदि का ध्यान नहीं रखे तो कौन उसका आदर करेगा? सैनिक का कर्त्तव्य प्राणों की बाजी लगाकर रणक्षेत्र में डटकर शत्रु से लोहा लेना है। यदि वह संकट के समय शत्रु को पीठ दिखाए, रणक्षेत्र से भाग जाये तो उसके मस्तक पर कलङ्क का टीका लग जायगा।

कर्त्तव्य-पालन मनुष्य-मात्र का धर्म है। प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्त्तव्य पहिचानना चाहिए और तदनुकूल कार्य करना चाहिए। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में और भिन्न-भिन्न समय पर मनुष्यों के कर्त्तव्य परिवर्तित होते रहते हैं। मानव-जीवन अनेक कर्त्तव्यों की समष्टि है। कभी हमें माता-पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन करना पड़ता है, कभी स्त्री के प्रति, कभी सन्तान के प्रति; कभी समाज के प्रति, कभी देश के प्रति। सच्चा मनुष्य वही है जो बाधाओं से विचलित न होकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़

रहता है, चाहे उसे प्राणों का ही उत्सर्ग क्यों न करना पड़े—वह टस से मस नहीं होता।

कर्त्तव्य-पालन से अनेक लाभ हैं। इससे मनुष्य की अपूर्व उन्नति होती है। यहाँ तक कि इसके प्रताप से रंक राजा तक बन जाता है। दीन-हीन व्यक्ति राजा तक के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है। झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्ति का आदर होता है। वह समाज के लिए आदर्श बन जाता है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उसके प्रति अटूट श्रद्धा होती है और लोग उसका अनुकरण करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। इस प्रकार कर्त्तव्य-पालक व्यक्ति से समाज का बड़ा हित होता है। वह स्वयं तो समाज और देश का मुख उज्ज्वल करता ही है, उसके प्रभाव से भी उनका बहुत उत्थान होता है। ऐसे मनुष्य को इस लोक में तो यश मिलता ही है, परलोक में भी शांति मिलती है। मृत्यु-पश्चात् संसार में उसकी पूजा होती है, सदैव के लिए उसका नाम अजर-अमर हो जाता है। इतिहास में उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्ति वास्तविक सुख का अनुभव करता है। संसार की दृष्टि में उसका जीवन कंटकाकीर्ण होता है, क्योंकि उसे सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि देनी पड़ती है, यहाँ तक कि प्राणों पर खेलने के लिए तैयार रहना पड़ता है, किन्तु वह उसे दुःख नहीं समझता। सफलता प्राप्त करने पर तो उसे हर्ष होता ही है, पर असफल होने पर भी उसे इस बात का सन्तोष रहता है कि हमने अपना कर्त्तव्य-पालन किया। जो अपना कर्त्तव्य-पालन करता है उसकी आत्मा भी निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होती जाती है। अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही ईश्वर की सच्ची सेवा है, ईश्वर की सच्ची भक्ति है।

विश्व का इतिहास कर्त्तव्य-परायण महापुरुषों की गौरव-गाथाओं से जगमगा रहा है। इटली में विसूवियस नामक ज्वालामुखी फटने पर नगर भर के नर-नारी भाग गए, परन्तु एक सन्तरी ने अपना स्थान न छोड़ा। वह पहरे पर था। दूसरे किसी सन्तरी के आये

बिना पहरे पर से कैसे हटे ? वह अपने कर्त्तव्य-पालन में ऐसा तत्पर रहा कि वहीं डटे रहकर उसने प्राण त्यागे। भला ऐसे कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति की कौन प्रशंसा न करेगा ? ऐसे सपूतों से देश का मुख उज्ज्वल होता है। हमारे देश में भी कर्त्तव्य-निष्ठ मनुष्यों का आविर्भाव हुआ। कुन्ती ने दीन ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपने प्रिय पुत्र भीम को भयङ्कर राक्षस बक के पास भेजने में तनिक भी आगा-पीछा नहीं किया। शरणदाता की रक्षा के लिए, कर्त्तव्य-पालन का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और कहाँ मिल सकता है। पन्ना धाय ने राजकुमार उदयसिंह की प्राण-रक्षा उसके स्थान पर अपने पुत्र का देखते-देखते वध कराके की। स्वामी के प्रति इस कर्त्तव्य-पालन के उदाहरण को सुनकर किसके मुख से 'धन्य-धन्य' शब्द न निकल पड़ेंगे ? शरणागत-रक्षा का उदाहरण भगवान् राम के चरित्र में मिलता है। जब रावण ने विभीषण पर प्राण-घातिनी शक्ति छोड़ी तब रामचन्द्रजी ने उसे स्वयं अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार विभीषण के प्राण बच गये। यह है कर्त्तव्य-पालन। हमारे महात्मा गाँधी भी कर्त्तव्य-पालन की जीती-जागती मूर्ति थे। जिस कार्य को करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे उसके सम्पादन करने में प्राणों तक का उत्सर्ग करने के लिये उद्यत हो जाते थे। कई बार उन्होंने कर्त्तव्य-पालन के लिए आमरण उपवास किए। अन्त में वे कर्त्तव्य-पालन में ही शहीद हुए।

पर खेद का विषय है कि जिस देश में ऐसी कर्त्तव्य-निष्ठ महान् आत्माएँ उत्पन्न हुईं उस देश के लोग कर्त्तव्य-निष्ठ नहीं हैं। हम लोगों की यह प्रवृत्ति है कि जब तक कोई कष्ट या हानि होने की संभावना नहीं होती तब तक ही हम अपना कर्त्तव्य-पालन करते हैं। क्या हमारे लिए यह लज्जा की बात नहीं है ? हम अपने स्वार्थ के सम्मुख कर्त्तव्य-पालन के उच्च आदर्श को ठुकरा देते हैं। यही कारण है कि हमने अपने देश को अवनति के गर्त में डाल रखा है और आज हम आठ-आठ आँसू रो रहे हैं। हम देश के नवयुवकों को यदि भारत का मस्तक ऊँचा करना है, यदि अपने पूर्वजों की शान

रखनी है, तो हमें कर्त्तव्य-परायण बनना होगा, कर्त्तव्य-पालन में सर्वस्व बलिदान करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहना पड़ेगा।

प्रकृति-सौन्दर्य

(१) प्रस्तावना—प्रकृति और मानव-जीवन का सम्बन्ध
(२) सूर्योदय और सूर्यास्त
(३) वृक्ष, लता, पशु और पक्षी
(४) पुष्प और जलाशय
(५) नभ मण्डल
(६) पर्वत और पवन
(७) उपसंहार—सारांश

प्रकृति और मानव-जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य प्रकृति से कभी पृथक् नहीं होता। आदि काल से अब तक वह प्रकृति के बीच रहता आया है। वन, पर्वत, नदी, नाले, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, आकाश, सूर्य आदि इसके आदिम सहचर थे और अब भी हैं। वास्तव में प्रकृति में हमें प्रसन्न करने की बड़ी शक्ति है। फूल, पत्ती, पक्षी, पशु, मेघ, नदी, निर्झर, चन्द्र, सूर्य आदि प्रकृति के अङ्गों को देखकर हम इनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकते। जब हम किसी वाटिका में विकसित फूलों को देखते हैं तब आनन्द से भर जाते हैं। जब हम अरुणोदय के समय लाल-पीले मेघों को अथवा चाँदी के समान उज्ज्वल झरनों को चट्टानों के साथ अठखेलियाँ करते हुए देखते हैं तब हमारा मन उनमें लीन हो जाता है। यही कारण है कि हम प्रकृति से कभी अलग होना नहीं चाहते। प्रकृति का सौन्दर्य हमारे जीवन में मधुरता और सरसता का संचार करता रहता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त प्रकृति के बड़े सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। देखिये सूर्योदय की छटा। प्राची दिशा में लालिमा छा-गई है। बादल लाल-पीले हो गये हैं। भगवान् भास्कर अपनी लाल किरणों के साथ झाँकने लगे हैं। पक्षियों ने कलरव से उनका स्वागत किया

है, तरु-राज आनन्द में झूमने लगे हैं। पत्तियों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोतियों के समान झलकने लगी हैं। पुष्प खिलने लगे हैं। शीतल सुगन्धित वायु चारों ओर सूर्योदय का संदेश ले जाने लगी है। चकवा-चकवी मिलने लगे हैं। हिम से आच्छादित पर्वत-शिखरों पर सोना सा बिखर गया है। आइये, अब सूर्यास्त की शोभा का भी अवलोकन करें। दिन-भर के परिश्रम से थक कर रविदेव प्रतीची के अञ्चल में अपना मुख छिपाने लगे हैं। प्रातःकाल के समान उन्हों-ने इस समय पश्चिमी दिशा को रक्तिम रंग से रँग दिया है। बादलों ने पुनः लाल-पीला वस्त्र पहन लिया है। पक्षी अपने-अपने घोंसलों को लौटने लगे हैं। श्वेत बगुलों की, हरे तोतों की, काले कौओं की और नीलकण्ठों की पंक्तियाँ नीले आकाश में श्वेत, हरे, काले और नीले हारों के समान प्रतीत होती हैं। वृक्षावली निस्तब्ध हो गई है मानो सूर्य की विदाई में शोक मग्न है। चकवा और चकवी बिछुड़ने लगे हैं। प्रकृति में चारों ओर शान्ति छा गई है।

फिर पेड़-पौधों, लताओं और पशु-पक्षियों की मनोरम छटा देखिए। कहीं नीम की शाखाएँ काले-तमाल के पत्तों से मिली हैं, कहीं रसाल के वृक्ष अपने विशाल हाथों से पीपल के चंचल पत्रों को स्पर्श कर रहे हैं। कहीं जामुन के पेड़ खड़े हुए हैं। कहीं अशोक के ललित पुष्पों के गुच्छे झूम रहे हैं। कहीं लताओं ने वृक्षों से लिपट-कर कुञ्ज बना लिए हैं जिनमें तम के पुञ्ज पुञ्जित हैं। कहीं वनस्थली में हरिण हरिणियों के साथ विचर रहे हैं। कहीं पशु वृक्षों की छाल से अपने शरीर रगड़ कर उनको कँपा रहे हैं। अनेक तरु अपनी फलों से लदी हुई डालियों से झुक कर पृथ्वी-माता को प्रणाम कर रहे हैं। अनेक उस पर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। कहीं कोयल मंजरी-मण्डित आम्र वृक्षों में सरस संगीत की सृष्टि कर रही हैं, कहीं मयूर वृन्द नाच-नाचकर अच्छी-अच्छी नर्तकियों को भी लजा रहे हैं। कहीं पपीहे 'पिउ पिउ' की रट लगा रहे हैं। कहीं शुक और सारिकाएँ अपना मधुर स्वर अलाप रही हैं। कहीं छोटी-छोटी चिड़ियाँ चहचहाकर वृक्षों को शब्दायमान् कर रही हैं। पशु-पक्षियों

की विविध किलोलें देखकर आपका मन प्रसन्न हो जायगा। कहीं वृक्षों की डालियों पर कीश-मण्डली मचक-मचक कर खेल रही हैं और डालियाँ बोझ से लचक रही हैं। कहीं मंजुल मयूर अपने पंखों से जमीन को झाड़ता हुआ भाग रहा है। कहीं पक्षी अपने पंख फैलाये छाती के बल बैठा है। कहीं कोई चिड़िया जल को इधर-उधर उछालती हुई स्नान कर रही है। कैसे रमणीय, कैसे सुहावने, कैसे सुन्दर दृश्य हैं! देखकर आपका हृदय आनन्द-सागर में निमग्न हो जायगा।

आइए, अब पुष्पों और जलाशयों की शोभा का निरीक्षण करें। सरोवरों में लाल, पीले, नीले और सफेद कमल खिल रहे हैं। उनके चारों ओर काले-काले भ्रमर उड़ रहे हैं। लहराते हुए नीले जल पर हरी सेवार छाई हुई है। इठलाती हुई नदियों की उज्ज्वल धाराएँ हीरों के समान चमकती हुई बह रही हैं। उनमें नीले आकाश श्याम तथा श्वेत मेघों और हरे-भरे वृक्षों का प्रतिबिम्ब पड़कर अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा है। चाँदी से झरते हुए मदमाते झरने काली चट्टानों से खेल रहे हैं। उनकी छहरती हुई बूदें मोतियों को मात कर रही हैं। वनस्थली और उद्यान में हरे, पीले, नीले, लाल, गुलाबी आदि रंगों के पुष्प खिले हुए हैं। उन पर रंग बिरंगी तितलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। मधु-मक्खियाँ उनसे रस ले रही हैं। चिड़ियाँ उनसे अठखेलियाँ कर रही हैं भ्रमर उनकी भाँवरी भर रहे हैं। चारों ओर प्रकृति मुसकरा रही है।

नभ-मण्डल की छटा भी रमणीय है। रात्रि के समय सारे आकाश मण्डल में नक्षत्र रूपी मोती बिखर जाते हैं। चन्द्रमा अपनी शीतल और शुभ्र ज्योत्सना पृथ्वी पर चारों ओर विकीर्ण कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सफ़ेद चद्दर बिछ गई है। वृक्षों के पत्तों में होकर चन्द्रमा का प्रकाश छन रहा है जो उनकी छाया में बड़ा अच्छा लगता है। कभी-कभी आकाश मेघों से ढक जाता है। चन्द्रमा और नक्षत्रमाला अदृश्य हो जाती है। स्वर्णिम चपला स्थान-स्थान पर मन्द-मन्द हँसती फिरती है। दिन में सूर्य के तीव्र प्रकाश

से चन्द्रमा और तारागण छिप जाते हैं। नीले आकाश में काली चीलें मँडराने लगती हैं। कभी-कभी इन्द्र-धनुष की अनुपम शोभा देखी जाती है। कैसे अच्छे दृश्य हैं।

पवन और पर्वत-समूह भी हमारा मनोरंजन करते हैं। शीतल और सुगन्धित पवन मन्द-मन्द बहता हुआ हममें अपूर्व स्फूर्ति और शक्ति का संचार करता है। कभी वह आँधी का रूप धारण करके वृक्षों से खेलता है और पुष्प तथा पत्तियों को धरती पर बिखेर देता है। हरियाली के बीच काली शिलाओं पर बहते हुए सफेद झरनों से पर्वत कैसे सुन्दर लगते हैं। उनकी बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ आकाश को चूमती हैं।

सारांश यह है कि प्रकृति-नटी भाँति-भाँति का रूप दिखाकर दर्शकों को रिझाती है। वह कभी हरी साड़ी पहनती है, कभी लाल साड़ी धारण करती है, कभी काली साड़ी से सज जाती है और कभी मोतियों से अपने कलेवर को अलंकृत करके खिलखिलाती है। कभी मीठे-मीठे वचन कहती है। कौन ऐसा है जिसको उसने न रिझाया हो? कौन ऐसा है जो उसके सौन्दर्य से आकर्षित न हुआ हो? कौन ऐसा है जो इसके प्रेम से अभिभूत न हुआ हो?

परोपकार

(१) प्रस्तावना—परोपकार की आवश्यकता
(२) परोपकार करना मनुष्य का कर्त्तव्य
(३) परोपकार से लाभ
(४) परोपकारी व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसंहार—परोपकारी का महत्त्व, हमारा कर्त्तव्य

मनुष्य की क्या कहें पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी किसी न किसी प्रकार अपना पेट भर ही लेते हैं। चींटी से लेकर हाथी तक सभी जीव-जन्तु अपनी भूख मिटाते हैं। पर क्या पेट भरने से किसी को संसार में महत्त्व मिल सकता है? क्या अपना ही भला करने से किसी की संसार में प्रतिष्ठा हो सकती है? क्या दूसरों की भलाई

न करने पर किसी का जीवन सार्थक कहा जा सकता है ? कदापि नहीं ? आज तक न जाने कितने मनुष्य इस संसार में पैदा हुए, पर संसार में नाम केवल उन्हीं का है जिन्होंने दूसरों का हित किया, जिन्होंने दूसरों की सहायता की, जिन्होंने रोते हुए लोगों के आँसू पोंछे, जिन्होंने घायल के घावों पर पट्टियाँ बाँधीं, जिन्होंने भूखे को भोजन कराया। संसार को परोपकारी व्यक्तियों की बड़ी आवश्यकता होती है। जहाँ इस संसार में लोग सुखी हैं—वहाँ दुखी भी हैं, जहाँ सम्पन्न हैं—वहाँ दाने-दाने को तरसने वाले भी हैं, जहाँ दुर्जनों वस्त्र रखने वाले हैं—वहाँ कपड़े की धज्जी-धज्जी को तरसने वाले भी हैं। यदि परोपकारी व्यक्ति न हों तो इन दीन-दुखियों की सुध कौन ले ?

परोपकार करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। उसकी मनुष्यता इसी में है कि वह दूसरों के लिए जीना और मरना सीखे—

"परोपकारार्थ सतां विभूतयः।"

के अनुसार सज्जनों की सम्पूर्ण विभूति परोपकार के लिए होती है। सृष्टि में वृक्ष जलाशय, पशु, मिट्टी, पत्थर आदि जड़ वस्तुएँ परोपकार करती हुई हमको भी वैसा ही करने का उपदेश देती हैं। वृक्ष दूसरों के लिए छाया, फल, फूल, पत्ते और लकड़ी सब कुछ देता है, जलाशय दूसरों को जल देता है। गाय-भैंस दूध देती हैं, मिट्टी और पत्थर अनेक काम आते हैं। जब सूर्य चन्द्र का उदय और अस्त संसार के लिए है, जब पवन और बादल प्राणी-मात्र का उपकार करते हैं, तब मनुष्य क्यों न ऐसा करे ? भर्तृहरिजी ने मानव शरीर की उत्पत्ति भी परोपकार के लिए बतलाई है। वे कहते हैं:—

परोपकारार्थ फलन्ति वृक्षाः पोपकारार्थ वहन्ति नद्यः।
परोपकारार्थ दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरः॥

वास्तव में परोपकार की प्रवृत्ति में मनुष्यता का निवास है। प्रत्येक धर्म परोपकार की शिक्षा देता है। जो मनुष्य परोपकारी नहीं उसे मनुष्य कैसे कहा जा सकता है ?

परोपकार करने से अनेक लाभ हैं। परोपकार करने से गरीब

से गरीब राजा तक के हृदय पर अधिकार जमा लेता है। झोंपड़ी से लेकर महल तक परोपकारी मनुष्य का आदर होता है। प्रत्येक व्यक्ति उसको मस्तक नवाता है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उसके प्रति अटूट श्रद्धा होती है। हम राम की भक्ति क्यों करते हैं? हम कृष्ण की पूजा क्यों करते हैं? हम बुद्ध भगवान का आदर क्यों करते हैं? परोपकार के कारण। दूसरों का हित करने से आत्मा को शांति मिलती है, जीवन आनन्दमय हो जाता है। आत्म-बल की वृद्धि होती है। पर यह सब होता है निःस्वार्थ परोपकार से। स्वार्थयुक्त परोपकार को परोपकार के पवित्र नाम से पुकारना भूल है। यदि कोई मनुष्य सरकार से उपाधि पाने के लिए सार्वजनिक-सेवा करे तो वह परोपकार नहीं कहलायगा। यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रसिद्धि के लिए धर्मशाला बनवा दे तो उसे परोपकारी कहना अनुचित है। इस प्रकार के व्यक्ति का न तो समाज में आदर होता है और न उसे स्वयं ही शांति और सुख मिलता है।

परोपकार हिन्दू सभ्यता का प्रधान अंग रहा है। हमारे यहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त माना जाता रहा है। प्राचीन काल से लेकर अब तक हिन्दू जाति में एक से एक प्रसिद्ध परोपकारी महानुभाव हुए हैं। महाराज दधीचि का नाम कौन नहीं जानता होगा? उन्होंने वृत्रासुर नामक राक्षस के वध के लिए अपनी हड्डियाँ तक दे दी थीं जिनका धनुष बनाकर उस असुर का संहार हुआ और देवताओं की रक्षा हुई। राजा शिवि का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने एक कबूतर के प्राण बचाने के लिए अपने शरीर का मांस दे दिया था। दानवीर कर्ण की यश-चन्द्रिका आज तक विश्व को आलोकित कर रही है। जटायू ने सीताजी की रक्षा में अपने प्राण दिए थे, इसलिए उनका नाम आज तक चला आ रहा है। उदयसिंह की रक्षा के लिए पन्ना धायने अपने पुत्र का बलिदान कर दिया था। इस प्रकार के उदाहरण अनेक हैं। हमारे पूर्वज ऋषि तो परोपकार की मूर्ति थे। वे अपना सर्वस्व दूसरों के हित के लिए प्रदान कर देते थे। वनों में रहकर कन्द मूल और फल फूल खाते थे शीत के

कसाले और धूप के ताप को सहते थे। महात्मा गाँधी भी परोपकार के साक्षात् रूप थे। देश और जाति के लिए उन्होंने क्या नहीं किया? कई अवसरों पर भारतवासियों के लिए अपने प्राणों को होम देने को उद्यत हो गये। अछूतों और ग्रामवासियों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा।

कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के लिए परोपकार के समान हित-साधक अन्य वस्तु नहीं। यह वह गुण है जिससे समाज की स्थिति बनी है। यदि परोपकार न हो तो समाज कायम न रह सके। समाज की रक्षा के लिए, उसकी दशा सुधारने के लिए, उसमें सुख तथा शान्ति स्थापित करने के लिए परोपकार की महत्ता को कौन स्वीकार नहीं करेगा? हमें चाहिए कि हम व्यक्तिगत संकुचित घेरे से निकल कर, अपने सुख-दुख की चिन्ता न करके, जीवधारियों का हित करें। जो प्यासे हों उन्हें पानी पिलाएँ, जो भूखे हों उन्हें भोजन कराएँ, जो नंगे हों उन्हें वस्त्र पहिनाएँ, जो दुखी हों उनके दुःख दूर करें और जो अनाथ हों उनकी सहायता करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि परोपकार के समान उत्कृष्ट धर्म दूसरा नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी के राम ने ठीक ही कहा है—

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई"

विद्यार्थी-जीवन

(१) प्रस्तावना—विद्यार्थी-जीवन की आवश्यकता
(२) विद्यार्थी-जीवन का महत्त्व
(३) विद्यार्थी-जीवन के आनन्द
(४) ज्ञानोपार्जन और आत्म-संस्कार की सीढ़ी
(५) प्राचीन और आधुनिक विद्यार्थी-जीवन में अन्तर
(६) कुछ आदर्श विद्यार्थी
(७) उपसंहार—आजकल के विद्यार्थी जीवन में सुधार

हिन्दू धर्म के अनुसार मानव जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया है जो आश्रम कहलाते हैं। ये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ

और संन्यास हैं। इनमें से ब्रह्मचर्य में बालक गुरु के घर जाकर विद्याध्ययन करते थे और अविवाहित रहते थे। आजकल का विद्यार्थी जीवन इसी का परिवर्तित रूप है जीवन रूपी यात्रा के लिये विद्या-रूपी संबल की नितांत आवश्यकता है। विद्या के सूर्य से अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है; अन्ध-विश्वास, कुरीतियाँ आदि चमगादड़ें छिप जाती हैं और ज्ञान विज्ञान रूपी प्रकाश फैल जाता है। अतः मनुष्य की उन्नत के लिये विद्यार्थी-जीवन बड़ी आवश्यक वस्तु है। इसमें जो बातें सीखी जाती हैं वे आजन्म उसकी सहायता करती हैं। बिना इसके मनुष्य असभ्य रहता है।

विद्यार्थी-जीवन वह साँचा है जिसमें नागरिक ढलते हैं। यह वह जीवन है जिसमें मानसिक तथा आत्मिक उत्थान का सूत्रपात होता है। यह वह जीवन है जिसमें सुधार और संस्कृति का श्री-गणेश होता है। मनुष्य-जीवन का कोई भी अन्य भाग ऐसा नहीं है जो इस जीवन की समानता कर सके। इसकी महत्ता, इसका गौरव सभी जानते हैं। प्राचीन काल में विद्यार्थियों का बड़ा सम्मान था। राजा-महाराजा तक उनको मस्तक नवाते थे, उनको आता देखकर सिंहासन छोड़ देते थे, धन धान्य से उनकी सहायता करते थे। आजकल भी विद्यार्थी-जीवन का महत्व माना जाता है। विद्यार्थियों के लिए सरकार और धनवान मनुष्य छात्र-वृत्ति देते हैं। अनेक वस्तुओं के मूल्य में उनके लिए कमी कर दी जाती है। विद्यार्थी-जीवन की महत्ता कहाँ तक कहें ? महात्मा गाँधी, जवाहर-लाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले आदि महान् महात्माओं को भव्य रूप प्रदान करने का श्रेय विद्यार्थी-जीवन को ही है।

विद्यार्थी-जीवन में अनेक आनन्द मिलते हैं। न कोई चिन्ता होती है और न कोई आपत्ति। विद्यार्थी निर्द्वन्द्व रहते हैं, उन्हें न तो नोंन, तेल और लकड़ी की फिक्र होती है और न मान-अपमान की। खूब खाने को मिल जाता है और खूब पहनने को। माता-पिता

अपने सुखों की परवा न करके पेट काटकर भी अपने बालकों को पढ़ाते हैं और सदैव उनके सुखों का ध्यान रखते हैं। विद्यार्थी मौज उड़ाते हैं। उनका जीवन आनन्दमय होता है। किसी जीवन में भी विद्यार्थी-जीवन के समान मौज नहीं। विद्यार्थियों को खेलने-कूदने के अवसरों की कमी नहीं। मेले और तमाशों में जाकर मनोरंजन करने की रोक-टोक नहीं। सिनेमा, नाटक और सरकस के भवन विद्यार्थियों से खचाखच भरे रहते हैं। वे सैर भी खूब करते हैं कभी स्कूल की टीम में इलाहाबाद जाते हैं, तो कभी इतिहास सम्बन्धी टूर में देहली। कभी स्काउटों के रूप में हरिद्वार के कुम्भ में जाते हैं तो कभी पिकनिक में बिचपुरी। कभी साथियों के साथ ताश, चौपड़ और शतरंज खेलते हैं, तो कभी गप्प उड़ाते हैं। निस्सदेह विद्यार्थी-जीवन बड़ा सरस और मधुर होता है।

विद्यार्थी-जीवन ज्ञानोपार्जन और आत्म-संस्कार की सीढ़ी है। साथियों के संसर्ग में रहकर विद्यार्थी विचार-विनिमय द्वारा अनेक बातें सीखता है। पुस्तकें भी उनको अनेक बातों का ज्ञान कराती हैं। वह आदि काल से लेकर अब तक के विद्वानों से पुस्तकों के माध्यम द्वारा उसी प्रकार बातचीत करता है जिस प्रकार अपने किसी साथी के साथ और उनके संचित विचारों से लाभ उठाता है। अध्यापकों से वार्तालाप करने से भी उसका ज्ञान-भंडार बढ़ता है। जीवन के अन्य भागों की अपेक्षा विद्यार्थी जीवन में सबसे अधिक ज्ञान-वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इस जीवन में आत्म-संस्कार भी होता है। बाल्यावस्था ऐसा समय है जब मनुष्य पर कैसा भी प्रभाव डाला जा सकता है। उस समय वह कच्चे घड़े के समान होता है। कच्चे घड़े पर चाहे जैसा निशान बना दीजिए बन जायगा, पर पक जाने पर न तो सरलता से कोई निशान उस पर बन ही सकता है और न पहला निशान मिट ही सकता है। इसी प्रकार बचपन में जो प्रभाव पड़ जाता है वह बड़े होने पर नहीं मिट सकता है। और न उस अवस्था में नया प्रभाव सरलता से डाला ही जा सकता है। इसलिए विद्यार्थी-जीवन में पाठ्य-पुस्तकों

का बालक पर उत्कृष्ट प्रभाव पड़ता है जिससे उसका आत्मसंस्कार होता है और उसका जीवन सदैव के लिए सुधर जाता है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल का विद्यार्थी जीवन आजकल के विद्यार्थी-जीवन से भिन्न था। उस समय बालक विद्या प्राप्त करने के लिए गुरु के गृह भेज दिए जाते थे। माता-पिता से कुछ समय के लिए उनका सम्बन्ध टूट सा जाता था। वहाँ वे गरु की सेवा करते थे और पढ़ते थे। उनका जीवन सादा होता था। आजकल स्कूल और कॉलेज में फीस देकर विद्या प्राप्त की जाती है। विद्यार्थी या तो घर पर रहते हैं या छात्रालयों में। गुरु की सेवा का भाव उनमें नहीं रह गया है। उनके जीवन में फैशन और टीम-टाम बहुत आ गई है।

हमारे देश में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ आदि कई आदर्श विद्यर्थी हुए हैं जिनके जीवन-चरित्र पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनका विद्यार्थी-जीवन कैसा उत्कृष्ट रहा। दोनों ने हद दरजे की गरीबी में लोहे के चने चबाकर विद्योपार्जन किया। जिन आपत्तियों को सहकर पढ़ना विरले ही छात्रों का काम है। पढ़ने की लगन भी इनमें खूब थी। रात-रात भर ये पढ़ने में बिता देते थे। अहंकार इन्हें छू तक नहीं गया था। फैशन का भूत इन पर सवार न था। यही कारण है कि इन्होंने इतना नाम पाया है।

आजकल हमारे विद्यार्थी बहुत कुछ गिर गये हैं। उनका जीवन विलासमय हो गया है, वे फैशन के पाछे बेतरह पड़े हैं। यही कारण है कि हमारे देश में आजकल अच्छे-अच्छे विद्वानों की कमी देखी जाती है। वर्तमान विद्यार्थी-जीवन में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्यार्थियों को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये। उन्हें फैशन और टीम-टाम का बहिष्कार करना चाहिए, आचरण को सुधारना चाहिए, गुरुओं की सेवा करनी चाहिए, सिगरेट आदि पीने की कुटेव छोड़नी चाहिए, कुरुचि-पूर्ण नाच-रंग से दूर रहना चाहिये और तन्मयता के साथ विद्याध्ययन करना चाहिये। तभी उनका और उनके देश का कल्याण होगा, तभी उनका और उनके देश का अभ्युदय होगा।

सच्चरित्रता

(१) प्रस्तावना—सच्चरित्रता का महत्व
(२) सच्चरित्रता की प्राप्ति के साधन
(३) सच्चरित्रता से लाभ
(४) सच्चरित्रता का संसार पर प्रभाव
(५) सच्चरित्र व्यक्तियों के उदाहरण
(६) उपसंहार—सारांश; हमें सच्चरित्र होना चाहिए

यदि विश्व में कोई अद्वितीय सम्पत्ति है तो वह है सच्चरित्रता। इसके समक्ष अष्टसिद्धि, नवनिधि और इन्द्रासन तक तुच्छ है। संसार के समस्त गुणों को यदि तराजू के एक पलड़े में रखा जाय और सच्चरित्रता को दूसरे पलड़े में तो निःसन्देह दूसरा पलड़ा नीचा रहेगा और पहला ऊँचा उठ जायगा। सच्चरित्रता एक दैवी शक्ति है। जीवन में इसका कितना महत्व है यह किसी से छिपा नहीं। वास्तव में इसके न रहने पर जीवन में कुछ भी नहीं रह जाता। चरित्रहीन व्यक्ति प्राण रहित शरीर से किसी प्रकार अच्छा नहीं, वह समाज का कोढ़ है, वह समाज का सड़ा-गला अङ्ग है। 'आचारः परमो धर्मः' के अनुसार सच्चरित्रता ही मनुष्य का परम धर्म है। मनुष्य की वास्तविक महत्ता उसके चरित्रमें रहती है। यह वह कसौटी है जिस पर उसका मूल्य आँका जा सकता है। सच्चरित्रता मानव-जीवन की शिरोमणि है।

सच्चरित्रता के अङ्ग सत्य बोलना, जीवों पर दया करना, शिष्टता, सुशीलता, नम्रता, क्षमा, उदारता, पाप न करना आदि हैं। इन गुणों के अभ्यास से सच्चरित्र बना जा सकता है। सच्चरित्र बनने के लिए मनुष्य को भले-बुरे का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। केवल भले बुरे के ज्ञान से हीं काम न चलेगा। उसको अपनी प्रकृति भी ऐसी बनानी चाहिए जो उसे सदैव अच्छी बातों की ओर प्रेरित करे। यदि कभी बुरा काम हो भी जाय तो वह पाश्चात्ताप और भविष्य में पुनः वैसा काम न करने का दृढ़ निश्चय कर ले। महात्मा गाँधी में बचपन में यह प्रवृत्ति देखी जाती थी। एकबार उन्होंने माँस खा

लिया पर पाश्चात्ताप करके भविष्य में पुनः माँस न खाने का पक्का विचार कर लिया। इस प्रकार कई बार इन्होंने अपने को पतित होने से बचाया और धीरे-धीरे आचरण की सभ्यता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त सच्चरित्रता की प्राप्ति के लिए यह भी एक साधन है कि मनुष्य आरम्भ से ही अपनी आत्मा की सम्मति के अनुसार प्रत्येक कार्य करे। जिस कार्य के करते समय आत्मा का विरोध हो उस कार्य को न किया जाय। सत्संगति और उत्तम ग्रन्थ पढ़ने से भी मनुष्य सच्चरित्र बन सकता है। कबीर ने सत्संगति के सम्बन्ध में ठीक कहा है—

कबिरा संगति साधु की ज्यों गन्धी की बास।
जो कछु गन्धी दे नहीं तो भी बास सुवास॥

सच्चरित्रता से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। उसकी आत्मा प्रबल हो जाती है। मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग का द्वार उसके लिए खुल जाता है। संसार में उसकी प्रतिष्ठा होती है। लोग उसके प्रति श्रद्धा करने लगते हैं। सच्चरित्रता में कुछ ऐसा जादू है जिससे लोगों के हृदय वश में हो जाते हैं। सच्चरित्र व्यक्ति झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक पूजा जाता है। उसका जीवन सुखी और शांतिमय होता है।

सच्चरित्र मनुष्य का सारे संसार पर प्रभाव पड़ता है। उसके दर्शन करने से, विचार जानने से और प्रशंसा करने से लोगों में सद्भाव जाग्रत होते हैं और मन का मैल कटता है। गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' में रामचन्द्रजी का श्रेष्ठ आचरण देखकर किसके हृदय में सुन्दर भाव उत्पन्न नहीं होते? किसका मन पवित्र नहीं होता? कौन कुमार्ग से अपना पैर पीछे नहीं खींच लेता? सदाचारी व्यक्ति का प्रभाव बिजली के समान तीव्र गति से फैलता है। जिस समय संसार में सच्चरित्रता की पीयूष-वर्षा होती है उस समय पापाचार रूपी जवासा जल जाता है और चारों ओर पवित्रता रूपी सरिता उमड़ने लगती है।

हमारा प्राचीन इतिहास अनेक सच्चरित्र मनुष्यों की गाथाओं से भरा पड़ा है। राम, भरत, प्रताप, शिवाजी आदि पुरुष और सीता,

सावित्री, गार्गी आदि स्त्रियाँ हिन्दू जाति के गर्व के कारण हैं। राम और भरत तो सच्चरित्रता के साक्षात् रूप थे। राणा प्रताप ने प्रतिज्ञा-बश अनेक कष्ट सहे पर मुसलमानों के हाथ अपनी स्वाधीनता न बेची। शिवाजी ने हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म की रक्षा की। सीता आदि देवियों ने सर्वथा अपने उज्ज्वल आचरण का परिचय दिया। उन्हीं के कारण हमारे समाज की आज तक शोभा बनी हुई है। महात्मा गाँधी के भी चरित्र की उज्वलता खूब देखी जाती थी। सत्य और अहिंसा के इस पुजारी ने भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल किया। संसार भर में उन्होंने भारत का शंख फूँक दिया।

सारांश यह है कि सच्चरित्रता एक ऐसी श्रेष्ठ वस्तु है जिसके पा लेने पर मनुष्य बहुत ऊँचा उठ सकता है। वह अपना और अपने समाज दोनों का कल्याण कर सकता है। अतः यह हमारा सतत् प्रयत्न होना चाहिए कि हम सदाचारी बनें। इस कार्य के सम्पादन के लिए रामचरितमानस, गीता आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों का अध्ययन और सज्जनों की संगति करना चाहिए। हमें चाहिए कि हम सत्य बोलें, जीवों पर दया करें, बड़ों का आदर करें, माता-पिता की आज्ञा मानें और कभी पाप न करें।

मेरा एक स्वप्न

(१) प्रस्तावना—स्वप्न की रात्रि का दृश्य
(२) स्वप्न में क्या देखा
(३) महात्मा और मेरी बातचीत
(४) कबच और उसका प्रयोग
(५) कवच की चोरी और फिर प्राप्ति
(६) उपसंहार—प्रातःकाल होने पर नींद टूटना

बरसात की रात्रि थी। आकाश मेघों से आच्छादित था। बिजली कड़क रही थी। फुहारें पड़ रही थीं शीतल वायु मन्द मन्द प्रवाहित हो रही थी घना अन्धकार छाया हुआ था। नवयुवतियाँ झूला झूल रही थीं। उनके गीतों का सुरीला स्वर कर्णेन्द्रिय में अमृत

उँडेल रहा था। झिल्लियों की झनकार एवं दादुरों की ध्वनि बड़ी सुहावनी लग रही थी। सड़कें सुनसान थीं। उनपर बिजली की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। मैं अपने कमरे में बैठा हुआ विद्युत्-प्रकाश में पुस्तक पढ़ रहा था। इसी समय निकटस्थ बड़ी जेल के घण्टे ने 'टन-टन' करके दस बजाए। मैं तत्काल बिजली बुझाकर चारपाई पर जा लेटा और शीघ्र गहरी निद्रा में निमग्न हो गया।

रात में मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा। आकाश से एक महात्मा नीचे उतरा। वह वृद्ध था। उसके बाल पक कर श्वेत हो गए थे और जटाजूट के रूप में सिर की शोभा बढ़ा रहे थे। सारे शरीर पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। कोपीन ही उसका एक मात्र वस्त्र था। पैरों में खड़ाऊँ थीं। आँखों की पलकें बड़ी-बड़ी थीं। नाखून बढ़े हुये थे। शरीर जरा-जर्जरित था, पर उसमें ऐसा दिव्य तेज था कि वह दर्पण की भाँति चमकता था। उसे देखते ही मेरे नेत्र बन्द हो गए।

महात्मा मेरे निकट आया और बोला—"बच्चा; आँखें खोल और बतला तुझे, क्या चाहिए?" मैंने आँखें खोलीं और प्रणाम करके कहा—"भारतमाता की बन्धन मुक्ति चाहता हूँ।" महात्मा ने आशीर्वाद दिया और हँसते हुए बोला—"धन्य है तेरी कामना; ले यह कवच। इसको धारण करके यदि तू भारतमाता को स्वतन्त्र करने के लिये संग्राम छेड़ेगा तो तुझे अवश्य सफलता मिलेगी।" मैंने हर्ष से पुलकित होकर दोनों हाथों में कवच ग्रहण किया और मस्तक से लगाया। इतने में ही महात्मा अदृश्य होगया और मैं देखता ही रह गया।

अब क्या था? मैंने स्वतन्त्रता-संग्राम की तैयारी प्रारम्भ कर दी। कवच-रूपी वस्त्र पाकर मुझमें अपार उत्साह भर गया था। मैंने देश के कोने-कोने में भ्रमण किया। गाँव-गाँव की खाक छानी। लोगों से स्वतन्त्रता-संग्राम की सेना में भरती होने का अनुरोध किया। कई स्थानों पर मेरा विरोध हुआ। मुझे मूर्ख बतलाया गया। पर मैं अपनी धुन में मस्त था, अपने निश्चय पर आरूढ़ था। उससे विचलित होना मेरे लिए असम्भव था। मैं जहाँ जाता था वहीं जन-

साधारण को यही समझाता था कि पराधीनता का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा पराधीनता का अन्त करने के लिए युद्ध में लड़कर मर जाना श्रेयस्कर है। गुलामी अभिशाप है, नरक है। उस दानवी से जितनी शीघ्र मुक्ति मिले, जितना शीघ्र पिण्ड छूटे, उतना ही अच्छा। बहुत लोगों ने, विशेषकर नवयुकों ने, मेरी बात मानी और मेरे अनुयायियों की संख्यामें दिन प्रतिदिन वृद्धि होने लगी। धीरे धीरे एक वृहत् सेना संगठित हो गई। मैं उसका सेनापति बना।

शुभ दिवस एवं शुभ घड़ी में स्वतन्त्रता-संग्राम का श्रीगणेश हुआ। घोड़े पर सवार होकर, सेना लेकर 'वन्देमातरम्' गायन के साथ भारतमाता की बंधन-मुक्ति के लिए मैं आगे बढ़ा। मेरे हाथ में तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा था। शरीर पर महात्मा-प्रदत्त कवच था। मैं उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम—सभी दिशाओं में विजयार्थ घूमा और स्वाधीनता के लिए युद्ध किया। जहाँ गया वहीं विजय लक्ष्मी ने मेरा स्वागत किया। कवच-रूपी अमोघ शस्त्र के समक्ष शत्रु टिक न सका।

एक दिन मेरे कवच का पता शत्रु को लग गया। फिर क्या था? तुरन्त उसकी चोरी हो गई। मैं उसके बिना दीन-हीन हो गया। मेरी दशा मणि-रहित सर्प जैसी हो गई। न मुझमें तेज रह गया। और न शक्ति। चारों ओर खोज की गई। पता लगाने के लिए अनेक गुप्तचर इधर-उधर भेजे गये। उनमें से एक को सफलता मिली। उसने बड़ी चतुराई से कवच का पता लगाया। तत्पश्चात् वह उसकी प्राप्ति के साधन में संलग्न हुआ। वह वेश बदलकर उस व्यक्ति के यहाँ नौकर होगया जिसके घर में कवच छिपा दिया गया था। अवसर मिलने पर वह कवच लेकर चम्पत हुआ और लाकर मुझे अर्पण कर दिया। मैंने दोनों हाथों से कवच को अङ्गीकार किया और गुप्तचर को पुरस्कृत किया।

कवच पाकर मुझे जो हर्ष हुआ वह वर्णनातीत है। मारे हर्ष के मैं उछल पड़ा और मेरी नींद टूट गई। क्या देखता हूँ कि न कहीं

कवच है और न कोई गुप्तचर। मेरे शरीर पर केवल एक चादरा पड़ा हुआ है। मैं उसी को कवच समझकर दोनों हाथों से दबाए हुए हूँ। सम्पूर्ण दृश्य मिथ्या था। इसी समय बड़ी जेल के घण्टे ने 'टन' 'टन' करते हुए छः बजाए। चारपाई छोड़कर तुरन्त उठा और नित्य-कर्म में प्रवृत्त हो गया।

उत्तर-प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्सङ्गठन

(१) प्रस्तावना—पुनर्सङ्गठन की आवश्यकता और सरकार का प्रयत्न
(२) माध्यमिक स्कूलों के रूप
(३) हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूलों के अन्तर का निराकरण
(४) शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा
(५) अङ्गरेजी का स्थान
(६) हिन्दी का स्थान
(७) पूरक व्यावसायिक पाठशालाओं की स्थापना
(८) लड़कियों की शिक्षा का रूप
(९) उपसंहार—इस योजना से लाभ

हमारे देश में चिरकाल से शिक्षा के पुनर्सङ्गठन की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। केन्द्र और प्रांतों में जनप्रिय सरकारों की स्थापना हो जाने पर शिक्षा के पुनर्सङ्गठन का प्रश्न प्रमुख रूप से सामने आया। उत्तर-प्रदेश की सरकार ने सन १९३८ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी जिसने अपनी रिपोर्ट १९३९ ई० में दे दी। सरकार ने इस रिपोर्ट का प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अंश तभी स्वीकार कर लिया; किन्तु उसी वर्ष पद-परित्याग के कारण रिपोर्ट के माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी अंश पर विचार न हो सका। अब पुनः जनप्रिय सरकार स्थापित हो जाने पर सरकार ने इस कार्य को सम्पादित किया है और भलीभाँति विचार करने के पश्चात् रिपोर्ट के मुख्य सुझावों को स्वीकार कर लिया है।

इस योजना के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के दो अङ्ग हैं। (१) लघुतर माध्यमिक (Junior Secondary) और (२) उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary)। पहले में ६ से ८ तक कक्षाएँ हैं और दूसरे ९ से १२ तक। कक्षा ८, १० और १२ के अन्त में परीक्षाएँ ली जाती हैं। कक्षा ६ से ८ तक के स्कूल जूनियर हाई स्कूल कहलाते हैं और कक्षा ९ से १२ तक के हाइयर सेकिंडरी स्कूल। पहले के प्रधानाध्यापक हैड-मास्टर कहलाते हैं और दूसरे के प्रिंसिपल। हाइयर सेकिंडरी स्कूल चार प्रकार के हैं—(१) साहित्यिक, (२) वैज्ञानिक, (३) रचनात्मक और (४) कलात्मक। इन सभी में स्वास्थ्य-निर्माण तथा सामान्य ज्ञान अनिवार्य विषय हैं।

पहले हमारे प्रान्त में हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी नामक दो प्रकार के स्कूल प्रचलित थे। इन दोनों प्रकार के स्कूलों के स्तरों में बहुत अन्तर था, क्योंकि दोनों प्रकार के स्कूलों के पाठ्यक्रम विभिन्न थे। इस अन्तर को बिल्कुल मिटा देने का निश्चय किया गया है। अब तक हिन्दुस्तानी स्कूलों से निकलकर विद्यार्थी ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी स्कूलों में ऊपर की कक्षाओं में प्रविष्ट नहीं हो पाते थे। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तानी स्कूल से कक्षा ७ पास करके कोई विद्यार्थी ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी स्कूल की कक्षा ८ में प्रविष्ट नहीं किया जाता था। इससे गाँव के लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा में बड़ी बाधा उपस्थित होती थी। अब इस भेद के न रहने से सबको शिक्षा की समान सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं। सर्व-साधारण को विदित है कि हिन्दुस्तानी मिडिल कक्षा ७ तक और ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी मिडिल कक्षा ८ तक होती थी। इस अन्तर को दूर करने के लिए बाल-कक्षा का नाम कक्षा १ और इसी प्रकार प्रत्येक कक्षा का उससे ऊपर की कक्षा रख दिया गया है। अतः अब मिडिल कक्षा ८ तक है। अब हमारे स्कूलों में हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी का भी पचड़ा नहीं रहा है।

मातृभाषा हिन्दी शिक्षा का माध्यम है। अब तक विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा-प्रदान से ज्ञानोपार्जन और ज्ञान-प्रसार में पर्याप्त रुकावट हुई थी। विद्यार्थी को किसी विषय का अध्ययन करते समय पहले विदेशी भाषा सम्बन्धी गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती थीं। मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से ज्ञान का द्वार सर्व-साधारण के लिए खुल गया है। प्रांत का प्रत्येक व्यक्ति भगवती वीणापाणि के प्रसाद का पात्र हो सकेगा। प्रांत अशिक्षा के अभिशाप से मुक्त हो जायगा।

अँगरेजी भाषा को प्राथमिक शिक्षा (कक्षा ५ तक) पाठ्यक्रम में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। अब तक ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी स्कूलों में आरम्भ से ही बालकों को अनिवार्य रूप से अङ्गरेजी पढ़ाई जाती थी। हाँ हिन्दुस्तानी स्कूलों में अवश्य उसे स्थान नहीं मिला था। यह किसी प्रकार भी उचित नहीं प्रतीत होता था कि प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों को विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराया जाय, उनके ऊपर विदेशी भाषा का बोझ व्यर्थ लादा जाय। लघुतर माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अँग्रेजी को एच्छिक विषय के रूप में रखा गया है, क्योंकि छोटी अवस्था में लड़के-लड़कियों को विदेशी भाषा पढ़ने के लिए बाध्य करना अनुचित है। आगे चलकर उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के साहित्यिक एवं वैज्ञानिक स्कूलों में अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य है और रचनात्मक एवं कलात्मक स्कूलों में ऐच्छिक।

प्रान्त की मातृभाषा हिन्दी को लघुतर तथा उच्चतर दोनों ही प्रकार के समस्त माध्यमिक स्कूलों के लिए अनिवार्य विषय बनाया गया है। अब तक यह व्यवस्था नहीं थी। फलतः भारतीय संस्कृति और सभ्यता को बहुत धक्का लगा है, उसको बहुत हानि हुई है। जब हम आदि से अन्त तक हिन्दी पढ़ेंगे तब क्यों न हमारे हृदय में भारतीय संकृति के भाव जड़ पकड़ जायँगे, क्यों न हम भारतीय गौरव, भारतीय आदर्श, भारतीय रहन-सहन, भारतीय रीति-नीति, भारतीय आचार-विचार के भक्त होंगे?

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में उन विद्यार्थियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है जिन्हें बीच में ही किसी कारणवश शिक्षा समाप्त कर देनी पड़ती है! वास्तव में ऐसे विद्यार्थियों को जीवन के लिए तैयार करने का दायित्व सरकार पर है। वर्तमान जन-प्रिय सरकार ने इस दायित्व का अनुभव किया है और इनके लिए पूरक व्यावसायिक पाठशालाएँ खोलने की योजना बनाई हैं। इन पाठशालाओं का सम्पूर्ण पाठ्य क्रम ४ वर्ष का होगा और इनमें कई प्रकार के व्यवसायों की शिक्षा दी जायगी। एक व्यवसाय को सीख लेने के पश्चात् यदि चाहे तो विद्यार्थी पाठशाला छोड़ सकता है। उस समय उसमें तुरन्त अपना व्यवसाय आरम्भ करके जीविका उपार्जन करने की क्षमता हो जायगी। यह व्यवस्था की जा रही है कि इन पाठशालाओं में पढ़ाई संध्या समय होगी, जिससे विद्यार्थियों को दिन में उदर पोषण के लिए कुछ काम करने का समय मिल सके।

लड़के-लड़कियों की शिक्षा न्यूनाधिक समान है, जैसी पुरानी शिक्षा-पद्धति में थी। किन्तु दस्तकारी तथा महिलाओं के लिए अन्य उपयुक्त विषयों पर रचनात्मक और कलात्मक दोनों प्रकार के स्कूलों में विशेष महत्व दिया गया है, जिससे आगे चलकर लड़कियाँ योग्य गृहणी बन सकें। उनके लिए जूनियर हाई स्कूल में गृह-शिल्प (House-craft) और हाइयर सेकिंडरी स्कूल में संगीत, कला, मातृ-शिल्प (Mother-craft) पाठ्य विषय हैं।

उपर्युक्त पुनर्सङ्गठन से कई लाभ होंगे। शिक्षा-काल में एक वर्ष की बचत हो जायगी, क्योंकि पहले बाल-कक्षा से इंटरमीजिएट कक्षा तक १३ वर्ष के स्थान पर अब कक्षा १ से कक्षा १२ तक केवल १२ वर्ष ही व्यतीत हुआ करेंगे। इसके अतिरिक्त उच्चतर माध्यमिक स्कूल शिक्षा समाप्त करके निकले हुए विद्यार्थी की योग्यता वर्तमान इंटरमीडिएट कालेज से शिक्षा प्राप्त करके निकले हुए विद्यार्थी की अपेक्षा उच्चतर होगी। वे विद्यार्थी, जिन्हें आर्थिक कठिनाई अथवा अन्य किसी कारण-वश बीच में ही अपना अध्ययन छोड़ देना पड़ता है, संध्या-समय व्यावसायिक पाठशालाओं में पढ़ कर योग्य नागरिक

बन सकेंगे। आजकल की भाँति उनका जीवन नहीं बिगड़ेगा। विश्व-विद्यालयों को उच्च कोटि की सामग्री प्राप्त होगी, क्योंकि अब कई प्रकार के स्कूल होने के कारण केवल वे ही विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में पहुँचगे जिनकी विश्वविद्यालीय शिक्षा में विशेष रुचि होगी और जिनका मस्तिष्क उच्च होगा। प्रान्त में शिक्षा का प्रसार द्रुतगति से होगा, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की संरक्षा होगी। यह शिक्षा-योजना निस्संदेह हमारे नवयुवकों का कल्याण करेगी, निस्संदेह हमारे प्रान्त को उँचा उठाएगी, निस्संदेह हमें अशिक्षा के अभिशाप से मुक्त करेगी।

राष्ट्र के प्राण महात्मा गाँधी के निधन से क्षति

(१) प्रस्तावना—महात्मा गाँधी के निधन का विश्व-व्यापी प्रभाव

(२) महात्मा गाँधी के निधन से क्षति—

(क) शांति का पुजारी उठ गया, (ख) दीन-दुखियों का बन्धु नहीं रहा, (ग) हिन्दू-मुस्लिम एकता का दृढ़ स्तम्भ टूट गया, (घ) निपुण एवं अनुभवी राजनीतिज्ञ नहीं रहा, (ङ) भारत-नौका का कुशल नाविक नहीं रहा, (च) भौतिकवाद के इस युग में आत्मवाद का प्रकाश लुप्त हो गया।

(३) उपसंहार—महात्मा गाँधी की महानता

प्रातःस्मरणीय महात्मा गाँधी के आकस्मिक निधन से विश्व शोक-सागर में निमग्न होगया। विदेशी नर-नारियों के हृदय को ऐसी चोट लगी जैसी किसी आत्मीय जन की मृत्यु से लगती है। स्थान-स्थान पर शोक-सभाएँ हुईं जिनमें उस महान् एवं विश्ववंद्य विभूति के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। प्रत्येक राष्ट्र ने अपना झण्डा उस स्वर्गीय आत्मा के सम्मान में झुका दिया। भारतवर्ष की दशा का तो वर्णन कठिन है। कितने ही व्यक्तियों के प्राण-पखेरू पूज्य बापू की करुण मृत्यु का समाचार पाकर उड़ गये, कितने ही व्यक्ति अचेत हो गए, कितने ही व्यक्तियों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, कितने ही व्यक्तियों ने भोजन त्याग दिया। देश के कोने-

कोने और घर-घर में विलाप हुआ। तीन दिन तक निरन्तर हड़ताल हुई। विवाह आदि उत्सव बन्द हो गये। देश अनाथ होकर अधीर हो गया, अमूल्य निधि खोकर दरिद्र हो गया। भारतमाता का लाड़ला लाल लुट गया जिससे वह व्यथित होकर आठ-आठ आँसू रोने लगी। राष्ट्र के मानो प्राण निकल गए।

महात्मा गाँधी के निधन से विश्व-शांति का पुजारी उठ गया। आज जब चारों ओर अशान्ति के बादल मँडरा रहे हैं, आज जब चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य है, आज जब चारों ओर शोषण का बोलबाला है, आज जब चारों ओर हिंसा की अग्नि से विश्व झुलस रहा है, आज जब चारों ओर द्वेष, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या, घृणा आदि राक्षसी वृत्तियाँ फैली हुई हैं, आज जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को, एक जाति दूसरी जाति को, एक धर्म दूसरे धर्म को, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को संसार से मिटा देना चाहता है, शान्ति के उज्ज्वल तथा निर्मल प्रकाश फैलाने वाले महात्मा गाँधी की हमें अत्यन्त आवश्यकता है, जो मानव-जाति को अहिंसा-सुधा पान कराके स्वर्ग का मार्ग प्रदर्शित कर रहे थे।

गाँधीजी दीन-दुखियों से प्रेम करते थे। दीन-हीनों को छाती से लगाने में, उनके करुणाश्रु पोंछने में उन्हें आनन्द मिलता था। उन्होंने छोटे से छोटे को अपनाया था। वे समाज के पददलित अङ्ग में भगवान् की दिव्य आभा के दर्शन करते थे। अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों को उन्होंने 'हरिजन' नाम से अलंकृत किया था। दीन-दुखियों के प्रति विश्व में जो अन्याय और अत्याचार हो रहे थे उनके विरुद्ध उन्होंने कड़ी आवाज उठाई थी। यह था उनका दीनबन्धुत्व। वे मानव-समाज में प्रेम और समानता के भाव भर रहे थे। आज उनके निधन से विश्व में कोई दीनबन्धु नहीं रहा।

महात्माजी हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के पारस्परिक द्वेष का अन्त करना चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कई बार अपने प्राणों तक की बाजी लगा दी थी। यहाँ तक कि उनका अन्त भी हिन्दू-मुसलिम भेद-भाव के निराकरण-जन्य क्षोभ के

कारण हुआ। इस प्रकार उन्होंने अपने लक्ष्य की साधना में अपने जीवन का बलिदान किया। सनातनधर्मी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति घृणा अथवा द्वेष उन्हें छू तक नहीं गया था। उनके सतत् प्रयत्नों के फल-स्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों का मनमुटाव दूर होता जा रहा था। आज उनके न रहने से इस कार्य का सम्पादन करने वाला कोई नहीं रहा है। आज उनके निधन से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का दृढ़ स्तम्भ टूट गया है।

गाँधीजी एक निपुण एवं अनुभवी राजनीतिज्ञ थे। गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए सुषुप्त देश को जगाकर उसे स्वतन्त्रता दिलाना उन जैसे राजनीति-कुशल व्यक्ति का ही काम था। इस कार्य के लिए उन्होंने एक नवीन अमोघ अस्त्र का आविष्कार किया जो 'सत्याग्रह' कहलाता है। युद्ध के इतिहास में सत्याग्रह में एक नवीन युग का सूत्रपात किया है। इस राजनैतिक आविष्कार को संसार-भर टक-टकी लगाकर देख रहा है। कठिन से कठिन राजनैतिक समस्या सुलझाने की, पेचीदा से पेचीदा राजनैतिक प्रश्न हल करने की, जटिल से जटिल राजनीतिक दाँव-पेंच निष्फल बनाने की सूझ-बूझ महात्माजी में थी। आज उनके न रहने से भारतवर्ष का, नहीं नहीं विश्व का, अनुभवी राजनीतिज्ञ उठ गया है।

आज भारत की नौका मँझधार में है। उसे बड़े-बड़े तूफानों का सामना करना पड़ रहा है। एक ओर काश्मीर-युद्ध की जटिल समस्या है तो दूसरी ओर शरणार्थियों की रक्षा का कठिन प्रश्न। एक ओर पाकिस्तान की कुचालें हैं तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता का भयंकर विष। इस समय हमारे देश की नौका इन उत्पातों से डगमगा रही है, क्योंकि हमारा कुशल नाविक आज हमारे बीच नहीं है। गत ३० वर्षों से भारत-नौका की पतवार उनके हाथ में थी। इस दीर्घकाल में बड़े बड़े तूफान आए, बड़ी-बड़ी आँधियाँ उठीं पर क्या मजाल कि नाव निर्धारित मार्ग से विचलित हो जाय।

महात्मा गाँधी के स्वर्गवास से आत्मवाद का प्रकाश लुप्त हो गया है। आज भौतिकवाद की तूती बोल रही है। आत्मा भुला दी

गई है। विज्ञान के दिन-दूने रात-चौगुने उत्थान ने आत्मा की विनाशकारी शक्तियों को जन्म दिया है। 'खाओ पीओ, मौज-उड़ाओ' की ध्वनि से आज विश्व प्रतिध्वनित हो रहा है। भौतिकवाद के इस युग में पूज्य गाँधी जी ने आध्यात्मिकता और नैतिकता का प्रकाश फैलाया था। उन्होंने मानव जाति को सत्य और अहिंसा, प्रेम और सेवा, त्याग और तपस्या, न्याय और समानता का पाठ पढ़ाया था।

सारांश यह है कि महात्मा जी के निधन से विश्व की, विशेष-कर भारतवर्ष की, जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति करने वाला आज कोई नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने अपने पुनीत विचारों से विश्व में क्रांति उपस्थित कर दी थी। सारे जगत की आँखें उनकी ओर लगी हुई थीं। कंकाल भारत में प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले वे ही थे। भारतमाता की सूखी नसों में रक्त का संचार करने वाले वे ही थे। देश के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, सबके हृदय-सम्राट वे ही थे। धन्य है महात्मा गाँधी और धन्य है उनकी कठोर साधना! वे थे बीसवीं शताब्दी के हरिश्चन्द्र। वे थे बीसवीं शताब्दी के बुद्ध। वे थे बीसवीं शताब्दी के ईसा। आज वे यद्यपि हमारे बीच नहीं हैं, तथापि वे हमारे हृदय में सदैव विराजते रहेंगे और उनका प्रदर्शित मार्ग हमारा सदैव कल्याण करता रहेगा, उनके अमर सिद्धान्त हममें अनुपम शक्ति एवं अलौकिक ज्योति जगाते रहेंगे।

एक आकस्मिक दुर्घटना

(१) प्रस्तावना—मेरठ को प्रस्थान
(२) राजामण्डी स्टेशन पहुँचना
(३) रेलगाड़ी आना और मेरा उसमें बैठकर चलना
(४) फरीदाबाद स्टेशन पर दूसरी रेलगाड़ी से भिड़न्त और यात्रियों का क्षत-विक्षत होना
(५) यात्रियों की सहायता
(६) मेरी जीवन-रक्षा और दूसरी गाड़ी से मेरठ पहुँचना

(७) पत्र-पत्रिकाओं में दुर्घटना की चर्चा
(८) उपसंहार—दुर्घटना का दुष्परिणाम

एक-एक करके बड़े दिन की सब छुट्टियाँ समाप्त हो गईं। २ जनवरी को बेसिक ट्रेनिंग सेण्टर, मेरठ खुलने वाला था। अतः १ जनवरी को मैंने मेरठ जाने की तैयारी आरम्भ कर दी और रात की गाड़ी से प्रस्थान करने का निश्चय किया। गाड़ी राजामण्डी स्टेशन से ३ बजकर १० मिनट पर छूटती थी। ऐसी दशा में भोजनादि से निवृत्त होकर रात्रि के १० बजे ही स्टेशन पर पहुँचना उचित समझा। एक ताँगा मँगवाया गया और उसमें सामान रखवाकर मैंने स्टेशन की राह ली।

कड़ाके की ठण्ड थी, शीतल वायु कोड़े से मार रही थी। चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ था, केवल सड़कों पर बिजली की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। सन्नाटा छाया हुआ था। ताँगे की ध्वनि तथा घोड़े की टाप ही शान्ति को भंग कर रही थी। आध घण्टे में ताँगा राजामण्डी स्टेशन आ पहुँचा। कुली ने सामान उतारा और प्रतीक्षालय में रख दिया। गाड़ी आने का समय तीन बजे था। अतः मैंने सोने का विचार किया। बिस्तर खोलकर बेंच पर बिछाया और उस पर लेट गया, किन्तु गाड़ी निकल जाने के भय से नींद कैसे आती? यों ही करवटें बदलता रहा।

जब टिकट बँटना आरम्भ हुआ तब मैं उठा और बिस्तर बाँधा। फर टिकटघर जाकर टिकट खरीदा। अभी गाड़ी आने में १० मिनट थीं। अतः प्लेटफॉर्म पर जाकर घूमने लगा। ठीक ३ बजे घण्टी बजी। लोग चौकन्ने हुए। कुलियों ने बोझ सँभाले। मेरा भी सामान कुली ने सिर पर लादा। एक मिनट में गाड़ी भप्-भप् करती हुई प्लेटफॉर्म पर आ धमकी। इधर-उधर भगदड़ मच गई। यात्रियों का गाड़ी में घुसना और बाहर निकलना आरंभ हुआ। मैं भी एक डिब्बे में घुसा और थोड़ा सा स्थान पाकर वहीं बैठ गया।

ठीक ३ बजकर १० मिनट पर गार्ड ने सीटी बजाते हुए हरी झंडी दिखाई। गाड़ी चल दी। ऐक्सप्रैस गाड़ी होने के कारण वह केवल बड़े-बड़े स्टेशनों पर ठहरती थी और बहुत तीव्र गति से चल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो हवा में उड़ रही है। नींद परेशान कर रही थी, उससे युद्ध होते-होते प्रातःकाल हुआ। समय बड़ा सुहावना था। पौ फट रही थी। ठण्डी-ठण्डी वायु चल रही थी, जिससे हाथ-पैर ठिठुरे जाते थे। थोड़ी देर बाद पूर्व दिशा से सूर्यदेव झाँकने लगे। उनका गुलाबी हास्य चारों ओर बिखर गया। समस्त वनस्थली अरुणिमा-सागर में निमग्न हो गई।

नेत्र इस सुन्दर दृश्य का आनन्द लूट ही रहे थे कि यकायक घोर ध्वनि हुई। बहुत जोर का धक्का लगा और गाड़ी एकदम रुक गई। मैं अपने स्थान से दूर जाकर गिरा, जिससे मेरे हाथ में चोट आई। अन्य डिब्बे के यात्रियों की भी यही दशा हुई। ऊपर की पटरियों से सामान गिरने के कारण कई साथियों के भारी चोट लगी। लोहे की सन्दूकों के गिरने के कारण कई के सिर फूट गये। बालक और स्त्रियाँ पीड़ित होकर रोने लगीं। हर्ष तत्काल शोक में परिणत हो गया। मैं हक्का-बक्का रह गया। कुछ समझ में नहीं आया कि मामला क्या है। तुरन्त खिड़की से झाँका। क्या देखता हूँ कि हमारी गाड़ी एक पेसेंजर गाड़ी से भिड़ गई है। यह देखकर मेरे हाथ-पैर फूल गए। मैं नीचे उतरा और इञ्जन की ओर बढ़ा। वहाँ का भीषण दृश्य देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए और मेरे नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। इंजन उलट गया था। उसके पास वाले कई डिब्बे टूटकर पटरी से अलग जा गिरे थे। उनमें बैठे हुए यात्रियों में से अधिकांश बुरी तरह घायल हुए थे। किसी का हाथ टूट गया था, किसी का पैर टूट गया था। किसी के सिर में चोट लगी थी, किसी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। कई तड़प रहे थे, कई अचेत पड़े थे। दोनों गाड़ियों के ड्राइवर मर चुके थे। स्त्रियाँ और बच्चे बिलख-बिलख कर रो रहे थे। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। स्थान श्मशान-भूमि जैसा

भयानक लगता था। वहाँ का दृश्य इतना हृदय-विदारक था कि जड़ लेखनी अङ्कित करने में असमर्थ है।

यह आकस्मिक दुर्घटना फरीदाबाद स्टेशन पर हुई थी। अतः डाक्टरी सहायता मिलने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ। तुरन्त दिल्ली को फोन किया गया। वहाँ से शीघ्र सहायता आ पहुँची। घायलों और पीड़ितों को परहम-पट्टी आदि चिकित्सा के पश्चात् दिल्ली पहुँचाया गया। मृतकों का अन्तिम संस्कार किया गया। बहुत सी लाशें डिब्बों के नीचे दबी हुई मिलीं उन्हें निकाला गया। यह देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही कि एक डिब्बे के नीचे से पंच-वर्षीय बालिका जीवित निकली। इतने विशाल एवं भारी डिब्बे के नीचे उसकी किसने रक्षा की? सर्व-शक्तिमान् भगवान् के अतिरिक्त ऐसा असंभव कार्य अन्य कौन सम्पादित कर सकता है? धन्य है भगवान् की महती कृपा और धन्य है उसका अधिकारी! माता ने अपनी बालिका को कंठ से चिपका लिया और उसका मुख चूमा। माता के मुख पर हर्ष की अपूर्व आभा छिटकने लगी। वही माता जो कुछ समय पूर्व दीन-हीन बनी हुई आठ-आठ आँसू रो रही थी और अपना सिर धुन रही थी, अब उल्लास के समुद्र में निमग्न हो रही थी।

मैंने भगवान् को अनेक धन्यवाद दिए जिसकी अनुकम्पा से मेरी जीवन-रक्षा हुई। हाथ की चोट साधारण थी, शीघ्र ठीक हो गई। अब दूसरी गाड़ी से मैं दिल्ली पहुँचा और वहाँ से तीसरी गाड़ी में सवार होकर मेरठ पहुँच गया। मार्ग में क्षण भर के लिए भी रेल-दुर्घटना का दृश्य मेरे नेत्रों से नहीं हटा।

पत्र-पत्रिकाओं में पर्याप्त समय तक उक्त दुर्घटना की चर्चा चलती रही। सरकार ने दुर्घटना के कारण और उसकी क्षति की जाँच कराई। ज्ञात हुआ कि स्टेशन-मास्टर की असावधानीसे यह दुर्घटना घटी थी। उसने एक्सप्रेस गाड़ी को उसी लाइन का लाइन-क्लीयर (Line Clear) दे दिया था जिस पर पेसेंजर गाड़ी खड़ी थी। दुर्घटना में १०८ व्यक्ति मरे और २४३ घायल हुये थे।

उक्त आकस्मिक दुर्घटना में कितनी ही स्त्रियों ने अपने पति खोए। कितनी ही बालक-बालिकाओं ने अपने माता-पिता से हाथ धोया। कितने ही परिवार उजड़ गए। कितनों ही का जीवन कंटकाकीर्ण हो गया। कितनों ही के आँसू पोंछने वाला कोई न रहा। आज भी इस दुर्घटना का दृश्य मेरे नेत्रों के सम्मुख नाच रहा है। आज भी उसकी भीषणता मेरे हृदय को कँपा रही है।

स्वतन्त्रता-दिवस समारोह

(भारतवर्ष को स्वतन्त्रता-प्राप्ति)

(१) प्रस्तावना—भारतीय इतिहास का स्वर्ण-दिवस
(२) १४ अगस्त से ही उत्सव का प्रारम्भ
(३) १५ अगस्त का प्रातःकालीन दृश्य
(४) १०॥ बजे झण्डा फहराने का दृश्य
(५) सायंकालीन सार्वजनिक सभाएँ
(६) रात्रि को प्रकाश की छटा
(७) उपसंहार—सारांश

मेरे जीवन की सबसे मनोरंजक घटना थी भारत-माता की बंधन-मुक्ति। १५ अगस्त १९४७ ई० भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। यह वह दिन था जब सैकड़ों वर्षों की पराधीनता का अन्त हुआ। यह वह दिन था जब भारतीय राष्ट्र ने सर्वप्रथम स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस ली। यह वह दिन था जब महात्मा गाँधी की अहिंसा रूपी छैनी ने भारतमाता की वेड़ियाँ काटकर अलग कर दीं। यह वह दिन था जब देश पर बलिदान होने वाले अमर शहीदों के रक्त से सींचा हुआ स्वतन्त्रता-पादप हरा-भरा हुआ यह वह दिन था जब लगभग ४० वर्ष की घोर तपस्या एवं त्याग पर प्रसन्न होकर स्वतंत्रता देवी ने हमें अपनाया। इस दीर्घकाल में राष्ट्र ने न जाने कितना बलिदान किया, न जाने कितना कष्ट सहा, न जाने कितनी आंखों से अविरल अश्रु-धारा

प्रवाहित हुई, न जाने कितनी बालक-बलिकाएँ अनाथ हुईं, न जाने कितनी नारियाँ विधवा हुईं न जाने कितने घर उजड़ गये, न जाने कितने परिवार नष्ट हुये, न जाने कितनें सपूतों ने हँसते-हँसते प्राण न्यौछावर किये। अन्त में तपस्या पूर्ण हुई, साधना सम्पन्न हुई, । इस शुभ अवसर पर भला किस भारतीय को हर्ष न होता ? सभी उल्लास उमंग और उत्साह से ओत-प्रोत थे। सभी नर-नारियों, बालक बालिकाओं तथा युवा-वृद्धों में नवीन आभा, नवीन स्फूर्ति, नवीन-जीवन का संचार हो रहा था। हृदय हर्ष में बल्लियों उछल रहा था। प्रत्येक के मुख पर निराली छटा थी। प्रत्येक के नेत्रों में अद्भुत ज्योति थी।

१४ अगस्त से ही राष्ट्र के इस पर्व को सजधज के साथ मनाना आरम्भ हो गया। स्वतंत्रता-देवी के स्वागतार्थ स्थान-स्थान पर तिरंगी झंडियाँ बाँधी गईं। केले के खम्भों के द्वार बनाये गये और उन पर आम के पत्तों के बंदनवार बाँधे गये। कहीं तिरंगे कपड़े से द्वारों की रचना की गई, कहीं बाँस एवं लाल कपड़े की सहायता से द्वार बनाये गये और उन पर सफेद गोटे की झालरें लगाई गईं। किसी द्वार का नाम रखा गया 'गाँधी द्वार,' किसी का 'सुभाष द्वार,' किसी का 'जवाहर द्वार,' किसी का 'आजाद द्वार,' किसी का 'शहीद द्वार,' किसी का 'भारत माता द्वार,' और किसी का 'स्वतंत्रता द्वार,' मकान-दुकान खूब सजाये गये। रात्रि को १२ बजे शंख-ध्वनि तथा घण्टा-ध्वनि द्वारा स्वतंत्रता-देवी का आवाहन किया गया। स्थान-स्थान पर कीर्तन होने लगा। कहीं रामायण का पाठ आरम्भ हुआ और कहीं गीता का। प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ राष्ट्र यकायक जग पड़ा; चारों ओर की सुमधुर ध्वनि कर्णेन्द्रिय में अमृत उँडेलने लगी।

प्रभात होते ही प्रभात फेरियाँ होने लगीं 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा। झण्डा ऊँचा रहे हमारा॥" की तुमुल एवं मधुर ध्वनि से आकाश गूँज उठा। बीच-बीच में 'भारतमाता की जय हो' स्वतंत्र भारत की जय हो','राष्ट्रीय झण्डे की जय हो', 'महात्मा गाँधी की जय हो', 'पं० जवाहरलाल नेहरू की जय हो,' 'अमर शहीदों की

जय हो,' 'अमर सुभाषचन्द्र बोस की जय हो,' आदि नारे हृदय में अपूर्व जोश, अपूर्व उमंग, 'अपूर्व उल्लास' का संचार करने लगे। जिधर देखिये उधर ही जन-समूह उमड़ रहा था। टोलियाँ की टोलियाँ प्रभात फेरी लगा रही थीं। आगे चक्र-चिह्नित तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा था और पीछे मुक्त कण्ठ से झण्डा गान गाते हुये तथा नारे लगाते हुये स्त्री-पुरुष। कैसा अनोखा, कैसा विलक्षण दृश्य था!

१०॥ बजे सर्वत्र राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। प्रत्येक सरकारी भवन चक्र चिह्नित तिरंगे झंडे से सुशोभित हुआ। मुहल्ले-मुहल्ले में, घर-घर में यह कार्य सम्पादित हुआ। आकाश में उड़ते हुये असंख्य झण्डे अनूठी शोभा की सृष्टि कर रहे थे। उनका सौन्दर्य नेत्रों को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो भारतवर्ष का प्रत्येक गृह झण्डे द्वारा विश्व को स्वतंत्रता का सन्देश दे रहा है। वह स्वतंत्रता का प्रतीक अपने मधुर कम्पन द्वारा दर्शकों की रग-रग में स्फूर्ति एवं शक्ति का संचार कर रहा था। यही नहीं कि नर-नारियों ने अपने घरों को ही राष्ट्रीय झण्डे से सुसज्जित किया हो, अपने शरीर को भी उन्होंने आभूषित किया था। यहाँ तक कि महिलाओं ने तिरंगी साड़ी धारण की थी। झण्डा फहराने के पश्चात् बालक-बलिकाओं को मिठाई बाँटी गई। भिखारियों को भोजन कराया गया और वस्त्र दिये गये। स्वतंत्रता-दिवस की पुनीत स्मृति में वृक्ष आरोपित किए गए।

सायंकाल सार्वजनिक सभाओं की योजना हुई। मुहल्ले-मुहल्ले में सभाएँ की गईं। वक्ताओं ने अपने प्रभावशाली एवं ओजस्वी भाषणों द्वारा जनता को मुग्ध कर दिया। श्रोताओं ने करतल-ध्वनि से अपने हर्ष तथा वक्ताओं की सराहना के भाव व्यक्त किए। सभाओं में महात्मा गाँधी, स्वर्गीय सुभाषचन्द्र बोस, पं० जवाहर-लाल नेहरू, देश पर बलिदान होने वाली आत्माओं तथा नेताओं को श्रद्धांजलि अर्पित की गईं, जिनके महान् त्याग, महान् तपस्या,

महान् कष्ट, महान् साधना के फलस्वरूप स्वतन्त्रता देवी ने हम पर कृपा की।

सूर्यास्त होने पर स्वतन्त्रता दिवस का सबसे अधिक आकर्षक, सब से अधिक रमणीक प्रोग्राम प्रारम्भ हुआ। घर-घर की छतों पर दीपमालिकाएँ सजाई गईं। सरकारी भवनों पर भी प्रकाश की आयोजना हुई। दुकानदारों ने अपनी दुकानें सजाईं। उन पर विद्युत् का चमचमाता हुआ आलोक पीले, श्वेत और हरे काँच के तिरंगे लट्टुओं द्वारा किया गया। किसी दुकान पर भारत-माता का मन्दिर सजाया गया, किसी पर स्व० सुभाषचन्द्रबोस के स्वतन्त्रता संग्राम का दृश्य दिखाया गया। किसी पर महात्मा गाँधी के विख्यात डाँडी-प्रस्थान का दृश्य प्रदर्शित किया गया, और किसी पर स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर में महात्मा गाँधी और पं० जवाहरलाल नेहरू को आराधना-संलग्न दिखाया गया। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश था। चारों ओर चहल-पहल थी। तिरंगे झण्डे के नीचे दीपमालिकाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं मानो उसका अभिवादन करने के लिए आकाश से नक्षत्रगण नीचे उतर आए हैं, अथवा शहीदों की आत्माएँ उस पवित्र रात्रि को अपने प्राण-प्यारे झण्डे को प्रणाम करने के लिए एकत्रित हुई हैं। नेत्रों को तो यह दृश्य आनन्द दे ही रहा था, कानों को रेडियो के मधुर राष्ट्रीय गाने रसमग्न कर रहे थे। कभी वन्देमातरम् गायन, कभी झण्डा-गायन, कभी 'हिन्दुस्तान हमारा है' गायन सुनकर मन-मयूर नाच उठता था। कैसा सुहावना, कैसा मनोरम दृश्य था!

सारांश यह है कि भारतवर्ष में स्वतन्त्रता-दिवस जिस सज-धज जिस धूम-धाम, जिस ठाट-बाट, जिस समारोह के साथ मनाया गया उस प्रकार आज तक कोई उत्सव अथवा त्यौहार नहीं मनाया गया। सभी लोगों का यह कथन था कि उन्होंने अपने जीवन-काल में सर्व प्रथम ऐसा विशाल उत्सव देखा है। ठीक भी है। पहले हम भारतीय गुलाम थे, पराधीन थे; अतः हमारे यहाँ कोई त्यौहार अथवा उत्सव दिल खोलकर नहीं मनाया गया। पराधीनता का

अन्त होने पर हम हर्ष से उन्मत्त हो गए। स्वतन्त्रता मिलने पर हम फूले न समाए। फलतः राष्ट्र के उस गौरवशाली दिन का हमने हृदय से स्वागत किया। उस पर्व के लिए हमारा हृदय उछल पड़ा। उसदिन सर्वत्र हर्ष ही हर्ष दिखलाई पड़ता था। जहाँ देखिये वहीं निराली छटा छाई हुई थी। जहाँ देखिये वहीं मेला-सा लगा हुआ था। जंगल में भी मंगल हो गया था। उस दिन दूध और शर्बत की प्याऊ लगाई गईं। याचकों को भोजन-वस्त्र प्रदान किए गए। बालक-बालिकाओं को मिठाई बाँटी गई। प्रत्येक मनुष्य ने अपने को अच्छे-अच्छे वस्त्रों से आभूषित किया और घर-घर में मिष्टान्न एवं पकवान्न का भोजन हुआ। यह था दरिद्र भारत द्वारा स्वतन्त्रता-देवी का स्वागत। हमें पूर्ण विश्वास है कि अब उसके शुभागमन से भारत को समृद्धि, सुख एवं शान्ति प्राप्त होगी; और—

"शहीदों के मजारों पर,
लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का,
सदा कायम निशाँ होगा॥"

रामायण से शिक्षा

(१) प्रस्तावना—रामायण की रचना का उद्देश्य
(२) रामायण से शिक्षा
(क) आचरण-सम्बन्धी शिक्षा, (ख) धार्मिक शिक्षा, (ग) सामाजिक शिक्षा, (घ) राजनैतिक शिक्षा
(३) उपसंहार—रामायण का महत्व

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में रामायण नामक महाकाव्यकी रचना की। उसकी अवतारणा गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिन्दी भाषा में की और उसको 'रामचरित-मानस' नाम दिया। गोस्वामीजी ने रामायण की रचना क्यों की ? इस प्रश्न का उत्तर

हमें रचना के आदि में ही मिल जाता है। गोस्वामीजी ने लिखा है—

"स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥"

इससे स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य अपनी आत्मा को आनन्द प्रदान करना था। ठीक है, पर केवल यही इस महान् काव्य की रचना का लक्ष्य नहीं था—कुछ और भी था। जिस समय गोस्वामी जी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय हिन्दू-जाति अवनति के अन्धकूप में पड़ी हुई थी। हिन्दुओं का जीवन नैराश्यपूर्ण था। उनकी सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। वर्णाश्रम, धर्म, वेद-शास्त्र, कुलाचार और मर्यादा का तिरस्कार हो रहा था, चारों ओर अशांति छाई हुई थी। निःसंदेह हिन्दुओं की दशा शोचनीय थी। उसे सुधारने के लिये गोस्वामीजी ने रामायण की रचना की। अतः रामायण की रचना का उद्देश्य हिन्दू-समाज की सुव्यवस्था द्वारा आर्य-धर्म की रक्षा करना भी था। गोस्वामीजी कहाँ तक इस उद्देश्य में सफल हुए, यही हमें देखना है। गोस्वामीजी की रामायण से हिन्दुओं ने क्या शिक्षाएँ ग्रहण की हैं, इसी का हमें विवेचन करना है।

गोस्वामीजी की रामायण ने जनता को नीति और मर्यादा के पाठ पढ़ाए हैं। इस कार्य के लिए मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के चरित्र से बढ़कर अवलम्ब और क्या मिल सकता था। उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उन्होंने मानव-हृदय की पवित्र से पवित्र वृत्ति, आचरण का उत्कृष्ट से उत्कृष्ट स्वरूप और मर्यादा का भव्य से भव्य सौन्दर्य उद्घाटित किया है। कृपा, नम्रता, सुशीलता, सत्यता, उदारता, क्षमा, कृतज्ञता वीरता, धीरता, गम्भीरता आदि का रूप राम में दिखलाया है। उन्होंने किस प्रकार परशुरामजी और समुद्र को क्षमा किया, किस प्रकार पवनसुत के प्रति कृतज्ञता स्वीकार की, किस प्रकार विभीषण

और सुग्रीव पर कृपा की, किस प्रकार परशुरामजी के सम्मुख नम्र वचन कहे, किस प्रकार धीरता और गम्भीरता से वनों के दुःखों को सहन किया; और किस प्रकार वीरता से पापी दुर्धर्ष राक्षसों का वध किया, यह जानकर हमारा मन अत्यन्त प्रसन्न होता है। भाई लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ उनका व्यवहार तथा पिता दशरथ और माताओं को आज्ञा-पालन, उनके भ्रातृ प्रेम, पितृ-भक्ति; तथा मातृ-भक्ति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी पत्नी सीता पतिव्रत-धर्म की जीतीजागती मूर्ति हैं। पिता दशरथ सत्य-व्रत के साक्षात् रूप हैं। रामायण में यह सब पढ़ कर मन का मैल कटता है। राम का बालि-वध, सीता-वनवास, साधु-सेवा; और शिवजी का काकभुशुण्डि को श्राप, मर्यादा के बड़े अच्छे उदाहरण हैं। बालि ने अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी पत्नी बनाया और काकभुशुण्डि ने गुरु को प्रणाम नहीं किया। सीता पर रावण के गृह-निवास का झूठा दोषारोपण किया गया, जिसका दण्ड मर्यादा की दृष्टि से वांछनीय था।

धर्म-सम्बन्धी शिक्षाएँ भी रामायण में खूब दी हैं। रामायण के पूर्व आर्य-धर्म का वास्तविक रूप आँखों से ओझल हो रहा था। सर्वत्र दम्भ और आडम्बर का बोलबाला था। शैव, वैष्णव; और शाक्त आपस में खूब लड़ते-झगड़ते थे। ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखने वाले मूर्ख बढ़ रहे थे। 'ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि-नर करहिं न दूसरि बात'—ऐसे लोगों ने भक्ति को बदनाम कर दिया था। गो-स्वामीजी ने अपने रामायण में आर्य-धर्म का ऐसा चलता हुआ सामान्य रूप रक्खा जिसकी ओर जनता स्वतः आकर्षित हो। धर्म का सम्बन्ध हृदय से स्थापित करके उसका मार्ग आनन्दमय बना दिया, जिससे लोग आप-से-आप उसकी ओर प्रवृत्त हुए इनकी राम-भक्ति केवल ज्ञान और कर्म के साथ ही सामञ्जस्य नहीं जोड़ती है, बलिक भिन्न-भिन्न देवताओं का भी आदर करती है। इन्होंने जो धार्मिक उपदेश अपने काव्य में रक्खे हैं, उन्होंने शैवों, वैष्णवों, शाक्तों, कर्मठों; और ज्ञानियों के झगड़ों का सदैव के लिए अन्त कर दिया।

इनकी राम-भक्ति का आधार आचरण की शुद्धता स्थान-स्थान पर इन्होंने राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए सदाचार की शिक्षा दी है। यही कारण है कि आज राम-भक्ति का हिन्दुओं के घर-घर में प्रचार है। प्रत्येक हिन्दू की जिह्वा पर राम-नाम नाचता है। सम्पत्ति में, विपत्तिमें, घर में, वन में जहाँ देखिये वहीं राम-नाम। यहाँ तक हमारी अभिवादन-प्रणाली में भी राम-नाम को स्थान मिला हुआ है।

रामायण ने समाज की व्यवस्था फिर से की। समाज के लिए गोस्वामीजी ने वर्ण और आश्रम का बन्धन आवश्यक ठहराया है। स्त्रियों के लिए पुरुषों की अधीनता में रहकर गृहस्थी का काम-काज करना ही आवश्यक बतलाया है। शूद्रों के लिए अन्य वर्णों की सेवा, सुश्रूषा करने की शिक्षा दी है। गोस्वामीजी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों ; और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ; और संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था की है। सारे समाज को इन चार आश्रमों में रहने की शिक्षा दी है। समाज में बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान, वीरों के प्रति श्रद्धा, अत्याचारों का दमन, पारस्परिक एकता आदि बातों की शिक्षा दी है।

रामायण से हमें राजनीतिक शिक्षा भी मिलती है। किस प्रकार राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार होना चाहिये, किस प्रकार प्रजा का राजा के प्रति व्यवहार होना चाहिए, किस प्रकार शासन की व्यवस्था हो, किस प्रकार राजा प्रजा की रक्षा, सुख; तथा समृद्धि का प्रबन्ध करे; और किस प्रकार उस पर वीतराग साधु-महात्माओं का नियन्त्रण रहे, इन सब बातों का विवेचन रामायण में भलीभाँति हुआ है। गोस्वामीजी ने एक स्थल पर कहा है।

"मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहँ एक।
पाले पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥"

रामायण के अनुसार राजा सच्चरित्र और दार्शनिक मनोवृत्ति का होना चाहिए। राजा के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में

कोई भेद न हो। उसके दोनों प्रकार के जीवन को देखने की और उस पर टीका-टिप्पणी करने का मजाल प्रजा को हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रामयण ने हिन्दू जाति को क्या नैतिक, क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक सभी प्रकार की शिक्षाएँ दी हैं। वास्तव में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शों का प्रतिपादन करके रामायण ने हिन्दू जाति का उद्धार किया है, उसे नया जीवन प्रदान किया है। इस पवित्र काव्य को पढ़कर अथवा सुनकर न जाने कितने मनुष्य सुधर गए, न जाने कितने सन्मार्ग पर चलने लगे और न जाने कितने भवसागर से पार हो गए। आज भी इसके प्रभाव से प्रत्येक हिन्दू धर्म पर श्रद्धा करता है, सदाचार की ओर प्रवृत्त होता है, पूज्य-जनों को मस्तक झुकाता है, विपत्ति में धैर्य रखता है; और राम-भक्ति का अनुसरण करता है। धन्य है हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति का कल्याण करने वाली रामायण और धन्य है इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास! किसी ने ठीक ही कहा है—

"भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।"

शिक्षा का जीवन पर प्रभाव

(१) प्रस्तावना—शिक्षा का उद्देश्य
(२) शिक्षा और शरीर
(३) शिक्षा और मानसिक विकास
(४) शिक्षा और आचरण
(५) शिक्षा से ज्ञान-प्राप्ति
(६) शिक्षा और सार्वजनिक जीवन
(७) शिक्षा और रोटी की समस्या
(८) उपसंहार—सारांश

हरबर्ट स्पेंसर नामक एक अङ्गरेज दार्शनिक ने कहा है—To prepare us for complete living is the function which education has to discharge अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य हमें पूर्ण जीवन (व्यक्तिगत और सामाजिक) के लिए तैयार करना है। सचमुच शिक्षा मनुष्य को जीवन-संग्राम के लिए तैयार करती है। वह मनुष्य की सुषुप्ति शक्तियों को जाग्रत करती है और उनका विकास करती है। मनुष्य को ईश्वर ने तीन प्रधान शक्तियाँ दी हैं—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। इन तीनों शक्तियों के विकास में ही जीवन की सफलता है। इन तीनों में से किसी की भी हम अवहेलना नहीं कर सकते। जीवन में पद-पद पर इन तीनों की आवश्यकता होती है।

पहले शरीर को लीजिए, जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ नहीं, जो मनुष्य नीरोग नहीं, वह जीवन में क्या कर सकता है ? उसके लिये जीवन भार-स्वरूप है। जीवन को सुखी बनाने के लिये शरीर-रक्षा और व्यायाम नितान्त आवश्यक है। अतः व्यायाम शिक्षा का एक अंग बना दिया है। ऐसा कोई शिक्षा-केन्द्र न होगा जहाँ विद्यार्थियों के लिए कुछ न कुछ व्यायाम का प्रबन्ध न हो। प्रत्येक विद्यालय में लड़कों को खेल-कूद कराये जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को खेलों में भाग लेना अनिवार्य है। जो विद्यार्थी खेलों में भाग नहीं लेता उसे दण्ड का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार शिक्षा विद्यार्थियों को पुष्ट और सबल बनाकर उन्हें जीवन के लिये तैयार करती है।

शिक्षा से मानसिक विकास भी होता है। यह वह साधन है जिससे मस्तिष्क प्रौढ़ और सशक्त होजाता है। जीवन में प्रौढ़ मस्तिष्क की कितनी आवश्यकता है, यह सभी जानते हैं। वह व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण करता है। जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए उसकी बड़ी आवश्यकता होती है। वह मनुष्य को शांति और आनन्द प्रदान करता है। उसी के द्वारा किसी बात को ठीक तरह सोचा और समझा जाता है। वही कठिन से कठिन परिस्थिति और दुःखपूर्ण वातावरण में सच्चे मित्र की

भाँति सहायता करता है। वही संसार में ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैलाता है। वही सत्य का अन्वेषण करता है। शिक्षा विविध विषयों की पढ़ाई द्वारा मस्तिष्क का विकास करती है।

जीवन में शरीर और मस्तिष्क से भी बढ़कर आचरण का महत्त्व है। जिसमें आत्मिक बल होता है, जिसका आचरण शुद्ध होता है वह स्वावलम्बी होता है, संसार में उसी का सम्मान होता है। आचरण की पवित्रता से भिखारी भी राजाओं के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है। महात्मा गाँधी को लीजिये, यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसने उनको संसार-भर में पूज्य बनाया था, जिसने उनको झोंपड़ी से लेकर महल तक प्रतिष्ठित किया था, तो वह उनका श्रेष्ठ आचरण था। आचरण को खो देने पर जीवन में कुछ भी नहीं रह जाता। कहा भी है—'When character is lost every thing is lost' अर्थात् आचरण के नष्ट हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। शिक्षा इस महत्त्वपूर्ण वस्तु की प्राप्ति कराती है। यह आचरण के बीज को मानव-हृदय में बोती है। यह सिखाती है कि मनुष्य को अपने माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिये, बड़ों का आदर करना चाहिये, भाई बहिनों से स्नेह करना चाहिये, सत्य बोलना चाहिए और जीवों पर दया करनी चाहिये। इसी प्रकार की अनेक आचरण-सम्बन्धी बातों का भण्डार पाठ्य-पुस्तकों में रहता है।

शिक्षा से मनुष्य को ज्ञान मिलता है। स्कूल में नाना प्रकार के विषयों के अध्ययन से अनेक बातों का ज्ञान होता है। पुस्तकों को पढ़ पढ़कर बड़े-बड़े विद्वानों के विचार मालूम हो जाते हैं, स्थान या समय इस कार्य में कोई बाधा उपस्थित नहीं करते। इङ्गलैंड के विद्वानों का वैसा ही परिचय हो सकता है जैसा भारतवर्ष के किसी विद्वान् का। वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी आदि विद्वानों से उसी प्रकार बातचीत कर सकते हैं जिस प्रकार अपने समय के किसी विद्वान से।

शिक्षा से व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त सार्वजनिक जीवन भी

प्रभावित होता है। शिक्षित मनुष्य सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खण्डन करते हैं। वे समाज का हित करने वाली बातों का प्रचार करते हैं। जिन देशों में शिक्षा का सर्वत्र प्रचार नहीं है वहाँ के निवासी पुरानी लकीर के फकीर बने हुए हैं। भारतवर्ष को ही लीजिए। यहाँ के निवासी शिक्षा की कमी के कारण अन्धविश्वासी और प्राचीन कुरीतियों के भक्त हैं। हाँ, इधर कुछ दिनों से शिक्षा के प्रचार से यहाँ समाज की दशा सुधारी जा रही है। शिक्षा से जापान ने कितनी शीघ्र उन्नति करली है। केवल २५ वर्षों में जापान की काया पलट गई है। घर की चहार-दीवार में बन्द रहने वाली स्त्रियाँ आज वहाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर कार्य करती हैं। कई कुप्रथाओं का आज वहाँ नाम-निशान भी नहीं रह गया है। इस प्रकार शिक्षा देश की, समाज की उन्नति करती है। उससे सभ्यता भी आगे बढ़ती है।

पर क्या रोटी की समस्या जो जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। शिक्षा द्वारा हल होती है? क्या जीविका के उपार्जन में शिक्षा कुछ सहायता देती है? क्या पेट की ज्वाला को शांत करने में उसका कुछ हाथ है? अवश्य, सच्ची शिक्षा जहाँ मस्तिष्क और हृदय की भूख मिटाती है वहाँ पेट की क्षुधा भी दूर करती है। हमारे देश की शिक्षा इस दृष्टि से अच्छी शिक्षा नहीं, क्योंकि इससे विद्यार्थी को रोटी की समस्या हल करने का कोई साधन नहीं मिलता। इसलिए शिक्षितों में आजकल इतनी हलचल है। जापान आदि देशों की शिक्षा में कुछ न कुछ उद्योग-धन्धे सिखाने का प्रबन्ध है जिससे शिक्षित को जीविका की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। इधर कुछ दिनों से हमारे यहाँ भी इसी प्रकार की शिक्षा का सूत्रपात हुआ है। उत्तर प्रदेश में इसे बेसिक-शिक्षा कहा जाता है। इसका मेरुदण्ड हस्तकला है।

सारांश यह है कि शिक्षा सब प्रकार से मनुष्य को जीवन-यात्रा के लिए तैयार करती है। वह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों को विकसित करके उसे सुख और शान्ति का

मार्ग प्रदर्शित करती है। शिक्षा का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। वह जीवन को सदैव प्रभावित करती रहती है।

स्वदेश-प्रेम

(१) प्रस्तावना—स्वदेश की महानता
(२) स्वदेश-प्रेम की स्वाभाविकता
(३) स्वदेश-प्रेम द्वारा देश की उन्नति
(४) स्वदेश के प्रति हमारा कर्त्तव्य
(५) हमारे देश की कुछ स्वदेश-प्रेमी आत्माएँ
(६) उपसंहार—हमें स्वदेश प्रेमी होना चाहिए

'जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥"

निःसन्देह स्वदेश-प्रेम से विहीन मनुष्यों का हृदय पत्थर के समान होता है। अहा! जननी और जन्म-भूमि कितनी महान् वस्तुएँ हैं जिस माता के गर्भ से हम उत्पन्न हुये हैं और जिस देश में हम पालित-पोषित हुए हैं उससे बढ़कर क्या स्वर्ग भी हो सकता है? कदापि नहीं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के अनुसार जननी और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से कहीं श्रेष्ठ है। जिस देश की धूल में लोट-लोटकर हम बड़े हुए हैं, जिस देश की जलवायु तथा अन्न से हमारे शरीर से विकास हुआ है, क्या उस देश से हम कभी उऋण हो सकते हैं? कभी नहीं। प्रत्येक मनुष्य अपनी माता और मातृ-भूमि का आजन्म ऋणी रहता है।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जहाँ मनुष्य रहता है उस स्थान को प्यार करता है। मनुष्य ही क्यों, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों तक में यह बात देखी जाती है। गाय दिन-भर जंगल में घूमकर सायंकाल स्वयं अपने खूँटे पर आ-खड़ी होती है। घोड़ा छूट कर

अपनी घुड़साल में पहुँचता है। पक्षी दिन भर कोसों का चक्कर काट कर शाम को अपने घोंसलों में आ जाते हैं। पेड़-पौधे भी अपनी जन्मभूमि में जैसे फूलते-फलते हैं वैसे अन्य स्थानों में नहीं। मातृ-भूमि का वियोग उन्हें अन्य स्थानों में सदैव अखरता है। चमन के अंगूर और इलाहाबाद के अमरूद, आगरे में वहाँ के से फल नहीं देते। अपना बुरे से बुरा देश भी वहाँ के निवासियों को प्यारा होता है। सहारा के रहने वालों को स्विटजरलैंड में रहना अच्छा नहीं लगेगा। परन्तु इस प्रेम की मात्रा किसी में अधिक होती है और किसी में कम। कोई स्वदेश को इतना प्यार करता है कि उस पर अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकता है और कोई इतना कम कि थोड़ा-सा भय, स्वार्थ या आपत्ति उसके स्वदेश-प्रेम को नष्ट कर देती है। पश्चिम वालों में पहले प्रकार का प्रेम देखा जाता है और भारत-वासियों में अधिकांश दूसरे प्रकार का।

देश की उन्नति के लिए स्वदेश-प्रेम का आधिक्य नितान्त आवश्यक है। उसी देश का अभ्युत्थान हो सकता है जिसके निवासी देश पर तन, मन; और धन न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं; देश के अभ्युदय में अपना अभ्युदय समझते हैं, देश के सुख में अपना सुख समझते हैं, देश की शान्ति में अपनी शान्ति गिनते हैं, देश के दुःख में अपना दुःख गिनते हैं, देश के नाम में अपना नाम समझते हैं; और देश की समृद्धि में अपनी समृद्धि समझते हैं। वह देश अपना सर ऊँचा कर सकता है जहाँ के स्त्री, पुरुष, बालक, युवक और वृद्ध सभी स्वदेश के मंगलार्थ अपने हितों का ही नहीं शरीर का भी बलिदान चढ़ाने को उद्यत रहते हैं। संसार के कई देश जो आज सुख और समृद्धि के शिखरों पर चढ़े हुए हैं, स्वदेश-प्रेम की प्रचुरता के कारण ही इतने ऊँचे उठे हैं। इङ्गलैंड, जापान, जर्मनी आदि के इतिहास देश-प्रेम की कहानियों से भरे पड़े हैं।

भारतवर्ष की अवनति का कारण यहाँ के निवासियों में स्वदेश-प्रेम की भावना की कमी है। यहाँ देश का किसे ध्यान है? हम सबको अपनी-अपनी पड़ी है। हम सभी अपने-अपने स्वार्थ में संलग्न

हैं। देश के हित के लिए कोई थोड़ा-सा भी बलिदान नहीं कर सकता। ऐसी नीचता के लिए हमें धिक्कार है! क्या यह हमारे लिये लज्जा की बात नहीं कि हम अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते? जिस देश के अन्न को खाकर हम पुष्ट होते हैं उसके उत्थान के लिये सदैव प्रयत्नशील होना चाहिए और उसकी दशा सुधारने के लिए हमें स्वार्थ की तनिक भी परवाह नहीं करनी चाहिए।

हर्ष का विषय है कि सौभाग्य से यहाँ कुछ देश-प्रेमी आत्माओं का आविर्भाव हुआ है। यद्यपि हमारे देश में प्राचीन काल में भी समय-समय पर छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप, गुरू गोविन्दसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई; और लोकमान्य तिलक सरीखी देश-प्रेमी आत्माओं ने जन्म लिया, तो भी देश में उनकी संख्या बहुत थोड़ी रही। इसीलिए कुछ विशेष उन्नति नहीं हो सकी। आधुनिक काल में स्वर्गीय महात्मा गाँधी, श्री जवाहरलाल नेहरू आदि कई ऐसे देश-भक्त महानुभाव उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व भारतमाता के चरणों में अर्पण कर दिया। इन भारत-माता के पुजारियों ने हमारे देश की दशा में महान् परिवर्तन कर दिया है। देश में चारों ओर जाग्रति हो गई है। इनकी तपस्या और बलिदान के कारण देश के बच्चे-बच्चे के हृदय में देश-प्रेम की लहरें उठने लगी हैं। धन्य! इन महान् आत्माओं को, जिन्होंने भारतीय जनता में देश-प्रेम का मोहन-मन्त्र फूँक दिया है।

हमें चाहिए इनका आदर्श सामने रख कर हम भी देश-सेवा में संलग्न हो जायें। हमें चाहिए कि इनके कार्य में हाथ बटावें। हमें चाहिए कि अपने हितों को, अपने स्वार्थों को, देश के हितों पर न्यौछावर करके तन, मन; और धन के उसका हित-साधन करें। तभी हमारे देश का कल्याण होगा, तभी हमारा देश उन्नति के मार्ग में अग्रसर होगा, तभी हमारे देश के दुःख दूर होंगे। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम मृतकों के समान हैं। देश के लिए हम भार-स्वरूप

हैं। किसी ने ठीक कहा है—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है॥"

सत्संग

(१) प्रस्तावना—सत्संग का महत्त्व
(२) सत्संग के भेद
(३) सत्संग से लाभ
(क) आत्म-संस्कार, (ख) सुख, (ग) सान्त्वना, (घ) ज्ञान-वृद्धि
(४) उपसंहार—सारांश

ईश्वर की इस अद्भुत सृष्टि में उत्थान के अनेक साधन हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि हम उन साधनों की खोज करें और उनके अनुसार उत्थान-पथ के पथिक बनें। सत्संग उन साधनोंमें से एक है। इसका जितना गुण-गान किया जाय थोड़ा है। पारस पत्थर लोहे को सोना बना देता है। यह किसका प्रताप है ? सत्संग का। रामचन्द्रजी के सत्संग से रीछ-वानर भी पवित्र होगये थे, कोल-भीलों ने पाप-कर्म छोड़ दिया था, राक्षस विभीषण सुकृतियों का शिरोमणि बन गया था।

सत्संग मनुष्यों का हो सकता है अथवा पुस्तकों का। श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ उठना बैठना, चलना-फिरना, बातचीत आदि करना और उत्तम पुस्तकों का अध्ययन सत्संग कहलाता है। मनुष्य के सत्संग से जो लाभ होते हैं वे पुस्तकों के सत्संग से भी सम्भव हैं। अन्तर इतना है कि पहले में सजीवता होने के कारण प्रभाव शीघ्र एवं स्थायी पड़ता है।

सत्संग से अनेक लाभ हैं। आत्म-संस्कार के लिए सत्संग से सरल और श्रेष्ठ साधन दूसरा नहीं। कैसा ही दुष्ट क्यों न हो, कैसा ही पापी क्यों न हो, कैसा ही दुराचारी क्यों न हो, सच्चरित्र व्यक्ति के सम्पर्क में आकर सुधरे बिना नहीं रह सकता। सत्संग ऐसा जादू डालता है कि मनुष्य की आत्मा आप-से-आप शुद्ध होने लगती है।

गाँधीजी के सम्पर्क में आकर न जाने कितने लोग सुधर गये, न जाने कितने लोगों ने अपना उद्धार किया। व्यक्ति का ही नहीं, पुस्तक का भी सत्संग आत्म-संस्कार के लिए अच्छा साधन है। इस कार्य में महापुरुषों के जीवन-चरित्र विशेष लाभप्रद होते हैं। उनके स्वाध्याय से मनुष्य सत्कार्यों में प्रवृत्त होता है। अपनी जीवन-नौका को उन्हीं की ओर मोड़ता है। गोस्वामीजी की रामायण में राम का आदर्श जीवन-चरित्र पढ़ कर न जाने कितने भव-सागर में डूबने से बच गए, न जाने कितनों ने कुमार्ग से पैर हटा लिया, न जाने कितने पाप करने से विमुख होगये, और न जाने कितने सीधे स्वर्ग को चले गये।

जीवन में सुख पाने के लिये भी सत्संग कम आवश्यक नहीं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदैव समाज में रहना चाहता है। जीवन-यात्रा के लिए वह कुछ साथी चुन लेता है, जिनके साथ रह कर वह अपने दिन काटता है। यदि उसने गलती से बुरे साथी चुन लिए तो उसका जीवन दुःखी हो जायगा। यदि भाग्यवश उसे श्रेष्ठ सङ्गी मिल गये तो उसका जीवन सरस और मीठा हो जायगा। उनसे उसे सर्वदा सहायता मिलेगी। उनकी सम्मति से उसका हित होगा। उसके दुःख को वे हल्का करेंगे। निराशा के समय वे उसे उत्साहित करेंगे। तुलसीदासजी ने ठीक कहा है—

> "तुलसी संगत साधु की हरै और की व्याधि।
> ओछी संगति क्रूर की आठों पहर उपाधि॥"

उत्तम साथियों तथा मित्रों के संसर्ग से आमोद-प्रमोद भी मिलता है। उनके साथ खेल-कूद करके और गपशप उड़ाकर मन बहलता है।

सत्संग से सान्त्वना भी मिलती है। आप दुःख के समुद्र में निमग्न हैं। आपका जीवन निराशापूर्ण है। संसार आपके लिए अन्धकारमय हो गया है। ऐसे समय आपका साथी आपके आँसू

पोंछेगा। आपको ढाँढस बँधायेगा। आपमें आशा का संचार करेगा। जब आपका जी टूट गया है और शक्तियाँ शिथिल पड़ गई हैं तब ये पंक्तियाँ आपको कितनी शान्ति देंगी—

"हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरिनाम।
जाहि विधि राखै राम ताहि विधि रहिए॥"

ज्ञान-वृद्धि में भी सत्संग बहुत सहायता देता है। यदि हम पुस्तकों के सत्संग में रहते हैं, यदि हमारे कमरे में एक ओर तुलसी सूर, कबीर और जायसी विराजे हुए हैं और दूसरी ओर वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति, तो हम इनसे चाहे जब वार्तालाप कर सकते हैं और इनके विचारों से अपने ज्ञान के भण्डार को बढ़ा सकते हैं। पुस्तकों का सत्संग हमारे लिए समय या स्थान की बाधा उपस्थित नहीं करता। आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व के विद्वान् के साथ हम उसी प्रकार विचार-विनिमय कर सकते हैं जिस प्रकार आज-कल के किसी विद्वान् के साथ। इङ्गलैंड या अमेरिका में बैठे हुए महानुभावों की संगति का उसी प्रकार लाभ उठा सकते हैं जिस प्रकार अपने पास बैठे हुए किसी व्यक्ति की संगति का। पुस्तकों के अतिरिक्त हम अपने मित्रों से भी बहुत सीखते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सत्संग एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। इससे मनुष्य का बहुत हित होता है। गंदे से गंदा और कलुषित से कलुषित जीवन भी सत्संग के प्रसाद से पवित्र हो जाता है और उसमें सुख का संचार हो जाता है। वस्तुतः संसार की ही कोई वस्तु क्यों, स्वर्ग की भी कोई वस्तु सत्संग की समानता नहीं कर सकती। गोस्वामीजी ने सत्संग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए ठीक ही कहा है—

"सकल स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥"

मनुष्य-जीवन में परिश्रम का महत्त्व

(१) प्रस्तावना—परिश्रम की आवश्यकता
(२) जीवन में परिश्रम का महत्व
 (क) परिश्रम से उन्नति, (ख) परिश्रम से सुख और शान्ति, (ग) परिश्रम से आत्मसंस्कार, (घ) परिश्रम से यश
(३) कुछ परिश्रमी व्यक्तियों के उदाहरण
(४) उपसंहार—हमें परिश्रमी होना चाहिए

कोई कार्य बिना हाथ-पैर हिलाए नहीं हो सकता। आप चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों, आपको कुछ न कुछ परिश्रम करना ही पड़ेगा। मान लीजिए, आपके पास बहुत अधिक धन है। आपने अपने कार्यों को कराने के लिये अनेक नौकर रख छोड़े हैं, जिससे आपको उठने-बैठने का भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। पर आपको भोजन करने के लिए तो हाथी हलाने और दाँत चलाने ही पड़ेंगे। विचार प्रकट करने के लिए भी मुँह को परिश्रम करना ही पड़ेगा। वास्तव में संसार में छोटे-बड़े, धनी-निर्धन—सभी को थोड़ा या बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कुछ लोग, जो परिश्रम से जी चुराते हैं कह दिया करते हैं—

"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥"

ठीक है, अजगर को नौकरी नहीं करनी पड़ती और पक्षी को काम नहीं करना पड़ता। पर क्या ये जीव परिश्रम नहीं करते? क्या अपने भोजन की खोज में इधर-उधर नहीं फिरते? पक्षियों को देखिए अपने भक्ष्य की तलाश में न जाने कहाँ-कहाँ फिरते हैं। अजगर भी अधिक नहीं तो थोड़ा परिश्रम अपने भोजन की खोज में करते ही होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में परिश्रम अनिवार्य है। कोई भी बिना परिश्रम के अपना पेट नहीं भर सकता।

मानव-जीवन में परिश्रम का कितना महत्त्व है, इसे सभी जानते हैं। सभी प्रकार की उन्नति का मूल परिश्रम है। संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जो उसके द्वारा न हो सके? कैसा ही कठिन कार्य

क्यों न हो परिश्रम से वह सरल हो जाता है। कुएँ का कठोर पत्थर भी मिट्टी की मुलायम गगरी अथवा रस्सी से घिस जाता है। जो व्यक्ति परिश्रमी होता है वह शीघ्र उन्नति कर जाता है। जो विद्यार्थी मन लगा कर परिश्रम से विद्याध्ययन करता है वह परीक्षा में प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होता है। उसे छात्रवृत्ति मिलती है। वह पुरस्कार पाता है। उच्च से उच्च शिक्षा पाकर या तो वह किसी अच्छे सरकारी पद पर पहुँच जाता है या स्वतंत्र जीवन व्यतीत करता हुआ देश और समाज का भला करता है। बोपदेव, ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर, स्वामी रामतीर्थ; और कालिदास इसी प्रकार के मनुष्य थे। जो आज बीस रुपये मासिक का नौकर है, वह परिश्रम के बल से कभी सौ रुपये मासिक तक पहुँच सकता है। जो आज दस रुपये का सामान खरीद कर दुकान लगाता है, वह मेहनत करके कभी एक हजार रुपये की पूँजी कमा सकता है। बिना परिश्रम के कुछ भी उन्नति सम्भव नहीं।

उन्नति के साथ-साथ परिश्रम करने से मनुष्य को सुख भी मिलता है। जब किसी कार्य में परिश्रम द्वारा सफलता मिलती है तब हृदय उल्लास से भर जाता है, यदि और सफलता नहीं भी मिलती तो इस बात का संतोष रहता है कि हमने अपना कर्त्तव्य किया और परिश्रम से मुख नहीं मोड़ा। इससे शान्ति मिलती है। परिश्रमी व्यक्ति का जीवन सुखी रहता है। उसे न तो रोटी की समस्या सताती है और न वस्त्रों की। जो अकर्मण्य होता है, जो मेहनत नहीं करता, उसे सदैव भोजन-वस्त्र की चिन्ता रहती है और उसके चित्त में अशान्ति रहती है। वह न तो अपना भला कर सकता है और न समाज का। समाज के लिए वह भार-स्वरूप होता है।

जो मनुष्य सदा कठिन परिश्रम में संलग्न रहता है उसकी आत्मा उस परिश्रम से उसी प्रकार पवित्र हो जाती है जिस प्रकार ईश्वर आराधना से 'Work is Worship' के अनुसार परिश्रम ईश्वर की उपासना है। परिश्रमी रूपी अग्नि में मनुष्य की बुरी भावनाएँ जल जाती हैं और वह कंचन-सा शुद्ध हो जाता है। जो मेह-

नत नहीं करता और अकर्मण्य बना रहता है स्वतः दुराचार की ओर प्रवृत्त होता है। किसी ने ठीक कहा है—"An empty mind is a Devil's workshop' अर्थात् शून्य मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला है।

उद्यमी मनुष्य की संसार में प्रशंसा होती है। मृत्यु के पश्चात् भी उसका यश बना रहता है। सब लोग उसका आदर करते हैं। माता-पिता अपने बालकों को उसका अनुसरण करने की शिक्षा देते हैं। वह देश और जाति का मुख उज्ज्वल करता है। मनुष्य ही को नहीं परिश्रम से क्षुद्र जीव तक को यश मिलता है। चींटी को ही लीजिये। लोग उसकी मेहनत को सराहते हैं और हाथ पर हाथ रखे हुए मनुष्य से कहते हैं—'अरे आलसी! चींटी से परिश्रम करना सीख।'

संसार में अनेक मेहनती मनुष्य हुए हैं जिनकी यशचन्द्रिका आज तक विश्व में छिटकी हुई है। छत्रपति शिवाजी ने कैसे कठिन परिश्रम से हिन्दू जाति की रक्षा की। नैपोलियन ने दिन-रात घोड़े की पीठपर रहकर बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त कीं। रैमजे मैकडॉनल्ड जो एक गरीब मजदूर था, परिश्रम के बलसे इङ्गलैंड का प्रधानमंत्री बन गया। हमारे देश में महात्मा गाँधी ने देश के उद्धार के लिए कैसा घोर परिश्रम किया। उन्हें न भूख की परवाह थी और न नींद की। रात-रात भर जाग कर उन्होंने देश की समस्याओं पर विचार किया। श्री जवाहरलाल नेहरू भी बड़े मेहनती हैं। गत चुनाव में उन्होंने एक-एक दिन में ५०-५० सभाओं में भाषण दिए और सैकड़ों मीलों की यात्रा की। महामना मालवीय जी ने परिश्रम कर के काशी विश्वविद्यालय जैसे विशाल विद्या-मंदिर की स्थापना की।

इन लोगों के उदाहरण से हमे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परिश्रमी बन कर हम अपना, अपनी जाति का, अपने देश का कल्याण कर सकते हैं। परिश्रमी होकर हम इस लोक और परलोक दोनों में सुख और शान्ति पा सकते हैं। मेहनत द्वारा दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाती है और आलस्य से सुलभ से सुलभ वस्तु भी

दुर्लभ हो जाती है। परिश्रम जीवन है, आलस्य मरण है। जहाँ परिश्रम है वहाँ सुख है; जहाँ आलस्य है वहाँ दुःख। परिश्रम से हमारी शोभा है, परिश्रम से ही हमारे जीवन का साफल्य है-इसमें सन्देह नहीं। किसी ने ठीक कहा है—

"श्रम ही सों सब मिलत है, बिनु श्रम मिले न काहि।"

कृषि-कर्म का महत्त्व

(१) प्रस्तावना—जीवधारियों की सबसे बड़ी आवश्यकता; आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्यों के कार्य।

(२) कृषि कर्म का महत्त्व—

(क) कृषि में पशु, पक्षी और मनुष्य-जाति का भरण-पोषण,
(ख) कृषि से शरीर की पुष्टता, (ग) कृषि से मनोरंजन,
(घ) कृषि-कर्म की स्वतन्त्रता, (ङ) कृषि-कर्म द्वारा जीवन की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति।

(३) उपसंहार—सारांश

समस्त जीवधारियों की सबसे बड़ी आवश्यकता पेट-सम्बन्धी है। थलचर, जलचर, और नभचर सभी को पेट भरने के लिए कुछ न-कुछ खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता होती है। यदि चौपायोंका घास से पेट भरता है; तो हिंस्र पशुओं का मांस से। यदि कुछ पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं, तो कुछ अनाज के दाने। यदि जल में रहने वाले जीव केवल मांस का भक्षण करते हैं तो मनुष्य अनाज और मांस दोनों का। मनुष्य अपने पेट भरने के लिए कई प्रकार के कार्य करते हैं। कोई मजदूरी करता है, कोई व्यापार करता है, कोई हस्तकला से वस्तुओं का निर्माण करता है; और कोई अपने को कृषि-कार्य में लगाता है। इन सब कार्यों में खेती का कार्य श्रेष्ठतम है। उसी का सबसे अधिक महत्त्व है।

सार्वजनिक हित की दृष्टि से संसार का कोई भी कार्य खेती की समानता नहीं कर सकता। इससे केवल मनुष्यों का ही पेट नहीं भरता, यह केवल मनुष्यों के भरण-पोषण के लिए ही अनाज नहीं

देती, बल्कि पशु और पत्ती भी इससे पलते हैं। खेती—सचमुच मनुष्य मात्र की अन्नदाता और पत्तियों की पालिका है। गेहूँ, चना, जौ, ज्वार, बाजरा, चावल आदि सब अनाज खेती द्वार उत्पन्न होते हैं। अनाज के पौधों से मवेशियों के लिए चारा बनता है। खड़ी हुई खेती में से पत्ती दाने चुग-चुग कर अपनी क्षुधा-निवृत्ति करते हैं। सचमुच कृषि-कर्म से बड़ा उपकार होता है। यदि खेती न की जाय तो मनुष्य भूखे मर जायँ। कैसे अनाज मिले और कैसे उनका पेट-पालन हो ?

संसार में जितने व्यापार प्रचलित हैं उनमें स्वास्थ्य की दृष्टि से खेती का सर्वोच्च स्थान है। खेती करने वाला किसान जितना हृष्ट-पुष्ट देखा जाता है उतना व्यापार करनेवाला अथवा मजदूरी करने वाला व्यक्ति नहीं। किसान का शरीर जितना पुष्ट तथा बलिष्ठ होता है उतना कुर्सी पर बैठकर काम करने वाले क्लर्क अथवा शिल्पकार का नहीं। क्यों ? कारण यह है कि कृषक को कठिन परिश्रम करना पड़ता है और साँस लेने को खुले मैदान की स्वच्छ वायु मिलती है। किसान से अधिक कड़ा परिश्रम कौन करता होगा ? पौ फटने के समय से लेकर सूर्यास्त तक वह किसी न किसी काम में जुटा ही रहता है। उसे भूख-प्यास की चिन्ता नहीं रहती। उसे ग्रीष्म की तपन की, शीत के कसालों की, लू के थपेड़ों की; और वर्षा की झड़ियों की तनिक भी परवाह नहीं। व्यापारी को कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता। श्रमजीवी को मेहनत तो कड़ी करनी पड़ती है पर उसे कारखाने की दूषित वायु में रहना पड़ता है। क्लर्क को शारीरिक परिश्रम नाममात्र को भी नहीं करना पड़ता और हवा भी अच्छी नहीं मिलती। शिल्पकार भी किसान की बराबर कड़ी मेहनत नहीं करता।

कृषि किसान का मनोरंजन करती है। किसान को लहलहाते हुए खेत अपूर्व आनन्द प्रदान करते हैं। उसे हरी-भरी वनस्थली में कभी कोयल की कूक सुनने को मिलती है, तो कभी चातक की पिउ-पिउ, उसे कभी बसन्त की मनोहर शोभा देखने को मिलती है, तो

कभी वर्षा-ऋतु की छटा। उसे कभी सरसों के पीले पुष्प देखकर आनन्द मिलता है, तो कभी अलसी के नीले फूल देखकर। वह कभी सूर्योदय की स्वर्ण-श्री को देखकर हर्ष से भर जाता है, तो कभी सूर्यास्त की लालिमा देखकर। पक्षियों का चहचहाना और वृक्षों का झूमना उसका मनोविनोद करते हैं उसे प्रकृति की मनोरम और आनन्ददायक गोद में रहने का सौभाग्य मिलता है। क्या ऐसा आनन्द किसी अन्य व्यवसायी को सम्भव है ?

कृषि का व्यवसाय एक स्वतन्त्र व्यवसाय है। इसमें किसी के पराधीन होकर नहीं रहना पड़ता। इच्छा हो, जब जैसा रुचे वैसा काम कीजिये। न कोई समय का बन्धन है और न कोई काम का। न कोई आपके काम की देख-रेख रखने वाला है और न कोई आपको रोक-टोक करने वाला। पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। कौन पूछता है, गेहूँ बोए या जौ ? कौन कहता है रबी और खरीफ दोनों फसल उगाइए, अथवा केवल एक ? नौकरी का काम पूर्णतया परतन्त्र है। जैसा मालिक कहता है वैसा नौकर को करना पड़ता है। जिस सयय की ड्यूटी होती है उसी समय उपस्थित होना पड़ता है। यह कहना अनुचित न होगा कि नौकर का शरीर मालिक के हाथ बिक सा जाता है।

कृषि-कर्म द्वारा जीवन की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। किसान खेती से अनाज उत्पन्न करके भोजन की समस्या हल करता ही है, कपड़ों की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है। वह कपास की फसल लगाता है। उसकी स्त्री रहँटे द्वारा कपास से रूई निकालती है और चरखे से रूई को सूत में परिणित कर देती है। गाँव का जुलाहा सूत का कपड़ा बुन देता है। सकरकन्द, गाजर, मूली, मूँगफली आदि कन्द-मूल-फलों का किसान को अभाव नहीं रहता। दाल शाकों की उसके लिए कोई कमी नहीं। ये वस्तुएँ उसके खेतों में पैदा होकर केवल उसी की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करतीं वरन् अगणित मनुष्यों के खाने के काम में आती हैं। वह तिली और सरसों पैदा करके तेली से तेल निकलवा लेता है।

घी, दूध की आवश्यकता की पूर्ति उसकी गाय, भैंस करती है जिनका पालन खेती के चारे से होता है। धनिया, जीरा, सौंफ, मिर्च आदि मसाले भी खेती से मिल जाते हैं। तात्पर्य यह है कि खेती से बहुत-सी-आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

अतः स्पष्ट है कि कृषि-कर्म का अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक महत्त्व है। इससे संसार का भरण-पोषण होता है, शरीर पुष्ट बनता है, मन को आनन्द मिलता है, मनुष्य स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है और जीवन की अनेक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। वस्तुतः खेती का व्यवसाय सर्वोत्कृष्ट है। किसी ने ठीक ही कहा है—

"उत्तम खेती मध्म बनिज, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।"

मित्र के कर्त्तव्य

(१) प्रस्तावना—मित्र की आवश्यकता

(२) मित्र के कर्त्तव्य

(क) दुःख में मित्र की सहायता करना, (ख) मित्र को सन्मार्ग पर चलाना, (ग) मित्र को दुःख के समय सान्त्वना देना और उसके साथ सहानुभूति दिखलाना, (घ) मित्र का हित करना

(३) सुदामा और कृष्णजी की मित्रता का उदाहरण

(४) उपसंहार—आजकल के मित्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से कभी पृथक् नहीं रहना चाहता। जीवन में उसे कुछ-न-कुछ साथियों की, कुछ-न-कुछ मित्रों की आवश्यकता होती है। मनुष्य का ही क्यों, पशु और पक्षी को भी साथियों की आवश्यकता होती है। पशु प्रायः टोलियों में रहते हैं। पक्षी भी झुण्ड बनाकर रहते हैं। वास्तव में मित्रों से जीवन में मिठास आ जाता है। जीवन भार-स्वरूप नहीं प्रतीत होता। मित्रों के संग गप-शप लड़ाकर मन बहलता है। मित्रों के साथ घूम-फिर-कर चित्त प्रसन्न होता है।

पर मन बहलाना या तबियत प्रसन्न करना ही मित्र का काम नहीं। ये तो बहुत साधारण कार्य हैं। सिनेमा से ही इनका सम्पादन हो सकता है। मित्र के कर्त्तव्य बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। जब हम दुःख में डूबे हुए हों, जब हमारे लिए संसार में अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ हो, जब हमारे लिए संसार सूना हो गया हो तब मित्र का कर्त्तव्य है कि वह हमारी सहायता करे। जब दुःख से हमारे पैर लड़खड़ा जाते हों तब वह हमें गिरने से बचाए। गोस्वामीजी ने कहा भी है—

"धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपद काल परखिये चारी॥"

निस्सन्देह मित्र से दुःख में बड़ी सहायता मिल सकती है। उसे चाहिये कि वह तन, मन और धन से सहायता करे। यदि अपने मित्र के दुःख को दूर करने में उसे प्राण तक भी देने पड़ें तो भी वह सहर्ष दे दे। बतलाइए, इससे अधिक सहायता और क्या हो सकती है? सच्चे मित्र का यह कर्त्तव्य कितना ऊँचा है।

मित्र का यह भी कर्त्तव्य है कि वह हमें कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाये। यदि हम चोरी करते हैं या जुआ खेलते हैं या व्यभिचार करते हैं या लोगों को कष्ट पहुँचाते हैं तो मित्र को चाहिए कि वह उपदेश द्वारा हमें इन कुकर्मों से विमुख करे और सन्मार्ग पर चलने के लिए उत्साहित करे। इस दृष्टि से वह हमारा उद्धारक हो सकेगा। यदि हमारा मित्र हमें सुमार्ग पर न लाए बल्कि कुकर्मों के अन्ध कूप में ढकेल दे तो उससे हमारा क्या लाभ होगा? दोनों मित्रों को नरक का साथी बनना पड़ेगा। किसी विद्वान् ने कहा है कि विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा होती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिए कि खज़ाना मिल गया। सच्चा मित्र हमें उत्तम संकल्पों में दृढ़ करेगा, दोषों और त्रुटियों से बचाएगा और पवित्र तथा मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करने में हर तरह की सहायता देगा। वह हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक होगा। संसार में अनेक मनुष्यों को मित्रों ने कुमार्ग के

गड्ढे से निकालकर साधुता और श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचाया है।

मित्र को चाहिए कि वह दुःख के समय हमें सान्त्वना दे और हमारे साथ सहानुभूति दिखाए। हमारे दुःख-सुख को अपना दुःख सुख और हमारे हानि-लाभ को अपना हानि-लाभ समझे। जब हम दुःखी हों तब वह भी दुःख का अनुभव करे। जब हम सुखी हों तब वह भी फूला न समाए। मित्र का कर्त्तव्य है कि जब हम रो रहे हों तब हमारे आँसू पोंछे। जब हमारा जी टूट रहा हो तब हमें ढाँढस बँधाए। सदैव आश्वासन द्वारा हमारे दुःखों को हलका करता रहे। जब हम हताश हों तब हमें उत्साहित करे। सच्चा मित्र उत्तम वैद्य अथवा माता के सदृश होता है।

मित्र का यह भी कर्त्तव्य है कि वह सर्वदा हमारा हित करता रहे। हमारी कर्त्तव्य-बुद्धि को उत्तेजित करके हमें कर्यों में संलग्न रक्खे और कभी हाथ पर हाथ रखकर न बैठने दे। हमारे लिए व्यवसाय ढूँढ़े। हमारी आय की वृद्धि के साधन जुटाता रहे। कर्म-क्षेत्र में आप भी श्रेष्ठ बने और हमको भी श्रेष्ठ बनाए। जीवन के संग्राम में स्वयं वीरता से लड़े और हमें भी लड़ने के योग्य बनाए। हमारी उन्नति का मार्ग परिष्कृत करे। हमें ऐसे कार्यों में लगाए जिससे इस लोक में सुख और परलोक में शान्ति मिले। हमें समय-समय पर सुन्दर मन्त्रणा देता रहे और हमारे सुख तथा सौभाग्य की निरन्तर चिन्ता रक्खे।

भारतवर्ष के इतिहास में अनेक सच्चे मित्रों के उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण और सुदामा की मित्रता की कथा किसे न ज्ञात होगी? सहस्त्रों वर्ष व्यतीत होने पर भी उस आदर्श मित्रता के आज तक गुण गाए जाते हैं। कहाँ त्रिलोकीनाथ कृष्ण और कहाँ दाने-दाने को तरसने वाला सुदामा! आकाश और पाताल का अन्तर था, पर कृष्णजी ने अपनी महानता का गर्व न करके किस प्रेम से विपत्ति-ग्रस्त सुदामा की दशा से करुणार्द्र होकर उसकी सहायता की; उसे जानकर किसे न आनन्द होगा? किस के मुख से कृष्णजी के लिए धन्य-धन्य शब्द न निकलेंगे? कौन उस मित्रता

से उपदेश ग्रहण न करेगा। ? कौन यह न कहेगा कि मित्रता हो तो ऐसी हो ? देखिए मित्र के दुःख से कृष्णजी को कितना शोक हुआ—

"ऐसे बिहाल बिवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय! महादुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं नैनन के जल सों पग धोये ॥"

क्या आजकल कृष्ण और सुदामा सरीखे मित्र ढूँढ़ने से मिल सकते हैं ? आजकल तो स्वार्थी मित्र होते हैं जो सुख के समय हमसे लाभ उठाते हैं और दुःख के समय हमको छोड़कर अलग हो जाते हैं। जब तक हमारे पास पैसा रहता है तब तक मित्र हमारे साथ लगे रहते हैं और जब पैसा नहीं रहता तब वे हमसे मुख से भी नहीं बोलते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—

"हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥"

व्यवसाय का चुनाव

(१) प्रस्तावना— व्यवसाय के चुनाव की आवश्यकता
(२) आजकल व्यवसाय सम्बन्धी कठिनाई
(३) प्राचीन काल में व्यवसाय सम्बन्धी कठिनाई का अभाव
(४) उचित व्यवसाय के चुनाव से लाभ
(५) व्यवसाय के चुनाव में ध्यान रखने योग्य बातें
 (क) रुचि (ख) शारीरिक और मानसिक योग्यता
 (ग) नैतिक उत्थान (घ) आर्थिक उन्नति की सम्भावना
(६) उपसंहार—आजकल भारत में शिक्षा से पूर्व व्यवसाय न चुनने के दुष्परिणाम

रोटी की समस्या को हल करने के लिए प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ व्यवसाय चुनाना पड़ता है। यदि कोई मनुष्य कुछ काम न करे तो भला उसका पेट कैसे भरे ? उसे कौन रोटी दे ?

इसलिए जीवन में व्यवसाय का चुनना नितान्त आवश्यक है। कोई भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

आजकल व्यवसाय के चुनाव का प्रश्न दिन-प्रति-दिन जटिल होता जा रहा है। मनुष्यों को जीविका उपार्जन करने के लिए काम-काज मिलना कठिन हो रहा है। चारों ओर बेकारी का ताण्डव नृत्य हो रहा है, इसका कारण संसार में मशीनों का प्रचार है। मशीनों के बाहुल्य से न जाने कितने मनुष्यों की रोटियाँ छिन गई हैं और न जाने कितने उद्योग धन्धों की खोज में मारे-मारे फिरते हैं। आजकल हमारे देश में अनेक व्यक्ति हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं। वे अपने लिए इधर-उधर व्यवसाय ढूँढ़ते हैं, पर उन्हें कोई व्यवसाय नहीं मिलता। ऐसी दशा में बेचारे कहाँ जायँ और क्या करें।

प्राचीन समय में ऐसी दशा न थी। किसी मनुष्य को कोई व्यवसाय-सम्बन्धी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। सब अपनी-अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार अपने लिए व्यवसाय चुन लिया करते थे। कोई खेती करता था तो कोई व्यापार। कोई दस्तकारी का काम करता था तो कोई मजदूरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। मशीनों का प्रचार न होने के कारण सब को कुछ-न-कुछ काम करने को मिल जाता था। सभी थोड़ा-थोड़ा काम कर के अपनी उदर-पूर्ति करते थे, आजकल एक मशीन ही अनेकों मनुष्यों के बराबर काम कर डालती है और इस प्रकार बहुतों को बेकार कर देती है।

आजकल व्यवसायों की तो कमी देखी जाती है, पर यह भी देखा जाता है कि अधिकांश लोग उचित व्यवसाय नहीं चुनते। कुछ लोगों को परिस्थिति वश ऐसे व्यवसाय चुनने पड़ते हैं जो उनके लिए किसी प्रकार उपयुक्त नहीं होते। कुछ लोग विना सोचे-बिचारे अनुपयुक्त व्यवसायों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि दोनों ही दशाओं में जीवन दुःखमय हो जाता है। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अनुरूप अपने लिये व्यवसाय निश्चित करे तो

इससे उसे बहुत लाभ हो। उसका जीवन सुखी और शान्तिमय हो जाय। वह बहुत कुछ उन्नति कर सके। संसार में उसका नाम और आदर हो। रवीन्द्रनाथ टैगोर को लीजिए। उन्होंने कवि बनकर देश-विदेश में कितना यश और प्रतिष्ठा प्राप्त की! आज संसार के श्रेष्ठ कवियों में उनका स्थान है। उनका जीवन भी शान्तिमय था। सी० वी० रमन ने विज्ञान के अध्यापक होकर कितनी ख्याति पाई है। इन्हें अपने इस व्यवसाय में बहुत आनन्द मिलता है। टैगोर और रमन ने आर्थिक दृष्टि से भी अपने उपयुक्त व्यवसाय के कारण पर्याप्त सफलता पाई, दोनों को ही विश्व-विख्यात बहुमूल्य 'नोबल-पुरस्कार' मिले। के० सी० डे०, सहगल और सुरैया ने संगीत को अपना व्यवसाय चुनकर कितना नाम पाया। किसी भी फिल्म में यदि इनमें से कोई गायक रहता है तो उसे लोग अगणित संख्या में देखते हैं।

अब हमें यह देखना है कि कौन-कौन ऐसी बातें हैं जिनका व्यवसाय चुनने में ध्यान रखना आवश्यक है। सबसे पहले रुचि का ध्यान रखना चाहिए। जिस कार्य की ओर आपकी प्रवृत्ति हो उसे अवश्य चुनिए, चाहे ऐसा करने में आपको कितनी ही कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े। वास्तव में जिस कार्य में रुचि होती है उसके करने से चित्त को शांति मिलती है और मनुष्य उन्नति कर सकता है। यदि किसी की प्रवृत्ति अध्यापन की ओर है तो उसे चाहिए कि वह अध्यापक बने। यदि किसी का मन चित्रकारी में लगता है तो उसे चाहिए कि वह चित्रकारी को ही अपने जीवन का व्यवसाय निश्चित करे।

रुचि के अतिरिक्त व्यवसाय के चुनाव में शारीरिक और मानसिक योग्यता का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि किसी में शारीरिक बल की कमी है तो उसे ऐसा काम कभी नहीं चुनना चाहिये जिसके करने में अधिक बल की आवश्यकता पड़े, जैसे—वह बोझा ढोने का कभी न करे। यही बात मानसिक योग्यता के बारे में कही जा सकती है। यदि किसी की बुद्धि कुशाग्र नहीं, यदि

किसी का मस्तिष्क अधिक अच्छा नहीं, तो उसे ऐसा काम कभी नहीं चुनना चाहिए जिसके करने में तीव्र बुद्धि अपेक्षित हो। जैसे—वह अध्यापन कार्य या वकालत न करे।

इस बात का ध्यान रहे कि जिस व्यवसाय को किया जाय उससे नैतिक उत्थान हो। चाहे कोई व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से कितना ही अच्छा क्यों न हो, यदि उससे मनुष्य का नैतिक पतन हो, यदि उससे चरित्र-भ्रष्टता की आशंका हो तो उसे दूर से ही नमस्कार करना अच्छा है। सदाचार जीवन का स्वर्ग है। सदाचार जीवन का सार है। सर्वस्व देकर भी हमें अपने आचरण को बनाना चाहिए। सारे विश्व की सम्पत्ति लेकर भी हमें अपना आचरण नहीं गिराना चाहिए। अतः चोरी करना, लूटना, जुआ खेलना, वेश्याकर्म आदि दुष्कर्म भूल कर भी नहीं करना चाहिए।

जहाँ तक हो ऐसा व्यवसाय चुना जाय जिसमें आगे चलकर आर्थिक उन्नति की सम्भावना हो। यदि आप किसी ऐसे व्यवसाय को चुनते हैं जिससे आज आपको बहुत कम आमदनी होती है पर कुछ समय पश्चात् उससे बहुत आमदनी होने की सम्भावना है तो आप ठीक करते हैं। व्यवसाय के आरम्भ में कम आय होना कोई चिन्ता की बात नहीं।

अन्त में यही कहना है कि माता-पिता को चाहिए कि बाल्यावस्था में बालक की प्रवृत्ति का पता लगा कर उसे उसी प्रकार के व्यवसाय के लिए शिक्षित करें। हमारे देश में यह बात नहीं देखी जाती। जहाँ कोई मनुष्य अपने बालक को पढ़ाने के पूर्व उसकी व्यवसाय सम्बन्धी मनोवृत्ति का अन्दाज लगाकर उसे उसी प्रकार की शिक्षा नहीं देता। सभी बिना सोचे-समझे पढ़ाए चले जाते हैं। सभी का उद्देश्य अपने लड़कों को नौकरी कराना होता है। ऐसा करने से बड़े अनर्थ होते हैं। बालक की यदि पढ़ने में रुचि नहीं होती तो भी उसको पढ़ना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि यह बेचारा बार-बार परीक्षा में फेल होता है और चारों ओर उसकी निन्दा होती है। उसको अपना जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होता है।

कभी-कभी तो वह निराश होकर अपने जीवन का अन्त तक कर देता है। यह कैसे मान लिया जाय कि सभी बालकों को पढ़ने में रुचि होती है। क्या अशिक्षित रहकर कोई व्यवसाय नहीं किया जा सकता ? क्या आजकल की शिक्षा व्यवसाय सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान कराती है ? यह देखा गया है कि कई बालक अनेक प्रयत्न करने पर भी न पढ़ सके। पीछे वे अच्छे चित्रकार, पत्रकार, संगीतज्ञ, कवि आदि हुए। क्या पता है कोई बालक जो बार-बार परीक्षाओं में असफल होता है शिल्पकार या व्यापारी बनने की अच्छी क्षमता रखता हो ? अतः स्पष्ट है कि यदि बचपन में बालक की रुचि देखकर उसी के अनुकूल कार्य में लगाया जाय तो उसे जीवन से पूर्ण सफलता मिले। आजकल की भाँति वह अपने जीवन में असफल न रहे। आजकल उच्च से उच्च शिक्षा पाकर भी मनुष्य उचित व्यवसाय नहीं पा सकता और बेकारी की समस्या का सामना करता है।

विद्या के प्रचार से देश की उन्नति

(१) प्रस्तावना—मानव-जीवन में विद्या की आवश्यकता
(२) विद्या के प्रचार से देश की उन्नति—
(क) मानसिक विकास (ख) जाग्रति (ग) ज्ञान-वृद्धि
(घ) कुरीतियाँ और अन्ध विश्वासों का अन्त (ङ) सभ्यता का विकास
(३) विद्या-प्रचार से उन्नति करने वाले कुछ देशों का उदाहरण
(४) उपसंहार—भारतवर्ष में विद्या-प्रचार की कमी।

मानव-जीवन को विद्या की बड़ी आवश्यकता है इससे मनुष्य के हृदय में प्रकाश हो जाता है, उसके भीतरी नेत्र खुल जाते हैं। ज्ञान के भण्डार को खोलने के लिए विद्या कुंजी है। विद्या से मनुष्य शोभा पाता है। विद्वान मनुष्य देश-विदेश में झोंपड़ी से लेकर राजा के दरबार तक आदर का पात्र होता है। विद्या एक अद्भुत धन है जो व्यय करने से बढ़ता है और व्यय न करने से घटता है। इसे न तो चोर चुरा सकता है, न भाई बाँट सकता है और न राजा छीन सकता है इससे मनुष्य की यश-चन्द्रिका विश्व में छा

जाती है। और उसे मृत्यु रूपी राहु नहीं मिटा सकता। विद्या बिना मनुष्य पुच्छ और विषाण-रहित पशु है।

प्रत्येक देश ने विद्या के महत्व को स्वीकार किया है। विद्या के प्रचार से देश की उन्नति होती है। जिस देश में विद्या का प्रचार है वहाँ के निवासियों के मस्तिष्क भली-भाँति विकसित हैं। उनमें विचार-शक्ति खूब पाई जाती है। कड़ी से कड़ी समस्या तथा जटिल से जटिल प्रश्न को वे हल कर सकते हैं और भयानक से भयानक परिस्थिति को सँभाल सकते हैं। पर्वतों और झाड़-झंखाड़ों में अपना मार्ग निकाल सकते हैं। हजारों मील दूर के समाचार घर बैठे सुन सकते हैं। सहस्रों फीट ऊँचा उड़ सकते हैं। प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता का पता लगा सकते हैं। समय, दूरी और प्रकृति पर अधिकार जमा सकते हैं। अधिक क्या कहें, विकसित मस्तिष्क सब प्रकार से देश की उन्नति कर सकते हैं।

विद्या के प्रचार से देश में जाग्रति हो जाती है। जिस प्रकार रात्रि भर सोए हुए जीवधारियों को सूर्य का प्रकाश जगा देता है उसी प्रकार मनुष्यों को विद्या की ज्योति जगा देती है। देश में चारों ओर चैतन्यता देखी जाती है। अज्ञान-रूपी अन्धकार जो मनुष्यों को अपनी स्थिति नहीं देखने देता विद्या की ज्योति से भाग जाता है और वे अपनी स्थिति को, अपनी दशा को, समझने लगते हैं। वे जानने लगते हैं कि उनमें क्या-क्या कमी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्या जागृति की प्रथम सीढ़ी है।

विद्या-प्रचार से देश के निवासियों की ज्ञान-वृद्धि होती है। निर-क्षर होने के कारण ज्ञान का भण्डार मनुष्य के लिए बन्द रहता है। वह कूप-मण्डूक बना रहता है। आदि काल से लेकर अब तक ज्ञान का जितना प्रसार हुआ है उसका उपयोग वह नहीं कर सकता। उसके लिए गोस्वामी तुलसीदास की रामायण की भक्ति की दृष्टि से भले ही कुछ मूल्य हो, पर ज्ञान की दृष्टि से कुछ भी मूल्य नहीं। वह कालिदास, भवभूति, न्यूटन, प्लैटो, अरस्तू, शेक्सपियर, टॉलसटाय, लेनिन आदि महानुभावों के ज्ञान से क्या लाभ उठा

सकता है ? देश अथवा विदेश की दशा का उसे कुछ भी पता नहीं रहता। वास्तव में वह वैसा ही मूर्ख रहता है जैसा कोई पशु। फिर बतलाइए उससे देश की उन्नति कैसे हो ? फिर बतलाइए वह कैसे अपने देश की दशा का सुधार करे।

विद्या के प्रचार से देश में प्रचलित कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों का अन्त हो जाता है। उस देश की कभी उन्नति नहीं हो सकती जिसकी कुरीतियों, अन्ध-विश्वासों और ढकोसलों ने अपना घर बना लिया है। भारतवर्ष को ही देखिए। यहाँ बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, अछूतों के प्रति दुर्व्यवहार, स्त्री के प्रति अत्याचार आदि अनेक ऐसी बुरी बातें हैं जिनसे देश अधोगति के अन्धकूप में पड़ा हुआ है। धार्मिक अन्धविश्वासों की भी यहाँ कमी नहीं। जैसे—यहाँ के निवासी चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण को एक राक्षस द्वारा चन्द्रमा और सूर्य का ग्रसना बतलाते हैं। यह अन्ध-विश्वास नहीं, तो क्या है ? तथापि विज्ञान ने यह भली भाँति प्रमाणित कर दिया है कि सूर्य और चन्द्रमा की विशेष स्थितियों में पृथिवी की उन पर छाया पड़ती है जो उनके प्रकाश को हर लेती है, तो भी हमारे देश के अधिकांश निवासी उसी पुराने विश्वास पर आरूढ़ हैं। यह सब विद्या के अभाव का प्रसाद है।

विद्या के प्रचार से देश की सभ्यता भी विकसित होती है। जब विद्या से मासिक विकास होगा, जब विद्या से जाग्रति होगी, जब विद्या से ज्ञान की वृद्धि होगी, जब विद्या से कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों का अन्त हो जायगा तब क्या कारण है कि सभ्यता की उन्नति न हो ? जिन जातियों में विद्या का प्रचार नहीं है वे आज तक जंगलों में या तो पशुओं की भाँति नग्नावस्था में रहती हैं या पेड़ों की छालों और पत्तियों से अपने शरीर को ढक कर रहती हैं वे पशुओं की भाँति खाती-पीती और संतान उत्पन्न करती हैं। न उनमें शिष्टता है और न अन्य कोई मनुष्योचित गुण।

संसार में अनेक ऐसे देश है जिन्होंने विद्या के प्रचार से ही उन्नति की है। इङ्गलैंड, अमरीका, जापान, रूस आदि देश आज

इसीके प्रताप से उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए हैं। जापान की तो विद्या के प्रचार ने २५-३० वर्ष में काया पलट दी है। उसने इतने थोड़े समय में जो आशातीत उन्नति की है उसे देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

खेद का विषय है कि हमारे देश में विद्या का प्रचार नहीं है। यहाँ पढ़े-लिखे मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। देश का अधिकांश भाग अशिक्षित है। पुरुष तो थोड़े बहुत पढ़े-लिखे मिल भी जाते हैं, पर स्त्रियाँ नहीं मिलतीं। इस देश में ग्राम तो पूर्णतया अविद्या के केन्द्र बने हुए हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि हमारा देश अवनति के गड्ढे में पड़ा हुआ है। कुरीतियों ढोंगों, आडम्बरों अज्ञानता और भय आदि ने यहाँ अपना अड्डा जमा लिया है। हे परमात्मा! क्या कभी वह दिन भी आयगा जब हमारे देश में विद्या की निर्मल ज्योति प्रसारित होगी और वह पुनः उन्नति के शिखर पर आसीन होगा?

जीवन में अहिंसा का महत्व

(१) प्रस्तावना—संसार में हिंसा का अखण्ड साम्राज्य
(२) जीवन में अहिंसा का महत्व—
　(क) अहिंसा परमोधर्मः　(ख) अहिंसा से आत्मिक-उत्थान
　(ग) अहिंसा से मानव समाज का कल्याण　(घ) अहिंसा से जीवन में सुख और शांति
(३) कुछ प्रसिद्ध अहिंसावादी व्यक्तियों के उदाहरण
(४) उपसंहार—सारांश

आजकल संसार में हिंसाका अखंड साम्राज्य है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का, एक जाति दूसरी जाति का और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का संहार करने में संलग्न है। इटली वालों ने अबीसीनिया में कितना रक्तपात किया। जापानियों ने कितने चीनियों की जानें लीं। जर्मनी ने कैसी बर्बरता से फ्रांस, हालैंड आदि देश-वासियों

को तलवार के घाट उतारा। कोरिया में हिंसा का कैसा ताण्डव नृत्य हुआ। पूँजीपति श्रमिकों का रुधिर चूसते हैं और महाजन ऋणियों की खाल खींचते हैं। पशु-पक्षियों की हत्या तो आजकल साधारण सी बात है। मांसाहारी व्यक्तियों की उदर-पूर्ति के लिए न जाने कितने पशु-पक्षी नित्य मारे जाते हैं। धिक्कार है उन नर-पिशाचों को जो अनाज, दूध और कन्द-मूल-फलों की कमी न होने पर भी अकारण ही भोले-भाले जीवों की गर्दनों पर छुरियाँ चलाते हैं। आज चारों ओर हिंसा का बोलबाला है। बड़े-बड़े घातक यंत्रों और विषैली गैसों के आविष्कार हो रहे हैं। इस समय अहिंसा का उपदेश देना नक्कारखाने में तूती की आवाज ही है।

आजकल कोई अहिंसा-देवी का पुजारी नहीं है। पर क्या इससे अहिंसा की महत्ता, अहिंसा का गौरव कम हो सकता है? 'अहिंसा परमोधर्मः' अर्थात् अहिंसा परम धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। आज तक संसार में कोई ऐसा धर्म चला है जिसने अहिंसा को अपने सिद्धान्तों में स्थान न दिया हो। क्या ईसाई धर्म, क्या बौद्ध धर्म, क्या जैन धर्म, क्या वैदिक धर्म, सभी अहिंसा पर अत्यधिक जोर देते हैं। वास्तव में धर्म का कोई अंग अहिंसा के तुल्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता। ईश्वर ने सभी प्राणियों को उत्पन्न किया है। हमें क्या अधिकार है कि हम उसके जीवों को कष्ट दें। उनकी हत्या करें? सचमुच जीव की हिंसा करना ईश्वर को अप्रसन्न करना है मनुष्यता की दृष्टि से इससे नीच कार्य और क्या हो सकता है कि हम लोग ऐसे जीवों को मारें जो हमें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते, हमें कुछ भी कष्ट नहीं देते? हिंसा के बराबर घोर पाप और क्या हो सकता है?

अहिंसा आत्मिक-उत्थान का उत्तम साधन है। जो व्यक्ति अहिंसा-व्रत का पालन करता है उसकी आत्मा निरन्तर उच्चता की ओर अग्रसर होती है। भगवान के बनाए हुए जीवों को प्यार करना भगवान की सच्ची आराधना है, क्योंकि सभी में उसकी सत्ता है। इसलिए अहिंसावादी व्यक्ति यदि बाहरी संध्या भी न करे तो

भी ईश्वर उससे सदैव प्रसन्न रहता है और उसे सद्बुद्धि प्रदान करता है। सद्बुद्धि से वह श्रेष्ठ कार्यों में संलग्न होता है जिससे उसकी आत्मा की उन्नति होती है।

अहिंसा से पशु-समाज और पक्षी समाज का तो भला होता ही है—मानव समाज का भी कम कल्याण नहीं होता। जो मनुष्य अहिंसावादी होता है उससे समाज में शान्ति स्थापित होती है। वह पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या, मार-काट और लड़ाई झगड़ों का अन्त करता है। बहुत से मनुष्य जो उसके सम्पर्क में आते हैं सुधर जाते हैं। कैसा ही कट्टर हिंसावादी क्यों न हो उसके सम्मुख आकर उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। जिस समाज में अहिंसावादी व्यक्ति उत्पन्न होता है उसमें मङ्गल की वर्षा होती है।

अहिंसा का व्रत पालन करने से जीवन मैं सुख और शान्ति का संचार हो जाता है। अहिंसावादी व्यक्ति का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। वह किसी से लड़ता-झगड़ता नहीं। यदि उसे कोई कष्ट देता है तो वह उसको शान्तिपूर्वक सह लेता है। प्रति-हिंसा का भाव उसमें नहीं पाया जाता। सहन-शक्ति के कारण उसका जीवन सुखमय रहता है।

संसार में कई अहिंसावादी व्यक्ति हुए हैं जिनकी यश-कौमुदी आज तक विश्व में छिटकी हुई है। ईसामसीह का नाम कौन नहीं जानता होगा ? वे अहिंसा के बड़े भक्त थे। उनका कहना था कि यदि तुम्हारे बाएँ गाल पर कोई तमाचा मारे तो उससे कुछ न कहो वरन् अपना दाहिना गाल भी तमाचा मारने के लिए उसकी ओर कर दो। अहिंसा और सहन-शक्ति का यह कितना अच्छा सिद्धान्त है। गौतम बुद्ध भी अहिंसा के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने यज्ञों में की जाने वाली हिंसा का अन्त किया उनके समय में सहस्रों जीवों की यज्ञों में बलि चढ़ाई जाती थी। यह बुद्धजी का ही प्रभाव है कि आजकल यज्ञों में बलि नहीं चढ़ाई जाती है। महावीर स्वामी तो अहिंसा के साक्षात् अवतार थे। उन्होंने अहिंसा का बहुत प्रचार किया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुयायियों को कपड़े से

छान कर जल पीना और बात करते समय अथवा शास्त्रों का अध्ययन करते समय मुँह के सम्मुख कपड़े की एक पट्टी रखना आवश्यक ठहराया। हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी भी अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने अहिंसा के शस्त्र से स्वराज्य-संग्राम में आशातीत सफलता प्राप्त की। आज तक अहिंसात्मक-युद्ध कभी नहीं देखा गया था। गाँधीजी ने सर्व-प्रथम इस प्रकार का युद्ध किया और उसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की। वे कहते थे कि विश्व-शांति का एकमात्र साधन अहिंसा है।

सारांश यह है कि जीवन में अहिंसा का अत्यन्त महत्त्व है। इससे व्यक्ति अपना और समाज दोनों का कल्याण कर सकता है। विश्व-मैत्री की स्थापना के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है। हमारी मनुष्यता इसी में है कि हम सभी जीवधारियों के साथ हिलमिल कर रहें और उनको किसी प्रकार का कष्ट न दें। अहा! किसी ने कैसा अच्छा कहा है—

"विधि के बनाये जेते जीव हैं जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देहु।"

हिन्दू-त्यौहार

(१) प्रस्तावना—त्यौहार क्या है? हिन्दू-त्यौहार के भेद
(२) प्रधान हिन्दू-त्यौहार
(क) रक्षा-बन्धन (ख) दशहरा (ग) दिवाली (घ) होली
(३) त्यौहार का महत्त्व
(४) उपसंहार—हिन्दू-त्यौहार में सुधार

त्यौहार से तात्पर्य सामाजिक उत्सव है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उत्सव और आनन्द मनाना मनुष्य का स्वभाव है। त्यौहार इसी स्वभाव का फल है। त्यौहार का सम्बन्ध धर्म से जोड़ दिया गया है। हिन्दुओं में अनेक प्रकार के त्यौहार प्रचलित हैं। किसी त्यौहार के मनाये जाने का कारण हिन्दुओं के इतिहास की कोई प्रसिद्ध घटना है। जैसे—दशहरा नामक त्यौहार

इसलिए मनाया जाता है कि क्वार सुदी १० को रामचन्द्रजी ने लङ्का पर विजय प्राप्त की थी। किसी त्यौहार के मनाये जाने का कारण ऋतु-परिवर्त्तन होता है। जैसे—होली नामक त्यौहार शिशिर ऋतु के पश्चात् बसन्त के आगमन पर मनाया जाता है। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण किसी महान् पुरुष का जन्म होता है, जैसे—कृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी आदि। किसी त्यौहार के मनाए जाने का कारण धार्मिक होता है, जैसे—रक्षा-बन्धन, गणेश चतुर्थी आदि। त्यौहार के दिन प्रत्येक हिन्दू के घर आनन्द मनाया जाता है। यों तो हिन्दुओं के अनेक त्यौहार हैं, पर उनमें चार प्रधान हैं—रक्षा-बन्धन, दशहरा, दिवाली और होली।

रक्षा-बन्धन हिन्दुओं का एक प्रधान त्यौहार है। यह श्रावण की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस त्यौहार के दिन ब्राह्मण मन्त्र पढ़ता हुआ अपने यजमान के दाहिने हाथ की कलाई पर एक सूत्र बाँधता है। यजमान ब्राह्मण को दक्षिणा देता है। इस सूत्र का उद्देश्य यजमान की रक्षा होती है। अतः इसे रक्षा-बन्धन कहते हैं। इस त्यौहार के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। एक समय देवता और दैत्यों में लगातार बारह वर्ष तक युद्ध होता रहा, जिसमें दैत्यों ने देवताओं-समेत इन्द्र पर विजय प्राप्त करली। इससे इन्द्र बड़ा दुःखी हुआ। इन्द्राणी ने उसे साहस बँधाया। उसने कहा कि मैं एक ऐसा उपाय करती हूँ जिससे आपकी अवश्य विजय होगी। दूसरे दिन श्रावणी थी। इन्द्राणी ने ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा की पोटली बाँध दी। रक्षा-बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की तब उसे विजय प्राप्त हुई। यह त्यौहार विशेषकर ब्राह्मणों का त्यौहार माना जाता है। रक्षा-बन्धन के दिन नवीन वस्त्राभूषण धारण करते हैं और मिष्टान्न तथा पकवान खाते हैं। सायङ्काल को वे बाग तथा वाटिकाओं में खेल-कूद आदि से आमोद-प्रमोद करते हैं।

हिन्दुओं का द्वितीय प्रधान त्यौहार दशहरा है। इसे विजया-दशमी भी कहते हैं। यह त्यौहार क्वार सुदी १० को मनाया जाता

है। इसका विशेष सम्बन्ध क्षत्रियों से है। पर यह प्रत्येक हिन्दू घर में मनाया जाता है। इस त्यौहार के दिन क्षत्रिय लोग अपने अस्त्र-शस्त्र का पूजन करते हैं। क्षत्रिय राजे विविध प्रकार के उत्सव करते हैं। इसी दिन उनकी सवारी धूम-धाम से निकलती है और सेना का प्रदर्शन होता है। क्षत्रिय लाग दशहरे के दिन दुर्गा पर भैंसे का बलिदान चढ़ाते हैं। बंगाल-प्रान्त में वह त्यौहार दुर्गा पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ इस अवसर पर दुर्गा जी की पूजा की जाती है। दशहरे के त्यौहार के दिन वैश्य लोग अपनी बहियाँ पूजते हैं। इस दिन प्रत्येक हिन्दू के घर में आनन्द रहता है और मिष्ठान्न तथा पकवान बनते हैं। रात्रि के समय रावण-वध का अभिनय किया जाता है; रावण की कागज की विशाल मूर्ति बनाकर उसका राम द्वारा विध्वंस कराया जाता है। फिर उस मूर्ति में आग लगा दी जाती है। इस त्यौहार का सम्बन्ध मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी की लंका-विजय से है। इस लिए यह दिन श्रेष्ठ माना गया है। और क्षत्रिय लोग इसे अपना मुख्य त्यौहार मानते हैं। इसका विजय-दशमी नाम पड़ने का कारण भी यही है,

दिवाली तो हिन्दुओं का सबसे प्रधान त्यौहार है। इसका विशेष संबंध वैश्यों से है। इसे दिपावली भी कहते हैं। यह त्यौहार कार्तिक कृष्णा १३ से शुल्क २ तक पाँच दिन मनाया जाता है प्रथम दिन 'धन-तेरस' कहलाता है इस दिन दीपक जलाकर सब लोग अपने-अपने द्वार पर रखते हैं और यमराज का पूजन करते हैं। इस दिन बर्तन खरीदना शुभ समझा जाता है अतः बाजारों में बर्तन खूब सजाए जाते हैं और उनकी खूब बिक्री होती है। दूसरा दिन 'नरक-चौदस' कहलाता है। इसका कारण यह है कि इस दिन श्रीकृष्णजी ने नरकासुर का वध किया था। इसी दिन भगवान ने नृसिंह का रूप धारण करके प्रह्लाद के पिता का वध किया था। इस दिन घरों की सफाई की जाती है और उन्हें लीपा-पोता जाता है। सायंकाल दीपक जलाए जाते हैं। तीसरा दिन लक्ष्मी-पूजन का होता है। कुछ लोग केवल इसी दिन को दिवाली के नाम से पुका-

रते हैं। इस दिन भगवान रामचन्द्रजी चौदह वर्ष के बनवास के पश्चात् अयोध्या लौट आये थे और वहाँ उनके स्वागत में निवासियों ने अनेक उत्सव मनाए थे। दिवाली का दिन मुख्य गिना जाता है। रात्रि के समय मनुष्य अपने मकानों को दीपकों की अवलियों से सजाते हैं और लक्ष्मीजी की पूजा करते हैं। स्थान-स्थान पर दीप-मालाएँ बड़े सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं। नगरों में श्वेत, हरे, नीले, पीले, लाल और गुलाबी लट्टुओं में बिजली का प्रकाश मन को हरता है। ऐसा विश्वास है कि इस रात्रि को लक्ष्मीजी प्रत्येक घर में आती हैं और जिस घर की स्वच्छता और सुन्दरता देखकर प्रसन्न हो जाती हैं उसी को अपने निवास के लिए चुन लेती हैं। अतः लोग अपने घरों को स्वच्छ और आकर्षक बनाते हैं और कुछ लोग रात भर लक्ष्मी की आराधना में जागते हैं। चौथे दिन गोवर्द्धन पूजा होती है। वह पूजा श्रीकृष्णजी के गोवर्द्धन-पर्वत उठा कर ब्रज की रक्षा करने के उपलक्ष में की जाती है। इस दिन गोबर से गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है और रात्रि में उसकी पूजा होती है, गाय-बैल भी पूजे जाते हैं। पाँचवाँ दिन 'भैया-दूज' और 'यम-द्वितीया' कहलाता है। ऐसा विश्वास है कि इस दिन यमुनाजी में स्नान करने से मनुष्य यमदूतों के चक्कर में नहीं पड़ता। इस दिन स्त्रियाँ अपने-अपने भाइयों को मिष्ठान्न खिलाती हैं। और उनके मस्तक पर तिलक लगाती हैं। भाई अपनी बहनों को उपहार देते हैं। दिवाली का त्यौहार बड़े आमोद-प्रमोद का है। लोग नवीन वस्त्र पहनते और मिठाई आदि अच्छे-अच्छे पकवान खाते हैं। इस अवसर पर जुआ खेलने की भी कुप्रथा प्रचलित है। धनी और निर्धन दोनों दिवाली पर अपने-अपने घरों को स्वच्छ करते हैं और लीप पोत कर चित्रादि से सजाते हैं।

होली भी हिन्दुओं का प्रधान त्यौहार है। यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। पूर्णिमा के कुछ दिन पूर्व लकड़ियों

और घास-फूँस का बड़ा ढेर एक स्थान पर लगाया जाता है, इसे 'होली' कहते हैं। पूर्णिमा की रात्रि को इसे जलाया जाता है। इसका सम्बन्ध प्रह्लाद की भूआ होलिका से है जो प्रह्लाद को गोदी में लेकर उसे जलाने के लिए अग्नि में बैठ गई थी। उसमें यह शक्ति थी कि वह अग्नि में नहीं जलती थी। पर जब वह प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठी तब स्वयं जल गई किन्तु प्रह्लाद का बाल भी बाँका न हुआ। होली का त्यौहार शूद्रों का कहा जाता है। इस अवसर पर बालक, वृद्ध सभी स्वाँगिए बनकर गन्दे शब्दों का निर्लज्जता से उच्चारण करते हैं। एक दूसरे पर रंग का पानी, कीचड़, मिट्टी और पेशाब तक डालते हैं। तरह-तरह के मजाक होते हैं। गुलाल की आँधी-सी उड़ती है। स्थान-स्थान पर नाच-रंग और गाने-बजाने होते हैं।

त्यौहारों की प्रत्येक जाति को आवश्यकता होती है। इनकी अपनी उपयोगिता है, अपना महत्त्व है। इनसे जीवन में सरसता और मधुरता आ जाती है। लोगों में स्नेह बढ़ता है। वे आपस में मिलते-जुलते हैं। त्यौहारों से ऐतिहासिक स्मृति बनी रहती है और जीवन निर्माण में बहुत सहायता मिलती है। इनका हम पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करने में इनका बड़ा हाथ रहता है। इनसे जातीय भावों की भी वृद्धि होती है।

हमारे त्यौहारों में कुछ दोषों ने घर कर लिया है, जिनसे इनका रूप विकृत हो गया है। इनमें सुधार की आवश्यकता है। दिवाली पर लोग जुआ खेलते हैं, जिनमें कुछ अपनी पसीने की कमाई को थोड़े समय में नष्ट कर देते हैं और तरह-तरह के दुःख भोगते हैं। फिर वे उदर-पोषण के लिए पाप करते हैं और जेल की हवा खाते हैं। यह खेल बन्द होना चाहिए। होली में पर्याप्त गन्दगी आगई है। पेशाब और कीचड़ मटकों में भर-भरकर डालना कितना घृणित और बुरा है। गन्दे वचन कहना कितनी नीचता है। इनसे कभी-कभी

पारस्परिक झगड़ों और वैमनस्य की नींव पड़ जाती है। इन गन्दगियों का निराकरण होना बहुत आवश्यक है। दशहरे के अवसर पर भैंसे का प्राण लेना बुरा है। ऐसे शुभ अवसर पर कैसा नीच कार्य किया जाता है? क्या हम किसी जीव का प्राण लेकर अपना कल्याण कर सकते हैं? क्या हम किसी की हत्या करके किसी देवता को प्रसन्न कर सकते हैं? कदापि नहीं। हमें चाहिए कि हम अपने त्यौहारों के दोषों को दूर करें जिससे हमारी उन्नति हो, जिससे हमारा कल्याण हो।

आदर्श गृहिणी

(१) प्रस्तावना—गृहिणी का महत्त्व
(२) आदर्श गृहिणी द्वारा समाज का कल्याण
(३) आदर्श गृहिणी की आवश्यकताएँ
 (क) शिक्षा (ख) गृहस्थी के काम-काज करने की कुशलता (ग) स्वच्छता-प्रियता (घ) घरेलू चिकित्सा का ज्ञान (ङ) पति-सेवा (छ) उज्ज्वल चरित्र (नम्रता, सहनशीलता, मितव्ययता एवं मधुर भाषण)
(४) उपसंहार—सारांश

गार्हस्थ्य जीवन एक गाड़ी है, जिसके पुरुष और स्त्री दो पहिये हैं। इस गाड़ी के सुचारु-संचालनार्थ पति एवं स्त्री की उत्तमता वांछनीय है। गृहस्थी में सुख और शान्ति का साम्राज्य तभी स्थापित होगा जब गृह-पति और गृहिणी दोनों आदर्श हों। इन दोनों में भी गृहिणी का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गृहस्थ जीवन का अधिकांश भार गृहिणी के ही कन्धों पर रहता है। वही घर की अधिष्ठात्री देवी है। यदि आदर्श गृहिणी जीवन को स्वर्गीय बना सकती है तो कलुषित गृहिणी उसे नारकीय। यदि आदर्श गृहिणी जीवन में सरसता का संचार कर सकती है तो अधम गृहिणी

कटुता का। यदि आदर्श गृहिणी जीवन का अमृत है तो निकृष्ट गृहिणी विष।

आदर्श गृहिणी से पति का तो जीवन मधुर होता ही है, समाज का भी कम कल्याण नहीं होता है। वह अपनी संतान को सुशील एवं सुयोग्य बनाती है, जिससे समाज का भला होता है। आदर्श गृहिणी की संतान ही देश तथा समाज का नेतृत्व कर सकती है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। हिन्दू-धर्म रक्षक, हिन्दू जाति के जीवनदाता छत्रपति शिवाजी का आविर्भाव करने वाली कौन थी? एक आदर्श गृहिणी जिसका नाम जीजाबाई था। जीजाबाई ने शिवाजी को शिवाजी बनाकर, हिन्दू-समाज के उद्धार का साधन जुटाया। गांधीजी को किसने जन्म दिया? एक आदर्श गृहिणी पुतलीबाई ने जो साधु स्वभाव की थीं और धर्म में बहुत निष्ठा रखती थीं।

आदर्श गृहिणी में कौन-कौन गुण होने चाहिएँ? आदर्श गृहिणी का स्वरूप क्या है? किस प्रकार की स्त्री आदर्श गृहिणी कही जा सकती है? किसी स्त्री को आदर्श गृहिणी के सुनाम से विभूषित होने के लिए सबसे आवश्यक वस्तु शिक्षा है। नारी माता-रूप में हमारी गुरु और पत्नी-रूप में हमारी परामर्शदात्री है। इसलिए उसका शिक्षित होना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा के बिना मस्तिष्क का विकास नहीं हो सकता और बिना मस्तिष्क के विकास के शिक्षा और परामर्श देने के कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। अशिक्षित पत्नी गृह-कार्य सुचारुता से नहीं चला सकती। सुशिक्षा से स्त्री की कूपमण्डूकता जाती रहती है। वह प्रत्येक बात की भलाई-बुराई की विवेचना भली-भाँति कर सकती है।

आदर्श गृहिणी को गृहस्थ के प्रत्येक काम-काज में कुशलता प्राप्त करने की आवश्यकता है। उसे सीना-पिरोना, बुनना, कशीदाकारी, भोजन बनाना, बच्चों का लालन-पालन, गृह-प्रबन्ध, आय-व्यय का लेखा, परिचर्या, स्वास्थ्य-रक्षा आदि कार्यों में दक्ष होना चाहिए, जिससे

वह इन्हें भली भाँति स्वयं अपने हाथों से कर सके। अंग्रेज गृहिणियाँ घर के सब काम-काज ठीक-ठीक करना जानती हैं और उन्हें स्वयं करती हैं। आजकल हमारे यहाँ की शिक्षित स्त्रियों में गृह-कार्यों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो रही है, यह दुःख की बात है। पर इसमें दोष शिक्षा का है, स्त्रियों का नहीं; कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक कार्य अपने हाथों से करने से अच्छा होता है। हमारी प्राचीन गृह-देवियाँ स्वयं गृहस्थी के कार्य सँभालती थीं। सीताजी के विषय में तुलसीदासजी ने लिखा है :—

"निज कर गृह परिचरया करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥"

आदर्श गृहिणी स्वच्छता-प्रिय हो। वह घर को साफ-सुथरा रक्खे। घर में कहीं भी गन्दगी का नाम न रहे, वह स्वयं अपने तथा बाल-बच्चों के शरीर, वस्त्रादि स्वच्छ रक्खे। सफाई का स्वास्थ्य से और गन्दगी का रोगों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सफाई की उपेक्षा करके कोई भी स्वस्थ नहीं रह सकता। अतः यदि गृहिणी स्वच्छता का ध्यान रक्खेगी तो वह गृह की रोगों से रक्षा कर सकेगी।

आदर्श गृहिणी के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे घरेलू चिकित्सा का ज्ञान हो। घर में बालकों को छोटे-मोटे रोग बहुत हुआ करते हैं। कभी किसी को खाँसी हो जाती है तो कभी कोई दस्त से पीड़ित होता है। कभी किसी को ज्वर आ जाता है तो कभी किसी की आँख दुखने लगती हैं। बच्चे नटखट भी होते ही हैं। एक दूसरे को चोट दे देते हैं। इन सब बातों के लिए डाक्टर की शरण ली जाय तो बहुत रुपये उड़ जायँ। इसीलिए गृहिणी को साधारण रोगों की चिकित्सा स्वयं करनी चाहिए। उसे शरीर विज्ञान का भी बोध होना आवश्यक है।

मानव-जीवन में मनोरंजन की अत्यन्त आवश्यकता है। जब हम दिनभर के परिश्रम से उकता जाते हैं, हमारा मन विनोद

चाहता है। यदि पत्नी संगीत, नृत्यादि ललित कलाओं में दक्ष हो तो फिर उस समय आनन्द का क्या कहना ? उस समय यदि अपनी स्त्री सुरीले कण्ठ से गा सकती हो, वाद्य-यंत्रों से मधुर ध्वनि निकाल सकती हो, मनोमोहक नृत्य कर सकती हो, तो सिनेमा हॉल के आनन्द की अपेक्षा घर का आनन्द दुगुना हो जाता है। अतः आदर्श गृहिणी के लिए संगीत, नृत्यादि कलाओं का ज्ञान भी वांछ-नीय है। इसके साथ-साथ यदि उसमें परिहास-पटुता हो तो सोने में सुगन्ध है।

पतिव्रत-धम का पालन तो आदर्श-गृहिणी के लिए प्राणों से भी प्यारा होना चाहिए। उसके लिए पति ही एक मात्र देवता, पति ही एक मात्र धन, पति ही एक मात्र सम्बन्धी हो। वह पति के सुख में अपना सुख, पति के दु ख में अपना दु ख, पति के उत्कर्ष में अपना उत्कर्ष, पति के अपकर्ष में अपना अपकर्ष, पति के अपमान में अपना अपमान और पति के सम्मान में अपना सम्मान समझे। वह अपना सर्वस्व पति पर न्यौछावर कर दे।

आदर्श गृहिणी का चरित्र उज्ज्वल होना चाहिए। उसका स्वभाव सरल एवं विनम्र हो। वह सहनशील और मिष्ट भाषिणी हो। उसमें मितव्ययता तथा सादगी के भी गुण होने चाहिएँ। जो गृहिणी फैशन में मुक्तहस्त से रुपये व्यय करेगी वह आदर्श न कहला सकेगी। जो टीम-टाम एवं बाह्याडंबर में रुपये उड़ायेगी वह उत्तम गृहिणी नहीं हो सकेगी। नारी का आदर्श रंग-बिरंगी तितली बनकर कलबों में मनो-रंजन करना नहीं है, बल्कि गृह को स्वर्ग बनाने में है।

संक्षेप में यही आदर्श गृहिणी की आवश्यकताएँ हैं। क्या हमारे देश की आधुनिक गृहिणियाँ आदर्श हैं ? प्राचीन काल में अवश्य हमारे यहाँ की नारियाँ आदर्श गृहिणियाँ होती थीं और उन्हें गृह-लक्ष्मियों के भव्य नाम से सम्बोधित किया जाता था। खेद की बात है कि आजकल हमारी गृहिणियाँ अशिक्षित हैं, उनमें विविध प्रकार की कुरीतियाँ पाई जाती हैं, वे अपने पतियों से दिन-रात

कलह किया करती हैं, वे स्वच्छता से कोसों दूर रहती हैं और उनमें गृह-कार्य की कुछ भी योग्यता नहीं है। इसका उत्तरदायित्व पुरुष-समाज पर है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्त्री समाज की दशा सुधारें जिससे भारत में पुनः सीता, सावित्री, अनुसूया सरीखी आदर्श गृहिणियाँ उत्पन्न हों जो भारत के भाग्य-सितारे को सातवें आसमान पर पहुँचावें।

देशाटन से लाभ

(१) प्रस्तावना—एक कवि की उक्ति ; आजकल के सुगम साधन
(२) देशाटन से लाभ—
(क) ज्ञान-वृद्धि (ख) मनोरंजन (ग) स्वास्थ्य-लाभ (घ) उन्नति
(३) उपसंहार—हमारे देश में देशाटन के प्रेम की कमी

"सैर कर दुनियाँ की गाफिल
जिन्दगानी फिर कहाँ ?"

सच है जीवन का आनन्द सैर में है। एक ही स्थान पर रहते-रहते मनुष्य का मन ऊब जाता है और वह इधर-उधर घूमना-फिरना चाहता है। अन्य स्थानों के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि से भी वह परिचित होना चाहता है। इन्हीं प्रवृत्तियों का फल देशाटन है। आजकल विज्ञान के प्रताप से देशाटन के लिए बड़े सुगम साधन उपलब्ध हैं। पहले यात्रियों को देशाटन में बड़ी आपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। वे पैदल, घोड़े या बैलगाड़ी में यात्रा करते थे। मार्ग में उन्हें लुटेरे लूट लेते थे। वर्षा-ऋतु में नदी-नालों के कारण मार्ग बन्द हो जाते थे। थोड़ी दूर पहुँचने में बहुत समय लगता था। धन्य है विज्ञान जिसने रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि यात्रा के सुगम साधन जुटाये हैं। इनसे देशाटन में बहुत आराम हो गये हैं।

प्रत्येक मनुष्य को देशाटन का प्रेमी होना चाहिए। इससे अनेक लाभ हैं। वह ज्ञान-वृद्धि का बड़ा अच्छा साधन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी वस्तु का ठीक और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने

के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसे स्वयं देखा जाय। यद्यपि पुस्तकें विविध वस्तुओं का ज्ञान कराती हैं तो भी उन्हें प्रत्यक्ष देखे बिना तत्सम्बन्धी ज्ञान अधूरा रहता है। जैसे—काश्मीर का वर्णन पढ़ कर काश्मीर का वैसा ज्ञान नहीं हो सकता जैसा उसे साक्षात् देखकर। भौगोलिक ज्ञान के लिए तो देश-विदेश-भ्रमण अनिवार्य है। किसी देश की जलवायु, स्थिति, पैदावार आदि का समुचित ज्ञान उस देश में घूमने-फिरने से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भू-भागों के निवासियों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, राजनैतिक परिस्थिति, आर्थिक अवस्था, धार्मिक दशा, आदि का ठीक-ठीक परिचय भी देशाटन द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। देशाटन अनुभवों की खान है। जो व्यक्ति देशाटन करता रहता है उसे अनेक प्रकार के अनुभव हो जाते हैं। सांसारिक दाँव-पेच वह भलीभाँति जान लेता है। किस प्रकार के व्यक्ति से कैसा व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार की परिस्थिति में कैसा काम करना चाहिए, इनका उसे अच्छा ज्ञान हो जाता है। स्वावलम्बन की भावना प्राप्त करने के लिए देशाटन बहुत आवश्यक है।

देशाटन से मनोरंजन भी होता है। अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखने को मिलती हैं। कहीं अजायबघर देखने को मिलता है तो कहीं सुन्दर भवन। कहीं कोई नया पशु देखने को मिलता है तो कहीं कोई नया पक्षी। कहीं मनोरम झील की छटा देखी जाती है तो कहीं मनोहर सरोवर की शोभा। कहीं समुद्र का भव्य रूप देखा जाता है तो कहीं नदी की चाँदी सी उज्ज्वल धारा। कहीं हँसती हुई प्रकृति मन को रिझाती है, कहीं गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ मन को प्रसन्न करती हैं। कहीं स्वच्छता देखकर हर्ष होता है, कहीं ग्रामीणों का सरल जीवन बड़ा अच्छा लगता है। कहीं नागरिकों की सजावट मन को आकृष्ट करती है।

देशाटन से स्वास्थ्य-लाभ भी होता है। मनोरंजन और स्वास्थ्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। डाक्टरों का मत है कि यदि कोई मनुष्य सदैव

प्रसन्न रहे तो उसे कभी कोई रोग नहीं हो सकता, वह सर्वदा स्वस्थ रहेगा। देशाटन से मनोरंजन होता है। इसलिए देशाटन करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। मनोरंजन के अतिरिक्त कई स्थानों की जलवायु स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती है। पर्वतीय प्रदेशों में भ्रमण करके किसका स्वास्थ्य नहीं सुधर जाता ? यह देखा जाता है कि निर्बल और रोगी मनुष्य कुछ दिन पहाड़ों पर जाकर टिकते हैं। देशाटन से कुछ समय के लिए गृहस्थी की चिन्ताओं से छुटकारा भी मिल जाता है। इसका भी तन्दुरुस्ती पर अच्छा असर पड़ता है।

उन्नति के लिए देशाटन बड़ी आवश्यक वस्तु है। हम भिन्न-भिन्न देशों की यात्रा करके अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं। दूसरे देशों की अच्छी समाज-व्यवस्था अध्ययन करके अपने देश में उसकी अवतारणा कर सकते हैं और कुरीतियों का अन्त कर सकते हैं। अन्य देशों की राज्य-व्यवस्था देखकर अपनी राजनैतिक दशा को सुधार सकते हैं। देशाटन द्वारा ही दूसरे स्थानों के कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करके अपने देश में उससे औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं। आजकल जिस देश के निवासी देशाटन-प्रिय हैं वे अपने देश को दिन-प्रतिदिन उन्नत बना रहे हैं। पश्चिम वाले देशाटन के कारण संसार भर का व्यापार अपने हाथों में साधे हुए हैं। अँग्रेजों ने देशाटन द्वारा कितनी उन्नति करली है।

हमारे देश के लोगों में देशाटन का प्रेम कम है। कारण यह है कि यहाँ प्राचीन काल में विदेश यात्रा धर्म की दृष्टि से बुरी समझी जाती थी। जो मनुष्य विलायत चला जाता था उसका जाति से बहिष्कार हो जाता था। इस प्रकार की धार्मिक बाधा के कारण यहाँ के निवासियों में देशाटन की प्रवृत्ति का अभाव था। पर हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से यह धार्मिक बाधा दूर हो गई है और कुछ लोग इधर-उधर भ्रमण करने लगे हैं। भारतीय जनता की दरिद्रता

भी देशाटन-प्रेम में बाधक है। हे भगवान ! क्या कभी हमारे देश की दरिद्रता दूर होगी और देशाटन द्वारा हमारा देश उन्नति करेगा ?

किसी जाति की उन्नति के साधन

(१) प्रस्तावना—अँग्रेज जाति की उन्नति

(२) उन्नति के साधन—

(क) शिक्षा का प्रचार (ख) उद्योग-धन्धों और कला-कौशल की वृद्धि (ग) देशाटन (घ) पारस्परिक प्रेम (ङ) जातीय कुरीतियों का बहिष्कार (च) सच्चरित्रता ।

(३) उपसंहार—सारांश, हिन्दू-जाति की दशा

संसार में आजकल कई जातियाँ उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई हैं। अँग्रेज जाति को ही देखिए। इस जाति ने कितनी औद्योगिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उन्नति कर ली है। यह संसार भर के व्यापार की कर्ता-धर्ता बनी हुई है। इस जाति में कला-कौशल की अत्यन्त वृद्धि देखी जाती है। जितनी धनाढ्य यह जाति है उतनी धनाढ्य संसार में आजकल कोई जाति नहीं। इसका इतना अधिक राज्य है कि उसमें सूर्य कभी नहीं डूबता। सामाजिक व्यवस्था भी इस जाति की प्रशंसनीय है। इतनी उन्नति देखकर यह जानने की इच्छा होती है कि वे क्या साधन हैं जिनके कारण कोई जाति उन्नति के आसन पर आसीन हो सकती है, किस प्रकार कोई मनुष्य अपनी जाति को ऊँचा उठा सकता है ?

किसी जाति की उन्नति के लिए उसमें शिक्षा-प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा के महत्व को कौन स्वीकार नहीं करेगा ? कौन शिक्षा की उपयोगिता को न मानेगा ? शिक्षा से मनुष्य के मस्तिष्क विकसित होते हैं, विचार-शक्ति बढ़ती है। कड़ी से कड़ी समस्या और जटिल से जटिल प्रश्न को एक शिक्षित मनुष्य ही हल कर सकता है। वही भयानक से भयानक परिस्थिति को अपने वश में कर सकता

है। रेल, तार, जहाज; एक्स-रे, टेलीविजन, केमरा, सिनेमा, ग्रामोफोन आदि को जन्म देने वाली शिक्षा ही है। शिक्षा से जाति में जाग्रति होती है, ज्ञान की वृद्धि होती है, कूप-मंडूकता जाती रहती है और समस्त कला और जातियों के ज्ञान-भंडार का द्वार खुल जाता है। असभ्यता दूर होती है। जिन जातियों में शिक्षा का प्रचार नहीं है वे आज तक जङ्गल में या पशुओं की भाँति नग्नावस्था में रहती हैं, अथवा वृक्षों की छालों और पत्तियों से अपने शरीर को ढकती हैं। वे पशुओं की भाँति खाती, पीती और सन्तान उत्पन्न करती हैं। न उन्हें अपनी दशा का ज्ञान है और न वे उन्नति का नाम जानती हैं। न उनमें शिष्टता देखी जाती है और न अन्य कोई मनुष्योचित गुण।

शिक्षा के अतिरिक्त किसी जाति की उन्नति के लिए उसमें उद्योग धन्धों और कला-कौशल की वृद्धि भी आवश्यक है। उद्योग-धन्धों के कारण जापानी लोग बहुत उन्नति कर गये हैं। जापान के प्रत्येक स्कूल में चाहे वह प्रायमरी हो या मिडिल, हाई स्कूल हो या कालेज, प्रत्येक बालक को कुछ न कुछ धन्धे की शिक्षा दी जाती है। बालक घड़ी बनाना, साइकिल की मरम्मत करना, फोटोग्राफी आदि काम स्कूल में सीखते हैं। सचमुच जापान की उन्नति का रहस्य दस्तकारी है। दस्तकारी से जाति की आर्थिक अवस्था सुधरती है। अन्य जातियों का धन खिंच-खिंच कर दस्तकार जाति में आ जाता है और वह धन-धान्य से सम्पन्न हो जाती है। दरिद्र जाति क्या कर सकती है? वह कैसे अपनी उन्नति कर सकती है? आजकल वही जाति उन्नत हो सकती है, आजकल वही जाति संसार में अपना सिक्का जमा सकती है, जिसने नाना प्रकार के उद्योग-धन्धों और कला-कौशल से अपने को धनाढ्य बना लिया हो।

देशाटन भी जाति की उन्नति में पर्याप्त योग देता है। जिस जाति में देशाटन का प्रेम पाया जाता है वह उन्नत देखी जाती है। किसी जाति के व्यक्ति भिन्न-भिन्न देशों में भ्रमण करके वहाँ की रीति-नीति रहन-सहन, कला-कौशल आदि का परिचय प्राप्त करके काफी लाभ

उठा सकते हैं। वे किसी देश की श्रेष्ठ समाज-व्यवस्था का अनुकरण कर सकते हैं, किसी देश की उत्तम राजनीति के आधार पर अपनी राजनैतिक परिस्थिति में सुधार कर सकते हैं, किसी देश के कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करके अपनी औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं।

एकता उन्नति की जड़ है। जिस जाति में मनुष्य हिल-मिलकर रहेंगे, जिस जाति में ईर्ष्या, द्वेष और फूट के भाव न होंगे, वह जाति क्या कारण है कि उन्नति न करे? एकता अथवा पारस्परिक प्रेम में बड़ा बल है, बड़ी शक्ति है। वर्षा की छोटी-छोटी बूँद मिलकर नदी की प्रबल धारा बन जाती है और वह धारा बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ देती है तथा मिट्टी के विशाल टीलों को काट कर साफ कर देती है। तिनकों से मिलकर बनी हुई रस्सी मतवाले हाथी को वश में कर लेती है। अतः यदि किसी जाति के मनुष्य प्रत्येक कार्य को मिल-जुल कर करें और आपस में प्रेम का व्यवहार रखें तो वह जाति अवश्य बहुत शीघ्र उन्नति कर जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि पारस्परिक मेल-जोल से उन्नति के मार्ग की कठिनाइयों के गढ़ बड़ी जल्दी तोड़े जा सकते हैं।

जातीय कुरीतियाँ प्रत्येक जाति की उन्नति में बहुत बाधक होती हैं। जब तक उनका बहिष्कार नहीं किया जाता तब तक जाति किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकती। कुरीतियों से जाति की शक्ति कम होती है, कुरीतियों से जाति का पतन होता है। उससे जीवन दुःख-मय होता है और समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है।

सच्चरित्रता भी जाति की उन्नति का बहुत अच्छा साधन है। यह वह अद्वितीय सम्पत्ति है, यह वह अनुपम शक्ति है जिसके कारण मनुष्य अपना और अपनी जाति का उत्थान कर सकता है। जातीय जीवन में इसका बड़ा महत्त्व है। जिस जाति में सच्चरित्रता का पाठ नहीं सिखाया जाता, जिस जाति में बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं होता, जिस जाति में विद्वानों का आदर नहीं किया जाता,

जिस जाति में शूरवीरों का सम्मान नहीं होता, जिस जाति में भलाई करने वालों के प्रति कृतज्ञता नहीं प्रकट की जाती, जिस जाति में नीति और मर्यादा का उल्लंघन होता है, वह कैसे फूल और फल सकती है ?

सारांश यह है कि किसी भी जाति की उन्नति के लिए शिक्षा और कला-कौशल आवश्यक हैं। जिस जाति में इनकी कमी है वह कभी ऊँचा नहीं उठ सकती, वह सदैव अधोगति के गर्त में पड़ी रहेगी। हमारी अवनत हिन्दू जाति को देखिए ! इसमें शिक्षा की कमी है। हम लोग अपने उद्योग-धन्धों और कला-कौशल को भूले हुए हैं, दरिद्रता और धर्म दोनों हमारे देशाटन के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। इसमें फूट का आधिक्य है। बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, शूद्रों और स्त्रियों के प्रति अत्याचार आदि अनेक बातें हमारे समाज के कोढ़ हैं। हाँ, यदि हममें कोई श्रेष्ठता है तो वह सच्चरित्रता है जिसने अब तक हमारी रक्षा की है। हर्ष है कि कुछ दिनों से हमारी जाति में उन्नति के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। आशा है हम लोग उन्नति के साधनों को जुटाकर शीघ्र से शीघ्र अपनी जाति का मुख उज्ज्वल कर सकेंगे।

विद्यार्थी को किन-किन गुणों की आवश्यकता है ?

(१) प्रस्तावना—विद्यार्थी का महत्त्व

(२) विद्यार्थी के गुण—

(क) अध्यवसाय और एकाग्रता (ख) आत्म-संयम (ग) विनय (घ) आज्ञाकारिता (ङ) अध्यापकों के प्रति आदर-भाव (च) जिज्ञासा (छ) व्यायामशीलता (ज) मितव्ययता

(३) उपसंहार—हमारे देश के विद्यार्थी

आज का विद्यार्थी कल का नागरिक है। उस पर देश की उन्नति निर्भर है। वह अपने देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता

है, अपने ज्ञान और विकसित मस्तिष्क द्वारा अपनी जाति और देश में सुधार कर सकता है, सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों का अन्त कर सकता है, औद्योगिक और राजनैतिक दशा को अच्छी बना सकता है। विज्ञान के प्रसार में सहायता पहुँचा सकता है।

विद्यार्थी को भविष्य में श्रेष्ठ नागरिक बनने के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता है। उसे अध्यवसायी होना चाहिए। ज्ञान-प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन परिश्रम करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह पुस्तक पढ़ने का व्यसनी हो। जहाँ कहीं उसे विद्या मिले वहीं से उसे प्राप्त करे। नीच से भी विद्या लेने में विद्यार्थी को कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। किसी ने ठीक ही कहा है :—

उत्तम विद्या लीजिए, जदपि नीच पै होय।
परौ अपावन ठौर में कंचन तजै न कोय॥

जहाँ कहीं ज्ञान की एक किरण भी मिलने की आशा हो वहाँ जाने में विद्यार्थी को आलस्य न हो। वह व्याख्यान, वाद-विवाद आदि से अपने ज्ञान-भण्डार को सदैव भरता रहे। मेहनती ऐसा हो कि बालू में से भी तेल निकाल सके। प्रातःकाल ४ बजे से अपनी पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ करे और रात्रि को १० बजे समाप्त करे। जो बात समझ में न आए उसे बार-बार पढ़े और समझने का प्रयत्न करे। कोई भी कठिनाई हो उसे अध्यापक से दूर कराए। जो कुछ पढ़ाया जाय उसे नित्य दुहरा ले। कक्षा में अध्यापक जो बात बताएँ, उन्हें एकाग्र चित्त से सुने और समझे। पढ़ते समय अपने ध्यान को इधर-उधर न जाने दे। उसे कौए के समान चेष्टा-शील, बगुले के समान ध्यानी, कुत्ते के समान नींद वाला, अल्पाहारी तथा गृहत्यागी होना चाहिए, जैसा कि इस उक्ति से प्रकट है—

"काक चेष्टां वकुल ध्यानं श्वान निद्रा तथैवच।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिम् पंच लक्षणम्॥"

ऐसा होने से वह अपनी उन्नति करके संसार में नाम पैदा कर सकता है।

विद्यार्थी को आत्म-संयम के गुण की भी आवश्यकता है। बाल्यावस्था से लेकर यौवनावस्था तक का समय मनुष्य के लिए ऐसा होता है जबकि वह बन सकता है या बिगड़ सकता है। यही समय विद्योपार्जन का होता है। अतः विद्यार्थी को अपनी चित्त-वृत्तियों को, अपनी इच्छाओं को वश में करना चाहिए जिससे वह पतित न हो जाय। विद्या और आत्म-संयम का सम्बन्ध है। जो विद्यार्थी अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रखता, जो विद्यार्थी अपने मन को नहीं रोक सकता, वह विद्या नहीं प्राप्त कर सकता। जो कभी इच्छा होने पर सिनेमा-हॉल जायगा, कभी मेले की सैर करने भागेगा, कभी नाच देखने जायगा, कभी ताश, शतरंज आदि खेलेगा, कभी गपशप उड़ायगा, कभी तमाशा देखने जायगा, वह क्या पढ़ेगा? विद्यार्थी को एक योगी के समान होना चाहिए। तभी वह विद्योपार्जन में सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं। उसे चाहिए कि मन को अपने वश में करके पढ़ने में लगाए और विद्याध्ययन को ही अपना आमोद-प्रमोद समझे।

विनय विद्यार्थी का आभूषण है। विद्यार्थी की शोभा विनय से होती है। प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिए कि वह विनम्र प्रकृति का हो। इससे वह अध्यापकों के स्नेह का, उनकी कृपा का पात्र हो सकेगा। विनय वह शक्ति है जिससे मनुष्यों की क्या कहें, परमेश्वर भी प्रसन्न किया जा सकता है। अध्यापकों की कृपा से वह सरलता से विद्योपार्जन के कार्य में सफल हो सकता है। विनय बिना विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती।

विद्यार्थी को आज्ञाकारी भी होना चाहिए। अपने अध्यापकों की आज्ञा का वह उसी प्रकार पालन करे जिस प्रकार माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है। ऐसा करने में अध्यापक उससे सदैव प्रसन्न रहेंगे, जिससे वह सरस्वती के प्रसाद का पात्र हो सकेगा। उनके आशीर्वाद से उसे जीवन में सफलता मिलेगी।

प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में अध्यापकों के प्रति आदर-भाव होना चाहिए। क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि जिस व्यक्ति से हम

कुछ सीखें उसे मस्तक नवायें ? क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि जो हमें मूर्ख से विद्वान् बनाये उसके प्रति श्रद्धा रक्खें ? बहुत से लड़के ऐसे होते हैं जो शिक्षकों की अवज्ञा करते हैं, उनका मजाक उड़ाते हैं; उनको अपशब्द कहते हैं और उनकी बुराई करते हैं। क्या वे कभी विद्या से विभूषित हो सकते हैं ? क्या विद्यादात्री उनसे प्रसन्न रह सकती है ? कदापि नहीं। ऐसे विद्यार्थी बार-बार परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते हैं और अपना जीवन स्वयं नष्ट करते हैं।

विद्यार्थी में जिज्ञासा का होना भी नितान्त आवश्यक है। उसके लिए उचित है कि वह अध्यापक से प्रश्न पूछ-पूछ कर अपनी शंकाओं का समाधान करता रहे। जिस विद्यार्थी में ज्ञान की पिपासा सर्वदा रहती है, जिस विद्यार्थी में कुछ-न-कुछ नई बात जानने की इच्छा सदा रहती है, वह ही सच्चा विद्यार्थी है। ऐसा विद्यार्थी शीघ्र ही अपनी उन्नति कर सकता है। उसका ज्ञान-भण्डार भी बहुत बढ़ जाता है। सफलता उसके द्वार पर खड़ी रहती है।

मस्तिष्क के कठिन परिश्रम से शरीर पर बुरा प्रभाव होता है, वह कमजोर हो जाता है। इसलिए विद्यार्थी को चाहिए कि शरीर को स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए कुछ-न-कुछ व्यायाम करता रहे। वह सर्वदा पुस्तकों का कीड़ा ही न बना रहकर यथाशक्ति और यथारुचि खेल-कूद में भी भाग ले। ऐसा करने से उसके शरीर को तो लाभ पहुँचेगा ही साथ में उसका मस्तिष्क भी अच्छा रहेगा। बहुत से विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो रात-दिन किताबों से चिपटे रहते हैं। वे न तो खेलते-कूदते हैं और न शुद्ध वायु में पर्यटन करते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके मुख पीले पड़ जाते हैं, नेत्रों को चश्मे की आवश्यकता होती है और उन्हें बार-बार अजीर्ण की शिकायत होती रहती है।

विद्यार्थी को मितव्ययी होना चाहिए। यह देखा जाता है कि बहुत से विद्यार्थी आजकल फैशन के गुलाम होकर अपने माँ-बाप

के रुपये फूकते हैं। सिनेमा, सिगरेट, नाच-रंग, क्रीम, पाउडर, तेल, इत्र, सूट, बूट आदि में न जाने कितनी फिजूल-खर्ची करते हैं। क्या यह लज्जा की बात नहीं है? जिन पैसों को उनके माता-पिता पसीने की कमाई से उपार्जन करते हैं उनको व्यर्थ उड़ाने में उन्हें लज्जा नहीं आती। क्या विद्यार्थी की शोभा फैशन से होती है? विद्यार्थी की शोभा परीक्षा में उच्च से उच्च स्थान पाने में है, जिससे उसका नाम होता है, उसका सम्मान होता है। विद्यार्थी को चाहिए कि वह कम से कम व्यय करके अपना काम चलाये और सादगी से रहे।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हमारे देश के विद्यार्थियों में उपर्युक्त गुण पाये जाते हैं? क्या वे सच्चे विद्यार्थी कह जा सकते हैं? नहीं। हमारे विद्यार्थी अधःपतित हैं—जहाँ जापान के विद्यार्थी नियन्त्रण से रहते हैं वहाँ हमारे विद्यार्थी नियंत्रण का उल्लंघन करने में ही अपनी शान समझते हैं। वे पूर्णतः अनुशासनहीन हैं। स्कूल की छुट्टी होने पर सड़क पर जाते हुए जापानी विद्यार्थियों को देखिये। यहाँ की सी धक्का-मुक्की, हू-हुल्लड़ और गाली-गलौज का वहाँ नाम भी नहीं मिलेगा। यहाँ तो क्लास से एक मिनट को अध्यापक चला जाता है तो क्लास में तूफान आ जाता है। आजकल हमारे विद्यार्थी उद्दण्ड भी देखे जाते हैं और अध्यापकों के प्रति उनके हृदय में कोई आदर-भाव नहीं होता। वे उन पर हाथ उठाने में भी लज्जित नहीं होते। जहाँ अमेरिका के विद्यार्थी स्वयं उद्योग करके अपना खर्च चलाते हैं, वहाँ भारतवर्ष के विद्यार्थी अपने माता-पिता पर भार-स्वरूप होकर रहते हैं। इस प्रकार रहकर भी वे फैशन की गुलामी नहीं छोड़ते। हमारे विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भी दो कौड़ी का नहीं होता। यदि हमारे विद्यार्थी उपर्युक्त गुणों को अपनाएँ तो उनकी दशा अवश्य सुधर जाय और वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करें।

———

विज्ञान की उन्नति से हानि-लाभ

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का विस्तार

(२) विज्ञान की उन्नति से लाभ—

(क) स्थान की दूरी कम होना, (ख) समय के अन्तर में कमी, (ग) रोगों की चिकित्सा में सहायता, (घ) मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति, (ङ) मनुष्य की सुख-सामग्री में वृद्धि, (च) विद्या-प्रचार में योग

(३) विज्ञान की उन्नति से हानियाँ

(क) जीवन नष्ट होने के सरल साधन, (ख) मशीनों के बाहुल्य से बेकारी बढ़ना, (ग) मनुष्य की आवश्यकता की वृद्धि, (घ) मनुष्य की विलासिता और सांसारिकता का बढ़ना

(४) उपसंहार—विज्ञान का महत्त्व

यह विज्ञान का युग है। संसार के कोने-कोने में विज्ञान की दुन्दुभी बज रही है। चारों ओर वैज्ञानिक आविष्कारों तथा अनुसंधानों की धूम मची हुई है। आजकल विज्ञान का बहुत प्रचार है और दिन-दिन अन्यान्य विषयों में उसका प्रवेश होता जा रहा है। इतिहास में विज्ञान का पर्याप्त प्रवेश हो चुका है। घटनाओं की परीक्षा विज्ञान की कसौटी पर की जाती है। समय का निश्चय विज्ञान के नियमों द्वारा किया जाता है। ज्योतिष-विज्ञान से ऐतिहासिक समय की जाँच की जाती है। चिकित्सा-क्षेत्र में विज्ञान ने उलट पुलट मचा दी है। एक्स-रे इसी की देन है। धर्म को भी इसी ने प्रभावित किया है, उसके अन्ध-विश्वासों और ढकोसलों का अन्त कर दिया है। सारी प्रकृति विज्ञान की क्रीड़ा-क्षेत्र बनी हुई है। भौतिक-विज्ञान (Physics) और रसायन-विज्ञान (Chemistry) तो इसके प्रधान अंग हैं। जीव-जन्तु-विज्ञान (Zoology), बनस्पति-विज्ञान (Botany), खगोल-विज्ञान (Astronomy), ज्योतिष

(Astrology) आदि इसके कई अन्य अंग भी है। सारांश यह है कि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है।

विज्ञान की इस उन्नति से समाज को हानि हुई है या लाभ? विज्ञान की इस उन्नति ने मानव-समाज के सुख में वृद्धि की है या कमी? इसमें सन्देह नहीं कि संसार को विज्ञान से बहुत लाभ हुए हैं। विज्ञान ने स्थान की दूरी कम कर दी है। रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि यात्रा के साधनों के कारण कोई भी स्थान दूर नहीं रह गया है। सब से तीव्रगामी बुलैट है जिसमें बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारियाँ हो रही हैं। प्राचीन काल में इन साधनों के न होने से यात्रा में अनेक आपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं, पर अब वे सब दूर हो गई हैं। आजकल तो विज्ञान के प्रताप से दूर स्थान भी घर-आँगन हो गया है।

विज्ञान ने समय के अन्तर को भी कम करने के प्रयत्न किये हैं। ऐसी-ऐसी मशीनों के आविष्कार हुए हैं जो क्षणभर में मनुष्य की अपेक्षा कई गुना काम कर डालती हैं। समाचार पहुँचाने के लिए विज्ञान ने बड़ी अच्छी व्यवस्था की है। इस कार्य में समय का अन्तर बहुत कम हो गया है। टेलीफोन द्वारा आगरे में बैठा हुआ मनुष्य न्यूयॉर्क या लंदन में बैठे हुए मनुष्य से उसी प्रकार बातचीत कर सकता है जैसे अपने निकट बैठे हुए मनुष्य से। एक की आवाज दूसरा सुनता है। समय के व्यतीत होने का पता ही नहीं चलता। बेतार का तार बात की बात में एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार पहुँचा देता है। रेडियो से इङ्गलैंड के भाषण को आगरे में बैठे-बैठे सुन लीजिये। धन्य है विज्ञान जिसने ऐसी आश्चर्यजनक बातें कर दिखाई हैं।

प्राणियों की चिकित्सा में विज्ञान ने बहुत सहायता दी है। नित्य नई-नई औषधियाँ निकल रही हैं। मानव-शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन हो रहा है। इंजेक्शन आदि चिकित्सा के नये-नये तरीके खोजे जा रहे हैं। एक्स-रे ने तो चिकित्सा क्षेत्र में महान् परिवर्तन कर दिया

है। इससे शरीर के भीतरी से भीतरी भाग का ठीक-ठीक परिचय प्राप्त किया जा सकता है। मान लीजिए, कोई बालक एक छोटा खिलौना निगल गया है और उसकी जान पर आ-बनी है। एक्स-रे उस खिलौने का अनुसंधान करके उसकी जान बचाता है। कोढ़ का इलाज एक्स-रे से होता है। चीड़-फाड़ के काम को भी विज्ञान ने पर्याप्त सहायता दी है। वस्तुतः शारीरिक पीड़ा और रोग को दूर करने के लिए इसने सराहनीय कार्य किया है।

मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ विज्ञान ने उसकी सुख-सामग्री में भी वृद्धि की है। नित्य काम में आने वाली वस्तुओं को सस्ता करने वाला विज्ञान ही है तीन पैसे की पच्चास सुइयाँ और दियासलाई की चालीस सीकें दिलाने वाला विज्ञान ही है। निब, बटन, कागज, पैंन्सिल, सुई दियासलाई आदि प्रतिदिन के काम की वस्तुएँ विज्ञान ही दे सकता है।

धनिकों के सुख-साधनों में विज्ञान ने बहुत वृद्धि की है। एक निर्धन मनुष्य भले ही ग्रीष्म-ऋतु में गर्मी के मारे तड़पता रहे, पर धनवान् मनुष्य के लिए विज्ञान ने बिजली के पंखे का प्रबन्ध कर दिया है। एक गरीब भले ही अपने घर में टिमटिमाता हुआ दीपक भी न जला सके, पर धनिक के लिए विज्ञान ने बिजली के जगमगाते हुए उज्ज्वल प्रकाश का इन्तजाम किया है। उसके सैर करने के लिए मोटर आदि सवारियों का निर्माण किया है। उसके मुँह की शोभा बढ़ाने के लिए सिगरेटों और क्रीम-पाउडरों का प्रबन्ध किया है। उसके आमोद-प्रमोद के लिए केमरा तथा तरह-तरह के वाद्य-यन्त्रों का विज्ञान द्वारा निर्माण हुआ है। हाँ, सिनेमा अवश्य ऐसा साधन है जिससे धनी अथवा निर्धन सभी का समान रूप से मनोरंजन होता है।

विज्ञान ने विद्या-प्रचार में भी योग दिया है। यद्यपि विद्या-प्रचार में बिना अध्यापकों के पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती, तो भी रेडियो ने इस कार्य में पर्याप्त सहायता पहुँचाई है। कई देशों में जनता का

शिक्षित करने के लिए रेडियो का प्रयोग हो रहा है। रेडियो के स्टेशन पर विद्वानों से विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिलाए जाते हैं और वहाँ से उनको चारों ओर प्रसारित किया जाता है। यह विज्ञान का ही प्रताप है कि अन्धे, बहरे और गूँगे शिक्षित किए जा रहे हैं, बलिहारी है विज्ञान की!

पर यह समझना भूल होगी कि विज्ञान से संसार को लाभ ही लाभ हुए हैं और हानियाँ कुछ भी नहीं हुई हैं। जहाँ विज्ञान ने मानव समाज का कल्याण किया है वहाँ उनका अहित भी किया है। जहाँ उसका सदुपयोग हुआ है वहाँ उसका दुरुपयोग भी हुआ है। आजकल ऐसे-ऐसे प्राण-नाशक यन्त्र विज्ञान ने बनाए हैं जो क्षणभर में अगणित प्राणियों की हत्या कर डालते हैं। बन्दूक और रिवाल्वर को जाने दीजिए; मशीनगन और डाइनामाइट से गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं। ऐसी-ऐसी गैसें आविष्कृत हुई हैं जिनमें साँस लेते ही मनुष्य के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। धिक्कार है विज्ञान को! जिसने नर-संहार के ऐसे उपाय निकाले हैं।

विज्ञान से दूसरी हानि यह हुई है कि मशीनों द्वारा क्रिया-शीलता के अनन्त गुनी हो जाने के कारण बेकारी बेतरह फैल गई है। एक मशीन सैकड़ों मनुष्यों के बराबर काम करती है। अतः जब से प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में मशीनों का प्रवेश हो गया है, तब से अगणित मनुष्यों की रोटियाँ छिन गई हैं। पहले प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करता था और पर्याप्त जीविका उपार्जन कर लेता था, पर अब मशीनों से सब घरेलू उद्योग-धन्धे उठ गए हैं। मशीनों की बनी हुई वस्तुओं की प्रतियोगिता में हाथ की बनी हुई वस्तुएँ कैसे ठहर सकती हैं? यही कारण है कि आजकल बेकारी की समस्या भीषण रूप धारण किए हुए है।

विज्ञान से तीसरी हानि यह हुई है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गई हैं। मनुष्य की शान्ति और सुख के लिए यह आवश्यक है कि उसकी आवश्यकताएँ सीमित रहें। अतः उनके बढ़ जाने और पूर्ति न होने से मानव-समाज आज दुःखी है।

विज्ञान से चौथी हानि यह हुई है कि मानव अधिक सांसारिक और विलासप्रिय हो गया है, आत्मा भुला दी गई है। विज्ञान ने अपने चमत्कारों द्वारा मनुष्य को उनमें फँसा लिया है। संसार का रंग-रूप इतना आकर्षक हो गया है कि कोई उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। बिजली के दमदमाते हुए शुभ्र प्रकाश और पंखा, मोटर, रेडियो, टेलीफोन, कैमरा, टेलीविजन, क्रीम, पाउडर, सिनेमा आदि अनेक वस्तुओं ने संसार को मोहकता प्रदान की है। विज्ञान ने इन्द्रियों के आनन्द के लिए ही ये साधन जुटाये हैं। इनमें वे शक्तिशाली तथा सजग हो गई हैं और मनुष्य को विलासिता की ओर अग्रसर कर रही हैं। आजकल संसार में मौज उड़ाना ही मानव-जीवन का उद्देश्य हो रहा है। 'Eat, drink and be merry' अर्थात् खाओ, पीयो और मौज उड़ाओ' की ध्वनि से आज विश्व प्रतिध्वनित हो रहा है। यदि कोई आत्मोन्नति-सम्बन्धी उपदेश देता है तो उसे कोई नहीं सुनता। धर्म के बन्धन ढीले पड़ गये हैं। मनुष्य उसके विरुद्ध आचरण करते हैं। वह धर्म जो एक दिन समस्त मानव जाति पर अखण्ड आधिपत्य जमाये हुए था, आज परों से कुचला जा रहा है, आज उद्दण्डता से तोड़ा जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान की उन्नति से जहाँ लाभ हुए हैं, वहाँ हानियाँ भी हुई हैं। विज्ञान ने जहाँ जीवन को मधुर बनाया है, वहाँ कटु भी बनाया है; जहाँ सुख के साधन जुटाए है, वहाँ दुःख के साधन भी उपस्थित किए हैं। उसने सत्य की खोज के कारण कार्य सम्बन्ध द्वारा अनेक बातों को प्रकाश में लाकर मानव-जाति के ज्ञान का विकास किया है और सबसे बड़ा काम किया है सुधार और प्रगति की रूप-रेखा का विधान।

हिन्दू समाज के दोष

(१) प्रस्तावना—हिन्दू-समाज की पूर्व और वर्त्तमान दशा

(२) हिन्दू-समाज के दोष—(क) स्त्रियों की दुर्दशा, (ख) शूद्रों की

दुर्दशा, (ग) जाति-पाँति, (४) वैवाहिक कुरीतियाँ, (ङ) धार्मिक अन्ध-विश्वास

(३) उपसंहार—भविष्य

"हिन्दू समाज सभी गुणों से आज कैसा हीन है,
वह क्षीण और मलीन है, आलस्य-दुख में लीन है।
परतन्त्र पद-पद पर विपद में पड़ रहा वह दीन है,
जीवन मरण उसका यहाँ अब एक दैवाधीन है।

सचमुच हिन्दू-समाज की वर्त्तमान दशा बहुत गिरी हुई है। एक वह समय था जब हिन्दू समाज विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में अपनी सानी नहीं रखता था और एक यह समय है जब इसमें इन सब बातों की शोचनीय दशा है। एक वह समय था जब हमारी जाति संसार की शिरोमणि थी और एक यह समय है जब इसका संसार में तुच्छ स्थान है। एक वह समय था जब हमारा समाज अच्छे से अच्छे गुणों से विभूषित था और एक यह समय है जब इसे तरह-तरह के दोषों ने अपना घर बना लिया है।

हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा दोष स्त्रियों की दुर्दशा है। संसार में शायद ही कोई ऐसा समाज हो जिसमें स्त्रियों की इतनी दुर्गति हो जितनी हिन्दू-समाज में है। न वे शिक्षित हैं और न उन्हें कुछ अधिकार प्राप्त हैं। उनकी स्थिति पुरुषों की काम-वासना तृप्ति के लिए ही है। वे पूर्णतया पुरुषों की गुलाम बनी हुई हैं। पुरुष उनके ऊपर अत्याचार करते हैं, उन्हें मारते-पीटते हैं, उनके साथ बलात्कार करते और वे अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं। उनमें पर्दे की कुप्रथा प्रचलित है जिससे उनका स्वास्थ्य खराब रहता है और वे अकाल ही काल के गाल में पहुँच जाती हैं। आभूषण-प्रियता से भी उन्हें हानि होती है। लुटेरे और डाकू कभी-कभी आभूषणों के साथ उनकी जान तक ले लेते हैं। बाल्यावस्था में ही उनको अपरिचित व्यक्तियों के गले मढ़ दिया जाता है जिससे अपरिपक्वावस्था में ही वे माता बन जाती हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर सदैव के लिए बुरा प्रभाव

पड़ता है। हिन्दू-समाज में पुरुषवर्ग को तो एक पत्नी के रहते हुए भी अनेक विवाह करने का अधिकार प्राप्त है, पर स्त्री-वर्ग के लिए भाँवर पड़ते ही यदि वैधव्य हो जाय तो भी सिवाय ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन व्यतीत करने के और कोई चारा नहीं। इसका परिणाम व्यभिचार होता है। हिन्दू-समाज में स्त्रियों को धनाधिकार भी नहीं है। नारी जाति की ऐसी दुर्दशा से हिन्दू-समाज को भारी हानि हुई है। यदि अब भी उनकी दशा में सुधार नहीं हुआ तो हमारा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। स्त्रियाँ माता रूप में हमारी गुरु और पत्नी रूप में हमारी परामर्श-दात्री हैं।

हिन्दू-समाज में अन्य दोष शूद्रों की दुर्दशा है। हमारे समाज ने अपने इस अङ्ग की बड़ी उपेक्षा की है। इसको सड़ा-गला समझ कर घृणा की दृष्टि से देखा है। ब्राह्मण, क्षत्रियों और वैश्य शूद्रों को छूते तक नहीं। उनको छूने से वे अपवित्र हो जाते हैं। क्या मांस और विष्टा तक खाने वाले जीव-जन्तु उनसे पवित्र हैं? यदि नहीं तो फिर क्यों अपने को उच्च कहने वाले लोग उन्हें स्पर्श करते हैं? क्यों शुद्ध भोजन करने वाले शूद्र को छूने में उन लोगों को आपत्ति है? धिक्कार है हिन्दू-समाज को! उच्चता के अभिमानी एवं धर्म के ठेकेदार शूद्रों को कुओं से पानी तक नहीं लेने देते, मन्दिरों में घुसने नहीं देते, विद्यालयों में शिक्षा नहीं प्राप्त करने देते और सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित नहीं होने देते। इस प्रकार के अत्याचार शूद्रों के साथ सैकड़ों वर्षों से हो रहे हैं और वे शान्ति-पूर्वक सब कुछ सहे जा रहे हैं। धन्य है उनकी सहिष्णुता!

हिन्दू-समाज में जाति-पाँति का दोष भी विद्यमान है। पहले तो आवश्यकता के कारण केवल चार जातियाँ बनी थीं पर अब असंख्य जातियाँ हो गई हैं! आजकल तो व्यवसाय के अनुसार जातियाँ बनती जा रही हैं। जो लोहे का काम करता है उसकी जाति लुहार और जो सोने का काम करता है उसकी जाति सुनार हो गई है। शायद पढ़ाने वालों की भी भविष्य में पृथक् जाति बन जाय। प्राचीन

काल में जातियों की आवश्यकता थी, पर अब नहीं है। आजकल जाति-पाँति का झंझट हिन्दू-समाज को टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त किए हुए है, एक समाज को कई समाजों में बाँटे हुए है। इससे समाज की उन्नति में बड़ी बाधा हुई है। खान-पान का परहेज, विवाहों का संकुचित घेरा, छूआ-छूत आदि बातों से हिन्दू-समाज में संगठन का अभाव है। कभी-कभी जातियाँ पारस्परिक विद्वेष का भी कारण बन जाती हैं। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से शत्रुता रखने लगते हैं।

हमारे समाज में कई वैवाहिक कुरीतियाँ भी देखी जाती हैं। यह भी समाज का बड़ा दोष है। विवाह एक पवित्र संस्कार है। इसी पर गृहस्थाश्रम के सुख-दुःख अवलम्बित हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण संस्कार द्वारा जीवन भर के लिए बँधने वाले दो व्यक्तियों—पुरुष और स्त्री—की इच्छा-अनिच्छा का पता नहीं लगाया जाता। क्या पता, लड़की उस लड़के को, जिसके साथ उसका विवाह हो रहा है, न चाहती हो। क्या पता, लड़का उस लड़की को जिसके साथ उसकी शादी हो रही है, न पसन्द करता हो। फिर दोनों में से प्रत्येक एक-दूसरे की रुचि, स्वभाव आदि से अनभिज्ञ रहता है। ऐसी दशा में माता-पिता द्वारा दोनों का आजन्म बन्धन कभी-कभी कैसा अनर्थकारी होता है, यह सभी जानते होंगे। उनका गृहस्थ-जीवन कलहपूर्ण हो जाता है, वे तलाक द्वारा अपना सम्बन्ध विच्छेद भी तो नहीं कर सकते। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह भी बुरे हैं। इनसे एक ओर विधवाओं की संख्या बढ़ती है और दूसरी ओर शक्तिहीन सन्तानों से समाज में बल-बुद्धि का ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त दहेज की कुप्रथा बड़ी निन्दनीय है। यह हमारे समाज का कलंक है। लड़की के माता पिता लड़के के माता पिता को बहुत सा धन देते हैं। इससे हमारे समाज में लड़कियों का जन्म बुरा समझा जाता है। कोई नहीं चाहता कि उसकी सन्तान लड़की हो। यह लिखते हुए हृदय काँपने लगता है कि कहीं-कहीं किसी-किसी जाति में लड़की

की जन्मते ही हत्या कर दी जाती है। धिक्कार है हिन्दू-समाज को! अपने ही दोष के कारण निर्दोष बालिका का प्राण लेता है। लड़की कब चाहती है कि विवाह में दहेज दिया जाय? यह हमारे ही समाज का दोष है कि दहेज की कुप्रथा प्रचलित है। विवाह में लड़की वाला और लड़के वाला दोनों अन्धे होकर धन का अपव्यय करते हैं। ऋण लेकर भी विवाह करते हैं, जिससे सत्यानाश की नींव पड़ती है।

हिन्दू-समाज में धार्मिक अन्ध-विश्वास और ढकोसले भी बहुत हैं। लोग बिना विचार किये हुए धर्म-सम्बन्धी अनेक बातों में विश्वास करते हैं। उनकी सत्यता की ढूँढ़-खोज नहीं करते। वे चन्द्र-ग्रहण अथवा सूर्य-ग्रहण को राहु राक्षस द्वारा चन्द्रमा अथवा सूर्य देवता का ग्रसना समझते हैं और ग्रहण के समय चन्द्रमा अथवा सूर्य की मुक्ति के लिए भगवान की पूजा और दान-पुण्य करते हैं। यह धार्मिक अन्ध-विश्वास नहीं, तो क्या है? ग्रहण की सत्यता तो यह है कि चन्द्रमा अथवा सूर्य पर पृथ्वी की छाया पड़ती है। रोग का कारण देवताओं का प्रकोप समझा जाता है। इस प्रकार के अनेक अन्ध-विश्वास हमारे समाज में प्रचलित हैं। धर्म के ढकोसलों के कारण कितने ही पाखण्डी साधुओं की पूजा होती है। ये साधू कुछ काम-काज नहीं करते और समाज पर भार-स्वरूप हैं। अनेक देवी देवताओं की आराधना की जाती है, उनकी सन्तुष्टि के लिए बलि चढ़ाई जाती है। भोपों, पीरों, और सयानों से गण्डे तथा ताबीज बनवाकर उनके द्वारा देवी-देवताओं को प्रसन्न करके रोगों की मुक्ति के प्रयत्न किए जाते हैं।

सारांश यह है कि हिन्दू-समाज में अनेक दोष हैं, जिनमें उपर्युक्त दोष प्रधान हैं। हर्ष का विषय है कि शिक्षा के प्रचार से हमारा समाज दिन-प्रति दिन दोष-मुक्त हो रहा है और हमें आशा है कि कुछ दिन में यह अपने कलंकों से मुक्त होकर संसार में अपना मुख उज्ज्वल करेगा।

———

'साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप'

(१) प्रस्तावना—सत्य और झूठ के स्वरूप

(२) सत्य बड़ा तप है—

(क) पवित्रता और आत्मोन्नति, (ख) चरित्र-निर्माण,

(ग) प्रतिष्ठा और सुख

(३) झूठ बड़ा पाप है—

(क) आत्मिक-पतन, (ख) चरित्र-भ्रष्टता, (ग) निन्दा और दुःख

(४) कुछ सत्यवादी व्यक्तियों के उदाहरण

(५) उपसंहार—हमें सत्यवादी होना चाहिए

किसी बात को जिस रूप में देखा, या सुना, या अनुभव किया जाय, उसे उसी रूप में कह देना सत्य बोलना कहलाता है और उसी रूप में न कहना झूठ बोलना कहलाता है। सत्य में यथार्थता रहती है और झूठ में यथार्थता का अभाव रहता है।

यह कहना कि सत्य के बराबर अन्य कोई तप और झूठ के बराबर अन्य कोई पाप नहीं है, अत्युक्ति मात्र है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि सत्य बड़ी तपस्या है और झूठ बड़ा पाप है। सत्य की सुरसरी में मज्जन करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। उसके हृदय की कलुषता जाती रहती है। आत्मा को शान्ति मिलती है। तपस्वी कभी-कभी अपने पद से गिर जाता है, पर सत्यवादी कभी पदच्युत नहीं होता। सत्य बोलने से आत्मा उत्तरोत्तर उच्चता की ओर अग्रसर होती है और सत्य-स्वरूप भगवान में लय हो जाती है।

तप की भाँति सत्य बोलने से चरित्र का निर्माण होता है। नियंत्रण की भावना दृढ़ होती है, चित्त-वृत्तियों का निरोध होता है। सत्यवादी का स्वभाव सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। उसमें निडरता, साहस, सहनशक्ति, त्याग, धैर्य आदि गुण पाये जाते हैं। इन गुणों से वह संसार का बहुत हित करता है। महात्मा गाँधी को लीजिये। सत्य बोलने के

कारण उनका स्वभाव कितना अच्छा हो गया था। संसार का उन्होंने कितना अधिक हित किया।

तपस्या के समान सत्य से संसार में प्रतिष्ठा और सुख मिलता है। जैसे तपस्वी का, साधु-महात्मा का, मनुष्य सम्मान करते हैं वैसे ही सत्यवादी का भी स्थान-स्थान पर आदर होता है। जहाँ कहीं वह जाता है वहीं झोंपड़ी से लेकर महल तक के रहने वाले उसे मस्तक नवाते हैं। सत्यवादी का जीवन सुखी रहता है। अन्य लोग जिसे दुःख समझते हैं सत्यवादी उसे दुःख नहीं समझता। वास्तव में साधारण मनुष्यों से वह बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसके दुःख-सुख साधारण मनुष्यों के दुःख-सुखों से भिन्न होते हैं।

जिस प्रकार सत्य बोलना बड़ी तपस्या है, उसी प्रकार झूठ बोलना बड़ा पाप है इससे आत्मिक पतन होता है, आत्मा की शक्ति कम हो जाती है। मिथ्या भाषण से आत्म-वंचना होती है, आत्मा को दबाना पड़ता है। धीरे-धीरे वह मृतप्राय हो जाती है। यही दशा पाप करने से होती है।

आत्मा के मृतप्राय होने से चरित्र-भ्रष्टता आती है। मनुष्य को भले काम में संलग्न करने वाली आत्मा होती है और वही उसे बुरा कार्य करने से रोकती है। प्रायः लोग कहा करते हैं—भाई, इसे करने के लिए हमारी आत्मा सम्मति नहीं देती, यह काम बुरा है। जब आत्मा मर-सी जाती है तब मनुष्य को कोई रोकने वाला नहीं रहता और बुरे-बुरे कार्य करने लगता है, जिससे उसका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है उसमें बुरे से बुरे दोष अपना अड्डा जमाते हैं।

पापी की तरह झूठ बोलने वाले की भी संसार में निंदा होती है। उससे सब लोग घृणा करते हैं। कोई उस पर विश्वास नहीं करता, स्थान-स्थान पर उसे नीचा देखना पड़ता है। मनुष्य मनुष्य की उसे दुतकार और फटकार सहनी पड़ती है। जिस घर में वह

पैदा होता है उसे कलंक लगता है। झूठ बोलने वाला सदैव दुःखी रहता है यदि कभी झूठ बोल कर सुख भी पा ले तो अन्त में उसकी कलई खुले बिना नहीं रहती। फिर उसकी बड़ी दुर्दशा होती है।

हमारे देश में कई सत्यवादी व्यक्ति हुए हैं जिनका यश-मयंक आज तक विश्व को आलोकित कर रहा है। महाराज हरिश्चन्द्र के नाम को कौन नहीं जानता? उन्होंने सत्य पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, यहाँ तक कि स्वयं चाण्डाल के हाथ बिके। अपनी इस महान् तपस्या के फल-स्वरूप वे निःसन्देह स्वर्ग के अधिकारी हुए। महाराज दशरथ के लिये सत्य प्राणों से भी अधिक प्यारा था। उसके लिए उन्हें पुत्र वियोग सहना पड़ा और अन्त में प्राण भी छोड़ने पड़े। महात्मा गाँधी भी सत्य के पुजारी थे। सत्य की आराधना करके उन्होंने अपनी आत्मा को बहुत उन्नत कर लिया और विश्व-भर में अपनी धाक जमा ली। यह उनके सत्य रूपी तप का ही प्रभाव है कि संसार उनका इतना आदर करता है।

अतः हमें चाहिए कि हम सत्यभाषी बनें। तभी हम ईश्वर की सच्ची भक्ति, सच्ची तपस्या कर सकते हैं, तभी हम संसार में आचरण की सभ्यता प्राप्त कर सकते हैं। तभी हम विश्व में प्रतिष्ठा के पात्र हो सकते हैं। वस्तुतः सत्य बोलना तप है, झूठ बोलना पाप। सत्य ईश्वर से मिलाने वाला है, झूठ नरक के कुत्तों से। सत्य से उत्थान होता है, झूठ से पतन। सत्य अमृत है, झूठ विष। सत्य जीवन है, झूठ मृत्यु।

स्वावलम्बन

(१) प्रस्तावना—स्वावलम्बन का महत्त्व

(२) स्वावलम्बन से लाभ

(क) उन्नति, (ख) सुख और शांति, (ग) आत्म-संस्कार, (घ) यश

(३) स्वावलम्बन से देश तथा समाज का हित
(४) कुछ स्वावलम्बी व्यक्तियों के उदाहरण
(५) उपसंहार—हमें स्वावलम्बी होना चाहिए

"स्वावलम्ब की एक झलक पर,
न्यौछावर कुबेर का कोष।"

सचमुच स्वावलम्बन एक स्वर्गीय गुण है। जिसमें यह गुण विद्यमान है उसके समक्ष कुबेर का कोष तुच्छ है। जिसमें यह गुण है उसके सामने कठिनाइयों के पहाड़ चूर-चूर हो जाते हैं। जिसमें यह गुण है वह जल में तूँबी के समान सब के ऊपर रहता है। शरीर-बल, सैन्य-बल, प्रभुता-बल, कुलीनता-बल, धन-बल, मित्र-बल इत्यादि जितने बल हैं, वे सभी स्वावलम्बन के बल के आगे फीके पड़ जाते हैं। अमेरिका, जापान, इङ्गलैंड आदि देश जिनके भाग्य का सितारा आज सातवें आसमान पर चमक रहा है, जो आज मनुष्य जाति के सिरताज हो रहे हैं, स्वावलम्बन के कारण ही इतने ऊँचे उठे हैं। भारतवर्ष की जो वर्त्तमान अधोगति देखी जाती है उसका दायित्व स्वावलम्बन के अभाव पर ही है। आजकल हम आलसी बनकर परमुखापेक्षी हो गए हैं।

'God helps those who help themselves' अर्थात् ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। स्वावलम्बन उन्नति का सच्चा रहस्य है, उन्नति की दृढ़ भित्ति है, उन्नति की एक-मात्र कुञ्जी है। जो मनुष्य अपने हाथों से अपना कार्य करता है, वह अवश्य ऊँचा उठता है। जो मनुष्य भाग्य पर ही रहता है, वह अपनी दशा में कुछ भी सुधार नहीं कर सकता; प्रत्युत् उसका अधःपतन होता है। संसार में ऐसा कौनसा कार्य है जिसे स्वावलम्बी व्यक्ति न कर सके? संसार में ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे स्वावलम्बी व्यक्ति न प्राप्त कर सके!

उन्नति के साथ-साथ स्वावलम्बन की शरण में जाने से मनुष्यों को सुख भी मिलता है। जब किसी कार्य में स्वावलम्बन द्वारा सफलता मिलती है तब हृदय उल्लास से भर जाता है और यदि सफलता नहीं भी मिलती तो इस बात का सन्तोष रहता है कि हमने अपना कर्त्तव्य किया और परिश्रम से मुख न मोड़ा। इससे शान्ति मिलती है। स्वावलम्बी व्यक्ति का जीवन सदैव सुखी रहता है। उसे न तो रोटी की समस्या सताती है और न वस्त्रों की। जो अपने पैरों पर खड़ा होगा, जो अपने हाथों से खूब काम करेगा, वह क्या कभी भूखा या नङ्गा रह सकता है? दुःखी तो वही रहेगा जो दूसरों का मुँह ताकेगा, जो अपने हाथ-पैर नहीं हिलायेगा।

स्वावलम्बी मनुष्य अपना आत्म-संस्कार भी कर सकता है वह परिश्रम की अग्नि से अपनी आत्मा को स्वर्ण की भाँति निखार सकता है। आत्म-निर्भरता से आत्म-दमन, दृढ़ता, धैर्य, अध्यवसाय आदि उत्कृष्ट गुणों की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य अपनी आत्मा का उत्तरोत्तर विकास करता हुआ अपना कल्याण करता है।

स्वावलम्बी व्यक्ति की प्रशंसा होती है। वह कठिन से कठिन कार्य का सम्पादन करने में कृतकार्य होता है, अतः संसार उसका लोहा मानता है। वह अपने बाहुबल एवं मस्तिष्क के सहारे अनुपम उन्नति कर दिखाता है। इससे लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और वे उसका आदर करते हैं। माता-पिता अपने बालकों को उसका अनुकरण करने की शिक्षा देते हैं। आजीवन तो वह प्रशंसा का पात्र रहता ही है, मृत्यु के पश्चात् भी उसकी यश-चन्द्रिका विश्व में अपना निर्मल तथा सुशीतल प्रकाश विकीर्ण करती रहती है।

यह नहीं कि स्वावलम्बन से मनुष्य अपना ही भला कर सकता है, अपना ही हित-साधन कर सकता है, वरन् वह देश और समाज की दशा भी सुधार सकता है, देश तथा समाज का मुख उज्ज्वल कर सकता है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक कौन पैदा करता है?

बड़े-बड़े सुधारक कौन उत्पन्न करता है ? बड़े बड़े विद्वानों को कौन जन्म देता है ? बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का जनक कौन है ? स्वावलम्बन ! स्वावलम्बन !! स्वावलम्बन !!! कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं व्यक्तियों से समाज और देश उन्नत एवं समृद्धिशाली बनते हैं। अमेरिका, इङ्गलैंड, जापान, रूस आदि देश इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

विश्व का इतिहास स्वावलम्वी आत्माओं की गौरवपूर्ण गाथाओं से जगमगा रहा है। नैपोलियन के नाम को कौन नहीं जानता ? कैसी निम्न स्थिति से ऊपर उठकर वह महान् विजयी हुआ। रैमजे मैकडानल्ड भी मजदूर से इंगलैंड का प्रधान मन्त्री बन गया। हमारे देश में भी शिवाजी ने अपने पैरों पर खड़े होकर मुगल-सम्राट् औरंगजेब को नाक-चने विनवा दिए। महात्मा गाँधी ने आत्म-निर्भरता के प्रबल प्रताप से विश्व को हिला दिया।

सारांश यह है कि प्रत्येक देश या जाति में बल, गौरव, समृद्धि आदि का सच्चा द्वार स्वावलम्बन है। हम लोगों में इस दिव्य गुण का अभाव है। हमारी वर्त्तमान दुर्गति इसी का परिणाम है, हम अपने आप अपनी सहायता नहीं करते। यही कारण है कि हम पराधीन हैं, हम दरिद्र हैं। न हममें बल है, न हममें शक्ति। हमें चाहिये कि हम स्वावलम्बन का महामन्त्र जपें, जिससे हमारा देश, बल, विद्या और धन से सम्पन्न हो और हम आनन्द के वायु-मण्डल में साँस लें।

किसी रमणीक स्थान का वर्णन

(श्रीनगर)

(१) प्रस्तावना—प्रकृति सौंदर्य और कश्मीर
(२) श्रीनगर
(३) शङ्कराचार्य नामक पर्वत का शिव-मन्दिर

(४) प्राचीन मन्दिर और मसजिदें
(५) डल-झील
(६) शालीमार और निशात बाग
(७) उपसंहार—सारांश

कश्मीर पृथ्वी का स्वर्ग है। वहाँ प्रकृति का रम्य-रूप किसके मन को मोहित नहीं करता ? वहाँ सूर्य की किरणों से चमकते हुए हिमाच्छादित शैल-शृङ्गों में, जल-प्रपातों से निनादित वन-प्रदेशों में, मंजु कुञ्जों में, विमल-जल-राशि के कमनीय कलेवरों में, मनोरम उद्यानों में इतनी सामर्थ्य है कि वे दर्शक के नेत्रों को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। कश्मीर में जहाँ देखिए वहीं सौंदर्य का साम्राज्य है। प्रकृति-नायिका चारों ओर मुस्करा रही है।

कश्मीर की राजधानी श्रीनगर बड़ी सुन्दर है। वह बितस्ता (झेलम) के किनारे पर बसी हुई है। नदी के दोनों तटों पर मकान हैं। नदी का प्रवाह बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा है जिससे वह देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। उसमें इधर-उधर घूमती हुई नाव के दृश्य मन को हरते हैं। उसके किनारे बाग़ बनाकर क्लब और अतिथि घर बनाये गये हैं। वहीं पर बहुत सी दुकानें हैं। श्रीनगर में सात पुल हैं जो आजकल जीर्ण-शीर्णावस्था में हैं। शहर में पर्याप्त गन्दगी रहती है। मकान छोटे-छोटे लकड़ी के बने हैं। दुकानों पर मांस बहुत बिकता है, इसका कारण मुसलमानों की ८५ प्रतिशत जनसंख्या है। शहर के भीतरी भाग कुछ भी आकर्षक नहीं। शहर के प्रायः सभी सुन्दर स्थान बाहर हैं। हाँ, नगर के मध्य राजा का महल अवश्य सुन्दर है। शहर के ऊपरी भाग में लालमण्डी नामक स्थान पर पुस्तकालय और अजायबघर है। पुस्तकालय साधारण है। अजायबघर अच्छा है और उसमें कश्मीरी कला-कौशल के सुन्दर नमूने देखे जा सकते हैं। श्रीनगर में एक कॉलेज भी है जिसे प्रताप कॉलेज कहते हैं।

नगर के समीप शंकराचार्य नामक पर्वत है। उस पर्वत पर एक बड़ा मनोहर शिव मन्दिर बना हुआ है। उस पर्वत से एक ओर बर्फ से ढके हुए गिरि-शृङ्गों का एक दृश्य और दूसरी ओर नागिन की भाँति बल खाती हुई झेलम नदी को देखकर कौन हर्षित न होगा? एक ओर श्रीनगर शहर और दूसरी ओर डल-झील किसके मन को न मोह लेगी? शिव-मन्दिर बहुत प्राचीन है। उसकी इमारत तो अधिक सुन्दर नहीं, पर पहाड़ के नीचे चारों ओर के दृश्य उसे अनुपम छवि प्रदान करते हैं। उस मन्दिर में केवल हिन्दू जा सकते हैं।

श्रीनगर एक प्राचीन नगर है। उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों की संस्कृति का मेल पाया जाता है। वहाँ बहुत-से प्राचीन मंदिर और मसजिदें हैं। शंकराचार्य पर्वत के नीचे शंकर-मठ है। उसे श्री शंकराचार्य ने स्थापित किया था। उस स्थान को दुर्गानाग मंदिर भी कहते हैं। श्रीनगर के चौथे पुल के पास नदी के दक्षिणी किनारे पर महा-श्री का मंदिर है। उस मंदिर के पाँच शिखर हैं। अब वह मंदिर श्मशान हो गया है। तीसरे पुल के निकट शाह हमदम की मसजिद है। वह देवदारु की लकड़ी से बड़ी सुन्दर बनी है। उस मसजिद के एक कोने में पानी का एक सोता है। कहते हैं कि वह एक हिन्दू-मंदिर को तोड़कर बनाई गई थी। नूरजहाँ की बनवाई हुई एक पत्थर की मसजिद भी है। उसमें कोई मुसलमान नमाज नहीं पढ़ता क्योंकि उसे स्त्री ने बनवाया था। शहर के पास हरिपर्वत नामक एक पहाड़ी है। उस पर देवी का एक मंदिर बना हुआ है। पहाड़ी के पूर्वी भाग पर मुसलमानों की जियारतें हैं जो मंदिरों को तोड़ कर बनाई गई हैं। पहाड़ी के दक्षिणी भाग में एक शिला पर गणेशजी की मूर्ति बनी हुई है।

डल-झील का दृश्य बड़ा मनोहर है। उसके किनारों पर चिनार और बेंत के वृक्ष लगे हैं। इधर-उधर हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों

का दृश्य बड़ा अच्छा लगता है। जल में वृक्षावली और शिखरों के प्रतिबिम्ब नेत्रों को आनन्द देते हैं। दर्पण के समान निर्मल जल में जलचरों की क्रीड़ाएँ सुहावनी लगती हैं। गुलाबी कमल-समूह से झील की धारा सुशोभित हो जाती है। पत्तों के साथ मोती के समान जल-विन्दुओं का खेल मन को रिझाता है। प्रातःकाल किसी नाव में बैठकर कमलों की सुगन्ध से सुगन्धित और प्राकृतिक सौंदर्य से सुसज्जित डल के वक्षःस्थल पर सैर कीजिये। फिर देखिए कैसा अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। झील में नर-नारियों की जल-क्रीड़ाएँ भी देखी जाती हैं। जल पर तैरते हुए हरे-भरे खेत बड़े मनोरंजक हैं। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय डल में अद्भुत शोभा हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य झील में अपना सौंदर्य देख-देखकर गुलाबी हास्य हँस रहा है। चाँदनी रात्रि में तो झील के वक्षःस्थल में अनुपम सौंदर्य की सृष्टि होती है। चन्द्रमा और नक्षत्रों से युक्त नीले आकाश का प्रतिबिम्ब श्वेत जल में अनिर्वचनीय छटा प्रदर्शित करता है।

श्रीनगर में शालीमार और निशात बाग की शोभा दर्शनीय है शहर के समीप डल-झील के तट पर उन उपवनों की समानता करने वाले उद्यान संसार भर में अन्य किसी स्थान पर नहीं हैं। शालीमार उद्यान की रचना मुगल सम्राट जहाँगीर ने अपने आमोद-प्रमोद के लिये की थी। उसमे फुब्बारों और कृत्रिम जल-प्रपातों की शोभा बड़ी अच्छी है। सम्राट जहाँगीर जब कश्मीर जाता था तब शालीमार में ही निवास करता था। जहाँगीर ने इसमें काले संगमरमर की बहुत सुन्दर बारहदरी बनवाई थी जो अब तक देखी जाती है। वह हरे-भरे वृक्षों, चाँदी सी श्वेत जल-धाराओं और फुब्बारों से आच्छादित बड़ी रमणीक लगती है। उद्यान अत्यन्त चित्ताकर्षक है। वृक्षावली, मुकुलित पुष्प-राशि, लतावितान, पक्षियों का कलरव, जल-प्रपात, फुब्बारे और इमारतें देखकर मन को जो आनन्द होता है वह वर्णन नहीं किया जा सकता। आसपास के

प्राकृतिक दृश्य उसकी सौन्दर्य वृद्धि करते हैं। पहाड़ों की हिमाच्छादित चोटियाँ और डल-झील उसे घेरे हुए हैं। निशात बाग भी शालीमार की तरह डल-झील पर ही स्थित है। उसे नूरजहाँ के भाई आसफखाँ ने बनवाया था। इसमें भी अनेक जल-स्रोत और फुव्वारे हैं जिनसे उद्यान की शोभा कई गुनी बढ़ गई है। वृक्ष-लतादि का निराला ही आकर्षण है, पर वह शालीमार के समान सुन्दर नहीं है।

सारांश यह है कि श्रीनगर भारतवर्ष का ही नहीं विश्व का एक रमणीक स्थान है। वहाँ के उद्यान, वहाँ का झील, वहाँ की नदी, वहाँ के गिरि-शृंग, वहाँ के स्त्री-पुरुष—सभी सुन्दरता की मूर्ति हैं। 'पाठकजी' ने श्रीनगर की शोभा के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै।
पुलिन-भौन-प्रतिबिम्ब सलिल शोभा मन मोहै॥
लसत 'कदल' पुल सप्त, चपल नौकागनि डोलैं।
रूपरासि नर नारि वारि विच करत कलोलैं॥"

बूढ़े का विनोदपूर्ण वर्णन

(१) प्रस्तावना—मनुष्य की अवस्थाएँ
(२) बूढ़े का शरीर
(३) बूढ़े के वस्त्र
(४) बूढ़े का स्वभाव, चेष्टाएँ आदि
(५) उपसंहार—बूढ़ा विनोद की सामग्री

मनुष्य की तीन अवस्थाएँ होती हैं—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। तीनों में मनुष्य की आकृति विभिन्न हो जाती है। जब वह बालक होता है तब उसके मुख से लार बहती है और नाक से रेंट निकलता है। शरीर कभी धूल-कीचड़ में लिपटा रहता है और कभी वस्त्राभूषण से सुसज्जित। कभी मुख से दही-चावल लिपटे

रहते हैं और कभी दाल-साग। युवावस्था में मनुष्य की आकृति अच्छी हो जाती है; न तो मुख गन्दा रहता है और न शरीर। शारीरिक गठन से उसमें सुन्दरता आ जाती है।

वृद्धावस्था में फिर शरीर में परिवर्तन होता है। वह सूखकर ठूँठ जैसा हो जाता है। नसें तातों का रूप धारण कर लेती हैं। चमड़ा हड्डियों से चिपट जाता है, मानों उसे यह भय है कि कहीं अन्तिम समय में वहनों से साथ न छूट जाय। बाहें और टाँगें मसहरी के बाँसों से ईर्ष्या करने लगती हैं। खोपड़ी पर यत्र-तत्र सफेद बालों के समूह जंगल में सूखी घास के स्थल से प्रतीत होते हैं। शरीर की झुरियाँ साड़ी की सिलवटें सी लगती हैं। जब खोपड़ी के बाल छिल जाते हैं तो वह म्यूनिसिपेलिटी की सपाट सड़क हो जाती है। दाढ़ी ऐसी लगती है मानो चूहों ने चुन ली हो। मूछें मुख-गृह के दो छप्पर हैं अथवा फूले हुए काँस की दो अवलियाँ। आँखें गुफा में घुसकर तपस्या करती हैं। दाँत-रहित मुख क्या है—पिचकी हुई फुटबाल है। जब बुड्ढा कुछ खाता है तब उसके मुख की शोभा का क्या कहना? साक्षात् बन्दर लगता है। डगमगाती हुई गर्दन नाचती और हाव-भाव दिखाती हुई नायिका को मात करती है। नाक और ठुड्डी को मिलाने के लिए मुख रास्ता साफ कर देता है। उसके भीतर घुसने से दोनों बहिनें बे रोक-टोक मिलती हैं। कमर झुककर संसार को प्रणाम करती है, वह इन्द्र धनुष अथवा द्वार की महराब सी बन जाती है। मुख से लार बहती है जो ऐसी प्रतीत होती है मानो हिमालय से गंगा की धार निकल रही हो। सारा शरीर ऐसा लगता है जैसा आग की लपटों से झुलसा हुआ मैदान का वृक्ष।

बूढ़े के वस्त्र भी अनोखे होते हैं। घुटनों तक की सफेद धोती से ढकी हुई टाँगें ऐसी लगती हैं मानो मकान के खम्भों को आधा-आधा सफेदी से पोत दिया हो। अँगरखा ऐसा प्रतीत होता है मानो कठपुतली का सफेद कपड़े का घाँघरा है। पगड़ी का तो कहना ही

क्या ! सिर पर ऐसी लगती है जैसे हिमालय की चोटी पर बर्फ अथवा घसियारे के सिर पर घास की पोटली। बुड्ढे का वस्त्राभूषित शरीर शहर का घण्टाघर लगता है।

बूढ़े का स्वभाव चिड़चिड़ा होता है। बात-बात पर वह चिढ़ जाता है। जिस समय वह चिढ़ता है उस समय उसकी आकृति दर्शनीय होती है। मुख का विचित्र रूप हो जाता है। वह भिड़ों का छत्ता सा लगता है। बैठी हुई आँखों से अग्नि की सी चिनगारियाँ निकलती हैं। होठ लत्तों के समान लपालप हिलने लगते हैं। बूढ़े में तृष्णा ऐसी जोरदार होती है जैसे वर्षा ऋतु में नदी। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। बुद्धि काम नहीं करती। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। पोपले मुख से बार-बार प्रयत्न करने पर भी स्पष्ट शब्द नहीं निकलते। वाणी ऐसी कर्ण-कटु होती है जैसे फटे बाँस की ध्वनि। बुड्ढा लठिया के सहारे इस प्रकार चलता है जिस प्रकार रेतीले मार्ग में छकड़ा। सदा खखारता हुआ ऐसा प्रतीत होता है जैसा भप्-भप् करता हुआ स्टीम ऐंजिन। रात्रि में जगाने के लिए उसका खखारना घड़ी के अलार्म का काम करता है।

निस्सन्देह बूढ़ा संसार के विनोद की अच्छी सामग्री है। बूढ़े की आकृति और चेष्टाएँ देखकर किसे हँसी न आएगी? अतः इस दृष्टि से वृद्ध पुरुषों से मनुष्य-समाज का काफी हित होता है। बूढ़े का वर्णन मनुष्यों का मनोरंजन है। पं० प्रतापनारायण मिश्र के शब्दों में उसका चित्रांकन देखिये—

"दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै बिन दाँतन मुहुँ अस पोपालन।
दाढ़ी पर बहि-बहि आवत है कबौं तमाखू की फाँकन॥
बारि पाकिगै रीढ़ो झुकिगै मूड़ो सासुर हालन लाग।
हाथ पाँव कछू रहे न आपन केहि के आगे दुख रोवन॥"

एक रुपये की आत्म-कहानी

(१) प्रस्तावना—जन्म और प्रारम्भिक जीवन
(२) भारत में पदार्पण और रूप-परिवर्तन
(३) भारतवर्ष की सैर
(४) कष्ट
(५) आजकल मेरा निवास-स्थान
(६) उपसंहार—मेरा महत्त्व

मेरा जन्म अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश की एक खानि में हुआ। मैं इस संसार में स्त्री-रूप में उत्पन्न हुआ, पर पीछे ईश्वर ने मुझे पुरुष बना दिया। क्या विश्व में किसी और स्त्री को भी परमेश्वर ने आज तक पुरुष बनाया है ? कदापि नहीं। तो फिर यह कहना चाहिए कि भगवान ने मेरे ऊपर विशेष कृपा की। खानि में मैं सीसा, जस्ता आदि भाइयों के साथ रहता था। मेरा वर्ण काला था। हम सब भाई माता की प्रेम-भरी गोद में चिपटे रहते थे, पर यह आनन्द अधिक दिन तक न रहा। एक दिन मजदूरों की कुदालियों ने मुझे माता की मधुर गोद से पृथक् कर दिया। उस समय मुझे जो दुःख हुआ वह अपार था। माता और भाइयों का विछोह किसे न अखरेगा ? मुझे यदि कुछ सान्त्वना थी तो केवल यही कि एक दो भाइयों ने मेरा साथ न छोड़ा। फिर मैं अग्नि की भट्टी में डाल दिया गया। उस समय का कष्ट अवर्णनीय है। असह्य उष्णता से मेरा शरीर पिघल गया। ऐसी भयंकर परिस्थिति में मेरे भाइयों ने भी साथ छोड़ दिया। सबको अपनी जान की चिन्ता रहती है। फिर ठंडा होकर मैं छड़-रूप में हो गया और रजत नाम से विभूषित हुआ।

अब मुझे भारतवर्ष में आना पड़ा। भारत-सरकार ने मुझे खरीद लिया और टकसाल-गृह भेज दिया। वहाँ मेरे रूप में परिवर्तन किया गया। फिर मुझे अग्नि का ताप सहना पड़ा। मुझे गोल बनाया

गया और मेरी एक ओर अशोक-स्तम्भ के सिंहों का स्वरूप अङ्कित किया गया और दूसरी ओर मेरा नाम तथा निर्माण-तिथि लिखी गई। अब मैं स्त्री से पुरुष हो गया और 'रुपया' नाम से पुकारा जाने लगा। मुझे बड़ा हर्ष हुआ। भला स्त्री से पुरुष होने में किसे हर्ष न होगा ? इसके अतिरिक्त मेरा मनोरम रंग-रूप मेरी चमक-दमक, मेरी मधुर-ध्वनि भी मुझे आनन्द देती थी।

रुपया बनकर अब मैं अपने सहस्रों साथियों के साथ इधर-उधर भारतवर्ष की सैर करने निकला। कभी कलकत्ता गया तो कभी बम्बई। कभी मद्रास गया तो कभी श्रीनगर। कभी इलाहाबाद गया तो कभी दिल्ली। तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष के कोने-कोने में मैंने भ्रमण किया। देशाटन का खूब आनन्द लिया। कहीं प्रकृति के मनोहर दृश्य देखे, कहीं गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में निवास किया। कभी अजायबघर की सैर की तो कभी ताज की, कभी बैंक में रहा तो कभी बाबू साहब के मनीबेग में। कभी महाजन की थैली में रहा तो कभी श्रमिक की जेब में।

कभी कभी मुझे अपने जीवन में आपत्तियाँ भी झेलनी पड़ी हैं। एक बार मैं एक ग्रामीण कंजूस दुकानदार के हाथ लगा। उसने मुझे धरती में गाड़ दिया। अब मुझे स्वच्छ वायु भी नहीं मिलने लगी। भला सोचिए तो सही कि जो भ्रमण करने का प्रेमी है उसे एक अँधेरे स्थान में पड़े रहने से कितना दुःख होगा। २० वर्ष तक इसी प्रकार पड़ा रहकर मैं अपने भाग्य को कोसता रहा। धरती की सील से मेरा मुख काला हो गया। धन्य है दयालु भगवान्! उनकी कृपा हुई। एक चोर ने मुझे निकाल लिया और मेरी कालिमा दूर करने के लिये मेरे शरीर को बालू से खूब रगड़ा। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ। फिर उसने एक मिठाई वाले से मेरे बदले में मिठाइयाँ खरीदीं। दुष्ट मिठाई वाले ने मुझे पत्थर पर पटक कर मेरी परीक्षा की। मुझे दुःख हुआ और मैं चीखने लगा। उसने अन्य साथियों के साथ मुझे लोहे की तिजोरी में कैद कर लिया। पर आवश्यकता महारानी की मुझ पर कृपा हुई और मैं बाहर निकाला गया।

तब से अब तक मैं न जाने कहाँ-कहाँ घूमा हूँ। अपनी यात्रा और अनुभवों का कहाँ तक वर्णन करूँ? कौनसा ऐसा घर है जहाँ मैं नहीं गया हूँ? कौनसा ऐसा मनुष्य है जो मेरे शुभ्र वर्ण पर निछावर नहीं हुआ है? किसके मुख में मुझे देखकर पानी नहीं भर आया है? आजकल मैं एक दीन विधवा की झोंपड़ी में रहता हूँ। वह मुझे बहुत प्यार करती है, उसका एकमात्र पुत्र मैं ही हूँ। उसके सुख का एकमात्र साधन मैं ही हूँ।

मैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हूँ। संसार के सुखों और आशाओं को प्रदान करने वाला मैं ही हूँ। मरते हुए को जीवन-दान देने वाला, भूखे को अन्न देनेवाला और नंगों को वस्त्र देनेवाला मैं ही हूँ। रङ्क को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ। मनुष्य को प्रतिष्ठित कराने वाला मैं ही हूँ। सच पूछिये तो सारा संसार मेरे बल पर स्थित है। मेरी प्राप्ति के लिये लोग क्या-क्या नहीं करते? लोग विद्योपार्जन करते हैं मेरे लिये। कठिन परिश्रम करते हैं मेरे लिये। पाप करते हैं मेरे लिये। जान खतरे में डालते हैं मेरे लिए। मैं मनुष्यों का सर्वस्व हूँ। अहा! मेरे समान संसार में कोई श्रेष्ठ नहीं। अहा! मेरी पूजा सब करते हैं। अहा! मेरी कृपा-दृष्टि के लिए सभी लालायित रहते हैं।

हिन्दू समाज और स्त्रियाँ

(१) प्रस्तावना—समानता का युग, प्राचीन काल में स्त्रियों की दशा

(२) आजकल हिन्दू-समाज में स्त्रियों का नीचा स्थान

(३) पुरुषों के अत्याचार

(४) बालिका-विवाह

(५) विधवा-विवाह का निषेध

(६) पर्दा

(७) आभूषण-प्रियता
(८) धनाधिकार का होना
(९) वैवाहिक नियमों का बुरा होना
(१०) अशिक्षा
(११) उपसंहार—सुधार

•

आजकल समानता का युग है। प्रत्येक समाज अपने भिन्न-भिन्न अंगों में बराबरी का व्यवहार चाहता है। हिन्दू-समाज में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। उसमें अछूतों और स्त्रियों के स्थानों को लोग परखने लगे हैं। आजकल समाज के इन्हीं अंगों की ओर जनता का ध्यान है। हमें यहाँ स्त्रियों के सम्बन्ध में ही विवेचन करना है। हिन्दुओं में प्राचीन काल में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के समान था। स्त्रियाँ पुरुषों की अर्द्धांगिनी कही जाती थीं। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। समाज में उनका आदर होता था। उन्हें उच्च से उच्च शिक्षा दी जाती थी। वे अपने पतियों की योग्य सहचरी होती थीं, उनकी सेवा सुश्रूषा करना अपना धर्म समझती थीं; और उनके सभी कार्यों में सहयोग देती थीं।

पर आज स्त्रियों की दशा में महान् परिवर्तन है। हिन्दू-समाज में उनका स्थान बहुत नीचा है। समाज ने उनको दासत्व की बेड़ियों में जकड़ दिया है और उनको विलास का उपकरण मात्र समझ लिया है। स्त्री पति की वस्तु समझी जाती है, जिसको चाहे वह किसी प्रकार उपभोग करे। स्त्री का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व या व्यक्तित्व कुछ नहीं समझा जाता। उसके सभी कार्य पति की प्रसन्नता के लिए, पति की सन्तुष्टि के लिए होते हैं। वह पति की सेवा तन-मन से करती है। वह कभी अपने स्वामी को कष्ट नहीं होने देती चाहे उसको स्वयं कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। इतने पर भी समाज में उसका कुछ आदर नहीं होता। उसके साथ दासी का सा व्यवहार होता है। वस्तुतः पतिव्रत धर्म की आड़ में हिन्दू-समाज ने स्त्री को गुलामी के असह्य भार से दबा दिया है। यदि स्त्री के लिए

पतिव्रता होना हमारे पूर्वजों ने आवश्यक ठहराया है तो पुरुषों के लिए पत्नीव्रत होना भी। यदि पत्नी का प्रधान धर्म पति की सेवा बतलाया गया है तो पति का धर्म भी पत्नी का आदर, उसकी रक्षा, उसके साथ समानता का व्यवहार आदि कहा गया है। पर आज-कल देखा जाता है कि पुरुष स्वयं तो अपने धर्म का पालन नहीं करते और स्त्रियों से टहल-चाकरी कराते हैं। वे स्त्रियों के अधिकारों का अपहरण करते जाते हैं और उनके साथ पाशविक अत्याचार करते हैं।

पहले बालिका-विवाह नामक अत्याचार को लीजिए। भारतीय समाज में बालिकाओं का विवाह बहुत प्रचलित है। १०-१२ वर्ष की आयु की बालिकाओं को एक अपरिचित व्यक्ति के गले मढ़ दिया जाता है। यह वह अवस्था होती है जब बालिका स्वयं यही नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है और उसका उद्देश्य क्या होता है। छोटी अवस्था में बेचारी को माता-पिता का स्नेहपूर्ण घर छोड़कर पति के गृह में प्रवेश करना पड़ता है, जहाँ प्रायः देखा जाता है कि उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता। फिर जब तक उसके अंग भलीभाँति विकसित भी नहीं हो पाते तब तक वह अपने पति की काम-वासना का शिकार बनकर माता बन जाती है। इससे उसके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, यहाँ तक कि कभी-कभी वह बच्चा जनते समय ही मर जाती है। उसकी सन्तान प्रायः जीवित नहीं रहती और रहती भी है तो दुर्बल और अस्वस्थ होती है। बत-लाइये, बाल-पत्नी समाज के अत्याचार का क्या उपचार करें? कभी-कभी तो यह देखा जाता है कि बालिकाएँ वृद्ध पुरुषों के साथ ब्याह दी जाती हैं। ऐसे सम्बन्धों का दुष्परिणाम प्रायः यह होता है कि बालिकाएँ विधवा हो जाती हैं और आजन्म कष्टमय जीवन व्यतीत करती हैं। समाज के कठोर नियम के कारण वे बेचारी पुनः अपना विवाह नहीं कर सकतीं।

हिन्दू-समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं है। यह भी स्त्रियों के साथ सरासर अत्याचार तथा अन्याय है। यद्यपि

कानून उसका साथ देता है तथापि समाज में तिरस्कार के भय से वे पुनर्विवाह नहीं करतीं। शोक की बात है, जिस समाज ने पुरुष को एक पत्नी के जीवित रहते हुए भी अनेक पत्नी रखने का अधिकार दे रक्खा है, उस समाज ने स्त्री को पति की मृत्यु हो जाने पर भी फिर विवाह करने के अधिकार से वंचित रक्खा है—यह कैसा अन्यायपूर्ण नियम है। इस नियम से समाज और स्त्री जाति दोनों को ही पर्याप्त हानि पहुँचती है। पति-मृत्यु के पश्चात् स्त्री के लिए सारा संसार सूना हो जाता है। वह कष्ट-सहित भी अपने दिन कठिनाई से पूरे करती है। वह समाज तथा परिवार में, अभागी, कलंकिनी और घृणित समझी जाती है। समाज को यह हानि पहुँचाती है कि वह स्त्री यदि संयम से न रहकर व्यभिचार की शरण ले तो समाज का नाम कलंकित होता है। पर इन बातों को कौन देखता है? पुरानी लकीर के फकीरों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।

हिन्दू-स्त्रियों में पर्दे की कुप्रथा प्रचलित है। इससे उनको कई हानियाँ होती हैं—

१—उनकी शिक्षा में बाधा पड़ती है।

२—उनका स्वभाव भीरु बनता है।

३—उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है।

४—वे सांसारिक अनुभव से वंचित रहती हैं।

इतनी हानियाँ होते हुए भी न तो स्त्रियाँ और न पुरुष ही इस कुप्रथा के अन्त करने का प्रयत्न करते हैं। स्त्रियों को तो अशिक्षित होने के कारण अपनी दीन-हीन स्थिति का ज्ञान ही नहीं है। पुरुषों को ऐसा करने की चिन्ता ही क्या है।

हिन्दू-स्त्रियों में आभूषण-प्रियता बहुत देखी जाती है। प्रायः स्त्रियाँ अपने पतियों से आभूषणों के लिए कलह किया करती हैं। वे समझती हैं कि उनके सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए गहने अनिवार्य हैं, शरीर की सफाई और वस्त्रों की स्वच्छता नहीं। उन्हें नहीं मालूम कि सौन्दर्य का सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। क्रीम, पाउडर और आभू-

षणों से शरीर सुन्दर नहीं होता। स्त्रियों की आभूषण-प्रियता के कारण गरीब मनुष्यों को अच्छा भोजन भी मिलना कठिन हो जाता है। कैसा ही गरीब क्यों न हो उसे अपने भोजन-व्यय में कमी करके अपनी स्त्री को संतुष्ट रखने के लिए गहने बनवाने ही पड़ते हैं। चाहे पीने को दूध न मिले, चाहे खाने को फल न मिलें, पर चाहिए स्त्री के लिए आभूषण।

हिन्दू-समाज में स्त्रियों को धनाधिकार नहीं है। पति के धन में पत्नी का कोई भाग नहीं होता। पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी को रोटी-कपड़ा मिलना भी कठिन हो जाता है। हिन्दू-समाज ने स्त्रियों के लिये 'स्त्री-धन' की अवश्य व्यवस्था की है। यह माता-पिता आदि सम्बन्धियों द्वारा लड़की को दिया हुआ धन होता है। पर यह इतना कम होता है कि इससे स्त्री अपना भरण-पोषण नहीं कर सकती।

हमारे समाज में प्रचलित वैवाहिक नियम भी स्त्रियों के अधिकारों का अपहरण करते हैं। आजकल लड़की के माता-पिता उसके लिये वर खोजते हैं। लड़की की स्वीकृति इस काम में नहीं ली जाती। इसका परिणाम कभी-कभी भयानक होता है। यदि पति और पत्नी की प्रकृति न मिली तो दोनों का जीवन आजन्म कंटकाकीर्ण रहता है। कभी-कभी दोनों में घोर शत्रुता हो जाती है। वे फिर कभी अलग भी तो नहीं हो सकते। इससे आजकल का वैवाहिक बन्धन और भी दुःखदायी है। अच्छा हो यदि पति के चुनने में लड़की का कुछ हाथ रहे।

हिन्दू-स्त्रियों की शोचनीय दशा का प्रधान कारण उनकी अशिक्षा है। आजकल अधिकाँश स्त्रियाँ बिना पढ़ी-लिखी हैं। इससे उन्हें न तो अपनी स्थिति का ज्ञान है और न अपने अधिकारों का। वे अपने जीवन की उपयोगिता ही नहीं जानतीं। उन्होंने तो अपने जीवन का लक्ष्य पतियों की काम-वासना को शान्त करना ही समझ रखा है—समाज अथवा देश से उन्हें कोई सरोकार नहीं।

पर हर्ष का विषय है कि इधर कुछ दिनों से विशेष शक्ति-सम्पन्न महानुभावों के आविर्भाव से देश में जाग्रति हो रही है। क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मच गई है। समाज की कुरीतियाँ दूर हो रही हैं। स्त्रियों की दशा सुधारी जा रही है। उन्हें शिक्षित किया जा रहा है। विधवा-विवाह का प्रचार हो रहा है। बालक-बालिका-विवाह रोकने के लिए शारदा-ऐक्ट बन गया है। पर्दे की कुप्रथा टूटती जा रही है। स्त्रियों को धनाधिकार भी मिल रहे हैं। आशा है निकट भविष्य में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के समान हो जायगा और वे पुरुष की योग्य सहचरी हो जाएँगो। तभी हिन्दू-समाज में सुख एवं शान्ति की पुनीत धाराएँ प्रवाहित होंगी, क्योंकि—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"

समाचार-पत्र

(१) प्रस्तावना—समाचार-पत्र की आवश्यकता
(२) समाचार-पत्र का जन्म और विकास
(३) समाचार-पत्र का प्रचार
(४) समाचार-पत्र का व्यवसाय
(५) समाचार-पत्र से लाभ—(क) समाचार-पत्रों का विज्ञापन, (ख) विज्ञापन द्वारा व्यापार की उन्नति, (ग) राजा और प्रजा में प्रेम-भाव की स्थापना, (घ) राष्ट्रीय जाग्रति
(६) समाचार पत्र से हानियाँ—(क) झूठे समाचारों से जनता को भुलावा देना (ख) साम्प्रदायिक और राजा-प्रजा आदि सम्बन्धी मनोमालिन्य उत्पन्न करना
(७) उपसंहार—समाचार-पत्र का महत्त्व

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदैव समाज में रहना चाहता है। वह समाज के मनुष्यों के विचार जानना चाहता है और अपने विचार उनके सम्मुख प्रकट करना चाहता है। वह समाज के

अन्य मनुष्यों की दशा से स्वयं परिचित होना चाहता है और अपनी दशा उनको बतलाना चाहता है। मनुष्य की इस मनोवृत्ति से ही समाचार-पत्र का जन्म हुआ है। समाचार-पत्र के अतिरिक्त अन्य ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे घर बैठे हम अपने भाइयों की स्थिति का परिचय पा सकें।

समाचार-पत्र का जन्म सोलहवीं शताब्दी में इटली देश के वेनिस प्रान्त में हुआ। अन्य देशों ने वेनिस का अनुकरण किया। सत्रहवीं शताब्दी में इङ्गलैंड म समाचार-पत्र के दर्शन हुए। भारतवर्ष में अँग्रेजों के आने से पहले कोई समाचार-पत्र प्रचलित नहीं था। अँग्रेजों ने सबसे पहले 'इण्डिया-गजट' नामक पत्र इस देश में निकाला जिसके पश्चात् ईसाई पादरियों ने 'समाचार-दर्पण' नामक पत्र हिन्दी में प्रकाशित किया। फिर राजा राममोहनराय ने 'कौमुदो' और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'प्रभात' पत्रों को निकाला। सन् १८३५ में लॉर्ड आकलैंड ने मुद्रण-यन्त्र की स्वतन्त्रता प्रदान की, जिससे देश में समाचार-पत्रों की भरमार होने लगी।

आजकल तो देश के कोने-कोने से समाचार-पत्र निकलते हैं। अँग्रेजी के अतिरिक्त देशी भाषाओं में भी अनेक पत्र प्रकाशित होते हैं। चारों ओर समाचार-पत्रों की धूम मची हुई है। दिन-प्रतिदिन इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। यद्यपि कुछ पत्र चलकर कभी-कभी बैठ भी जाते हैं, तो भी बैठने वालों की अपेक्षा नये निकलने वालों की संख्या कहीं अधिक होती है। पाठकों की संख्या भी आये दिन बढ़ती जा रही है। १० वर्ष पहले भारतवर्ष में समाचार-पत्र पढ़ने वालों की संख्या आज की संख्या की अपेक्षा कहीं कम थी। इधर कुछ दिनों से ससार की जटिल समस्याओं के कारण भी पाठक बहुत बढ़ गये हैं।

समाचार-पत्र-प्रकाशन एक स्वतन्त्र व्यवसाय है। इससे बहुत से मनुष्यों को रोटियाँ मिलती हैं। लेखक, सम्पादक, मशीनमैन, और कम्पो-जीटर से लेकर हौकर तक इससे जीविका-उपाजन करते हैं। यदि पत्र का अच्छा प्रचार हो जाता है तो उसके चलाने वाले का घर सम्पन्न

हो जाता है। उसकी सन्तान के लिए वह पत्र आय का स्थायी साधन बन जाता है। कई मनुष्य इस व्यवसाय से बन गए हैं। प्रायः बड़े-बड़े समाचार-पत्रों का चलाने वाला एक व्यक्ति नहीं होता, बल्कि कई व्यक्तियों की व्यापार-समितियाँ हुआ करती हैं। निस्सन्देह यह अच्छा व्यवसाय है।

समाचार-पत्रों से अनेक लाभ हैं। ये देश और विदेश के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा-सम्बन्धी, व्यापार-सम्बन्धी आदि समाचारों को चारों ओर प्रसारित करते हैं। विश्व के कोने-कोने में जो कुछ होता है उसका ज्ञान पत्रों द्वारा हम घर बैठे प्राप्त कर लेते हैं। समाचार-पत्र संसार की वर्त्तमान समस्याओं को हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। इसकी सहायता से संसार की ताजी बातों से हम परिचित रहते हैं। यदि समाचार-पत्र न हों तो हम संसार के मामलों से, संसार की घटनाओं से अनभिज्ञ रहें। हममें और कूप-मण्डूक में कोई अन्तर न रहे। कहना न होगा कि समाचार-पत्र ससार का ज्ञान कराने का बड़ा सस्ता और सुगम साधन है। दरिद्र से दरिद्र मनुष्य भी वाचनालयों में जाकर समाचार-पत्र पढ़ सकता है और मुफ्त में अपने का संसार के सम्पर्क में रख सकता है।

समाचार-पत्र व्यापार की उन्नति का अच्छा साधन है। इससे जितना अधिक विज्ञापन हो सकता है उतना अन्य किसी साधन से नहीं। यदि कोई व्यापारी अपने माल की खपत बढ़ाना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह जितना हो सके उतना अपने माल का विज्ञापन कराए। कोई भी व्यापारी केवल स्थानीय ग्राहकों पर निर्भर रह कर अपने व्यवसाय में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। उसको वाणिज्य में अधिक लाभ नहीं हो सकता। व्यापार में तभी अधिक लाभ होता है जब व्यापारी का माल अधिक बिकता है। माल तभी अधिक बिकता है जब व्यापारी की दूकान को इधर-उधर के लोग अधिक जानते हैं। किस प्रकार यह कार्य सरलता से हो सकता है? यह तो सम्भव नहीं कि दुकानदार जन-साधारण के घर

जा-जाकर अपने माल और दुकान का परिचय देता फिरे। केवल समाचार-पत्र इस कार्य को अच्छी तरह कर सकते हैं और कर रहे हैं। कितने ही व्यापारियों ने विज्ञापन द्वारा लाखों रुपये पैदा किये हैं। समाचार-पत्रों द्वारा यह भी ज्ञात हो सकता है कि कहाँ किस वस्तु का क्या भाव है, कहाँ कौनसी वस्तु खरीदनी चाहिए; और कहाँ कौनसी वस्तु बेचनी चाहिए।

समाचार पत्र राजा और प्रजा में प्रेम-भाव स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि कोई राजनैतिक समस्या उठ खड़ी होती है तो समाचार-पत्र सरकार और जनता दोनों के विचारों को प्रकाशित करते हैं और टीका-टिप्पणी द्वारा समस्या का हल करने का प्रयत्न करते हैं। ये जन-साधारण के दुःखों को सरकार के सम्मुख रखते हैं और उसे उन दुःखों को दूर करने के उपाय भी बतलाते हैं। यदि सरकार ध्यान नहीं देती तो ये उसकी धज्जियाँ उड़ाते हैं। विवश होकर उसे झुकना ही पड़ता है। ये निरंकुश शासन की जड़ काटते हैं और शासक तथा शासित के मध्यस्थ बनकर दोनों में सहानुभूति एवं प्रेम की स्थापना करते हैं।

समाचार-पत्रों से राष्ट्रीय जाग्रति भी होती है। संसार भर के देशों को समाचार-पत्रों ने एक सूत्र में बाँध रखा है। ये स्वतन्त्र देशों की रहन-सहन, आचार विचार, रीति-नीति, शासन-प्रणाली, जनता के अधिकार आदि बातों का विवेचन करते हुए उन्हें परतन्त्र राष्ट्र में फैलाते हैं। देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावों को जन्म देने में इनका बहुत हाथ रहता है। इनके द्वारा एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अपनी तुलना करके अपने गुण तथा दोषों को जान जाता है और दोषों को दूर करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार राष्ट्र के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में उलट-फेर होता रहता है। इस प्रकार देश में राष्ट्रीय जाग्रति होती है और देश की सभ्यता का विकास होता है।

जहाँ समाचार-पत्र से ये लाभ हैं वहाँ कुछ हानियाँ भी हैं जिनका बहुत कुछ दायित्व सम्पादकों पर है। यदि वे अपने

कर्त्तव्य का ध्यान रक्खें तो समाचार-पत्रों से हानि होने की सम्भावना न रहे। उन्हें दलबन्दी से दूर रह कर समाज के हित का ध्यान रखना चाहिए। कभी-कभी समाचार-पत्र जनता में झूठे समाचार फैला देते हैं जिससे समाज में हलचल पैदा हो जाती है और अनर्थ होते हैं। कभी-कभी वे झूठे विज्ञापन छाप कर जनता को ठगते हैं। गन्दे विज्ञापन और चित्र जन-साधारण का चरित्र बिगाड़ते हैं, उसे भ्रष्ट करते हैं। नग्न-चित्र तक समाचार-पत्रों में देने से सम्पादकगण नहीं हिचकिचाते। उन्हें जनता के आचार बनने या बिगड़ने की क्या चिन्ता ? उन्हें तो धन चाहिए। उनके तो पत्र की अधिक बिक्री होनी चाहिए। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि समाचार-पत्र भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में, राजा और प्रजा में, भिन्न-भिन्न जातियों में और राजाओं में मनोमालिन्य पैदा कर देते हैं। साम्प्रदायिक झगड़ों को ये ही फैलाते हैं। मान लीजिये, एक स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है। समाचार-पत्र झूठी-सच्ची खबर फैलाकर अन्य स्थानों पर भी उसे फैला देंगे। भड़काने वाले भी ये समाचार-पत्र ही होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न जातियों और राजाओं में पारस्परिक द्वेष और अविश्वास कराने के प्रधान साधन भी ये समाचार-पत्र ही होते हैं।

यह सब होते हुए भी इस बीसवीं शताब्दी में समाचार-पत्रों का महत्त्व कम नहीं है। आजकल ये जनता के भूखे मस्तिष्क के भोजन बने हुए हैं। आजकल ये सुधार, क्रान्ति और उन्नति के प्रधान साधन हैं। नाना प्रकार से समाचार और सूचनाएँ प्रदान करके मानव-समाज का जितना हित समाचार-पत्र करते हैं उतना हित शायद ही कोई वस्तु करती हो। निस्सन्देह ये संस्कृति और सभ्यता के परिपोषक हैं और इनसे जनता का ज्ञान-भण्डार विकसित होता है।

पुस्तकालय से लाभ

(१) प्रस्तावना—पुस्तकालय की आवश्यकता
(२) पुस्तकालय के भेद
(३) पुस्तकालय से लाभ—
    (क) ज्ञान-वृद्धि और ज्ञान-प्रसार (ख) अवकाश का सदुपयोग (ग) आत्म-संस्कार (घ) सत्संग (ङ) समाज का हित और जाग्रति
(४) उपसंहार—हमारे देश में पुस्तकालयों की कमी और इसका निराकरण

अध्ययन उन्नति की कुंजी है। इससे ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, मस्तिष्क का विकास होता है, साहित्य में गति हो जाती है, सभ्यता का सूर्य चमकने लगता है। अध्ययन के प्रधान स्थान दो ही हैं— विद्यालय और पुस्तकालय। विद्यालय में तो केवल थोड़ी पाठ्य-पुस्तकों का ही अध्ययन कराया जाता है, अतः यह अध्ययन का समुचित स्थान नहीं कहा जा सकता। हाँ, वहाँ इसकी नींव अवश्य पड़ जाती है। अध्ययन का समुचित स्थान है पुस्तकालय, जहाँ नाना प्रकार की अनेक पुस्तकें पढ़ने को मिलती हैं। यह वह स्थान है जहाँ पुस्तकों का वृहत् संग्रह रहता है।

पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं। स्कूलों और कालेजों में जो पुस्तकालय होते हैं उनका लाभ केवल विद्यार्थी-गण अथवा अध्यापक वृन्द ही उठा सकते हैं। उनके अतिरिक्त निजी पुस्तकालय होते हैं जो किसी व्यक्ति और उससे सम्बन्ध रखने वाले लोगों के लाभ के लिए होते हैं। इनकी स्थापना वही व्यक्ति करता है। तीसरे प्रकार के पुस्तकालय को सार्वजनिक पुस्तकालय कहते हैं जिनका लाभ सब लोग उठा सकते हैं। जो चाहे पुस्तकालय में बैठकर पुस्तक पढ़ सकता है और नियत शुल्क देकर नियत समय के लिए अपने घर में पुस्तकें पढ़ने को ले जा सकता है।

पुस्तकालय से अनेक लाभ हैं। ज्ञान की वृद्धि में पुस्तकालय से जो सहायता मिलती है वह अनेक शिक्षकों से भी नहीं मिल सकती। वास्तव में शिक्षक ज्ञान का पथ प्रदर्शित करता है और पुस्तकालय ज्ञान तक पहुँचाता है। किसी विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय अनिवार्य है। किसी विषय की एक या दो पुस्तकें पढ़ लेने से कुछ नहीं होता। जब तक उस विषय की अधिक से अधिक पुस्तकों का अनुशीलन न किया जाय तब तक पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है। यह कार्य पुस्तकालय में ही भली-भाँति सम्पादित हो सकता है, वहीं अनेक पुस्तकें पढ़ने को मिल सकती हैं। एक मनुष्य कहाँ तक पुस्तकें एकत्रित कर सकता है? यदि एक विषय की संग्रह कर भी ले तो भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें इकट्ठी करना उसके लिए सर्वथा असम्भव है। यदि वह अत्यन्त धनवान हो तो ऐसा कर सकता है, पर सब लोगों के लिए तो यह कार्य सरल नहीं। पुस्तकालय ऐसा सुगम साधन है जिसके द्वारा विविध विषयों का पूर्ण ज्ञान गरीब से गरीब भी प्राप्त कर सकता है। समय एवं स्थान कुछ भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकते, ज्ञान की वृद्धि के अतिरिक्त उसके प्रसार में भी पुस्तकालय पर्याप्त योग देता है। कई देशों में चलते-फिरते पुस्तकालय खोले गए हैं। मोटरों में पुस्तकें भर ली जाती हैं और ये मोटरें एक स्थान से दूसरे स्थान को भागती हुई लोगों को पुस्तकें बाँटती फिरती हैं। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य तक पुस्तकें पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है और ज्ञान का द्वार जन-साधारण के लिए खोल दिया गया है।

पुस्तकालय से अवकाश का सदुपयोग होता है। अवकाश के समय यदि कोई व्यक्ति हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे तो उसके मस्तिष्क में गन्दी-गन्दी भावनाएँ उत्पन्न होंगी। कहा भी है—An empty mind is a devil's workshop अर्थात् शून्य मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला है अतः यह वाँछनीय है कि मनुष्य अपने अवकाश का सदुपयोग करे। पुस्तकालय से अच्छा इस कार्य

के लिए और क्या साधन हो सकता है ? निस्संदेह खेल-कूद, ताश शतरंज, सिनेमा, नाटक आदि अनेक अन्य साधन भी हैं। पर कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पुस्तकालय की समानता नहीं कर सकते। इनसे केवल आनन्द ही मिलता है किन्तु पुस्तकालय से आनन्द के साथ-साथ ज्ञान भी मिलता है। जब अवकाश हो, किसी पुस्तकालय में बैठ जाइए। जी में आए आप तुलसी के 'रामचरित-मानस' में गोते लगाइये। जी में आए सूर के पदों का रसास्वादन कीजिए। जी में आए जायसी की प्रेम-कहानी का आनन्द लूटिए। जी में आए कबीर की वाणी से मन का मैल काटिए। जी में आए भारतेन्दु की 'अन्धेर नगरी' में विहार कीजिए। जी में आए बिहारी की सतसई-सरिता में अवगाहन कीजिए। जी में आए कालिदास के 'मेघदूत' में वृक्ष के साथ सहानुभूति दिखलाइये। जी में आए भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' की सीता के साथ अश्रु-पात कीजिए। जी में आए विज्ञान के चमत्कारों को पढ़कर चमत्कृत हो जाइए।

पुस्तकालय आत्म-संस्कार का भी अच्छा साधन है। जब हम उत्कृष्ट, उपदेशपूर्ण, मर्यादा-गर्भित और नीति-सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन करेंगे; सर्वदा उनके बीच रहेंगे, तब हमारा आचरण स्वतः सुधरेगा और हमारे हृदय में अच्छी-अच्छी भावनाएँ उत्पन्न होंगी। जब हम कबीर की पुनीत वाणी को पढ़ेंगे तब उससे अवश्य प्रभावित होंगे। जब हम गोस्वामीजी के 'रामचरित-मानस' को पढ़ेंगे तो उससे हमें आज्ञा-पालन, भ्रातृ-प्रेम, सेवा, नम्रता, शिष्टाचार आदि की शिक्षा मिलेगी। पुस्तकालय के सम्पर्क में रहने से हम कुवासनाओं और प्रलोभनों से बचते हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के प्रकाश में ये चमगादड़ें और उल्लू भाग जाते हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के मनन द्वारा हम स्वर्ग के लिए अपना मार्ग परिष्कृत करते हैं।

मनुष्य की यह प्रकृति है कि वह अपने लिए कोई साथी चाहता है, अकेले रहना उसे कभी नहीं रुचता। पुस्तकालय हमारे लिए

अच्छे साथियों की योजना करता है। वह हमें शेक्सपियर, न्यूटन, प्लैटो, अरस्तू, वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी, शंकराचार्य, भर्तृहरि सरीखे देशी और विदेशी सब प्रकार के साथी देता है, जिनके सत्संग से हम बहुत लाभ उठाते हैं। क्या हम इस संसार में इनसे बढ़कर साथी पा सकते हैं? कभी नहीं। संसार के एक से एक अच्छे महात्मा का, एक से एक अच्छे विद्वान् का हमें सत्संग मिलता है। धन्य है पुस्तकालय जिसकी सहायता से हम कभी शेक्सपियर से वार्तालाप करते हैं तो कभी न्यूटन से। कभी भवभूति के साथ दण्डकारण्य की सैर करते हैं, तो कभी तुलसी के साथ चित्रकूट की। कभी प्लैटो के साथ खेलते हैं, तो कभी अरस्तू के साथ।

पुस्तकालय से व्यक्ति का तो हित होता ही है, साथ में समाज का भी हित होता है। देश-विदेश की नई-पुरानी पुस्तकें पढ़ने से देश-विदेश की नई-पुरानी सामाजिक-व्यवस्था का पता चलता है और सुधार का सूत्रपात होता है। सामाजिक कुरीतियाँ और दोष दूर किये जाते हैं। अशिक्षा के निराकरण से चारों ओर जाग्रति हो जाती है। अन्यायियों और अत्याचारियों की कुचालें बन्द हो जाती हैं। जनता अपने अधिकारों को जानने लगती है। समाज के भिन्न-भिन्न अंगों में समानता का व्यवहार होने लगता है। जन-समुदाय में देश-प्रेम और स्वतन्त्रता की लहरें उठने लगती हैं।

पर खेद का विषय है कि हमारे देश में पुस्तकालयों की बहुत कमी है। नगरों में कहीं-कहीं पुस्तकालय देखे जाते हैं। गावों में तो पुस्तकालय का नाम भी नहीं है। यही कारण है कि यह देश इतना अशिक्षित और सभ्यता की दौड़ में पिछड़ा हुआ है। अन्य देशों में गाँव-गाँव में पुस्तकालय है। जहाँ नहीं है वहाँ चलते-फिरते पुस्तकालयों की योजना है। इधर कुछ दिनों से भारतवर्ष में भी सरकार ने पुस्तकालयों की समस्या पर ध्यान दिया है। गाँवों में छोटे-छोटे पुस्तकालयों का प्रबन्ध किया जा रहा है। बड़े गाँवों में

पुस्तकालयों की स्थापना हो रही है। नगरों में भी पुस्तकालयों की संख्या बढ़ाई जा रही है। आशा है हमारे देश में शीघ्र ही ऐसा प्रबन्ध हो जायगा जिससे देश का प्रत्येक व्यक्ति पुस्तकालय से लाभ उठा सकेगा और यहाँ ज्ञान का शिव-नेत्र खुल जायगा।

किसी यात्रा का वर्णन

(१) प्रस्तावना—हमारी यात्रा का उद्देश्य
(२) तैयारी
(३) छात्रालय से प्रस्थान; टिकट लेने में आपत्ति
(४) प्लेटफार्म के दृश्य
(५) गाड़ी पर सवार होना और मार्ग की आपत्तियाँ
(६) मार्ग के दृश्य और आनन्द
(७) उपसंहार—घर पर आ पहुँचना

बाट देखते-देखते अन्त में वह दिन आया जिस दिन मेरी नवीं कक्षा की परीक्षा समाप्त हुई। बहुत दिनों से मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। बहुत दिनों से वह दिन मेरे नेत्रों में नाचता था। कई दिन स्वप्न में भी मैंने उस दिन का दृश्य देखा था। मैं आनन्द के समुद्र में डूबा हुआ था। ३॥ माह पश्चात् घर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तीन और साथी मिल गए। उनकी भी परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं वे भी मेरे निवास-स्थान, देहली के रहने वाले ही थे।

हमने प्रातःकाल से ही यात्रा की तैयारी आरम्भ की। हम लोग इलाहाबाद में थे अतः पुण्य-सलिला गंगाजी के स्नान का सुयोग था। मेरी इच्छा हुई कि चलते समय गंगाजी में अवश्य स्नान किया जाय। साथियों से कहा, वे भी स्नान को तैयार हो गए। फिर

क्या था। स्नान हुआ और साथ में गंगा-माता से प्रार्थना की गई कि हम सब परीक्षा में उत्तीर्ण हो जायँ। मैंने घर के लिए ताँबे के पात्र में गंगाजल भरा और फिर हम लोग छात्रालय लौट आये। भोजनादि से निवृत्त होकर बाजार से आवश्यक वस्तुएँ खरीदीं। फिर आकर धोबी, दूध वाले और मैस का हिसाब चुकाया। सायंकाल अध्यापकों से मिलने गये, लौटकर भोजन किया। नौकर से सामान बँधवाया। तत्पश्चात् मित्रों से मिले। गाड़ी का समय हो रहा था, अतः ताँगा मँगवाया गया।

हम लोग ताँगे में बैठे और स्टेशन को चल दिये। ठीक ६।। बजे स्टेशन आ-पहुँचे। गाड़ी १० बजे छूटती थी। सामान कुली से उतरवाया गया। मैंने साथियों को कुली के साथ प्लेटफार्म भेजा और स्वयं टिकट लेने के लिए चल दिया। टिकटघर पर बड़ी भीड़ थी। यात्री एक-दूसरे को धक्के दे रहे थे। यह दृश्य देखकर मेरे होश उड़ गये। टिकट लेने की हिम्मत न पड़ी। पर टिकट तो लेने ही थे। साहस करके भीड़ में घुसा। जैसे-तैसे खिड़की तक पहुँचा। वहाँ मेरी दुर्दशा हुई। पीछे के लोग मुझे आगे ढकेलते थे और आगे के पीछे, दाहिनी ओर के मनुष्य मुझे बाईं ओर ढकेलते थे और बाईं ओर के दाहिनी ओर। गर्मी के मारे पसीना आने लगा। सारा शरीर भीग गया। कण्ठ भी सूखने लगा। उधर एक बाबू साहब मुझसे अटक पड़े। बोले—"आपने मुझे धक्का क्यों दिया? मुझे समझ ही क्या रखा है?" मैंने कहा—"मनुष्य समझ रखा है; सम्भव है—भूल हो गई हो।" इस पर वे बिगड़ गये। उपस्थित लोगों ने उन्हें शान्त किया और कहा कि बाबूजी लड़के का कुछ दोष नहीं है। उसने जान-बूझकर आपको धक्का नहीं दिया। ऐसे अवसरों पर धक्का-मुक्की का बुरा नहीं मानना चाहिए। भीड़ में धक्के लगना साधारण बात है। जैसे-तैसे १० मिनट के बाद टिकट मिले; उन्हें लेकर प्लेटफार्म पर पहुँचा। चित्त में क्षोभ हुआ। निश्चय कर लिया कि भविष्य में टिकट लेने नहीं जाऊँगा। साथियों को जब यह मालूम हुआ तब उन्होंने मेरा खूब मजाक उड़ाया।

अभी गाड़ी आने में १५ मिनट का समय था। हम लोग प्लेटफार्म पर इधर-उधर घूमकर अपना मनोरंजन करने लगे। प्लेटफार्म का दृश्य बड़ा आकर्षक था। चारों ओर यात्रियों की भीड़ थी। पुरुष, स्त्री और बच्चे इधर-उधर घूम रहे थे। मेमें ऊँची एड़ी के जूते पहने खटपट-खटपट करती हुईं अपने पतियों के हाथ पकड़े गिटपिट बोलती हुईं चली जा रही थीं। ग्रामीण स्त्रियाँ हाथ भर लम्बा घूँघट निकाले पतिदेवों के साथ जा रही थीं। उनके शरीर आभूषणों से लदे हुए थे। पैर जमीन में घुसे जाते थे। कहीं साहब लोग मुँह में सिगार दबाये धुएँ के गुब्बारे उड़ा रहे थे। कहीं गाँव के मनुष्य चिलम पी रहे थे। कोई बेंच पर बैठकर भोजन कर रहा था। कोई पान वाले की दूकान पर खड़ा हुआ पान खा रहा था। कोई शरबत पी रहा था। कोई अपने बिस्तर के सहारे लेट रहा था। बच्चे खेल रहे थे। कुछ लोग समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। कुली इधर-उधर सामान ढो रहे थे। उनके एकसे वस्त्र बड़े अच्छे लगते थे। कुछ मनचले लोग ताश खेल रहे थे और कहकहे उड़ा रहे थे। चारों ओर चहल-पहल थी। कुछ देर पीछे घण्टी बजी, लोग चौकन्ने हुये। कुलियों ने अपने बोझ सँभाले। सब लोग खड़े हो गये। एक मिनट में गाड़ी भप्-भप् करती हुई प्लेटफार्म पर आ पहुँची। इधर-उधर भगदड़ मच गई। पान, बीड़ी, हलुआ, दालमोंठ, पेठा, सेव, सन्तरा, केला, दूध गरम, पूड़ी, मिठाई आदि की तुमुल ध्वनि से प्लेटफार्म गूँज उठा। यात्रियों का गाड़ी में घुसना और उससे बाहर निकलना आरम्भ हुआ। कुली गाड़ी में सामान रखने और उससे बाहर निकालने लगे।

हमने एक डिब्बे का दरवाजा खोला और उसमें घुस गये। कुलियों ने सामान लाकर रख दिया। उनकी मजदूरी चुकाने के पश्चात् हम बैठने के लिए स्थान ढूँढ़ने लगे। क्या देखते हैं कि लोग पैर फैला कर पड़े हुए हैं और सोने का बहाना कर रहे हैं। हमने पहले तो उन्हें छेड़ना न चाहा, परन्तु डिब्बे में जब हमें

कहीं भी जगह न मिली तब विवश होकर ऐसा करना पड़ा। हमने पहले उनसे प्रार्थना की कि वे हमें थोड़ी जगह दे दें। पर कौन सुनता है प्रार्थना को। कुछ तो टस से मस भी न हुए ज्यों के त्यों पड़े रहे, मानो गहरी निद्रा में निमग्न हैं। कुछ झगड़ने लगे। हमने सोचा कि सीधी उँगली से घी नहीं निकलता। इसलिए टेढ़ा होना चाहिए, क्योंकि गोस्वामीजी ने कहा है—"टेढ़ जानि शङ्का सब काहू।" हुआ भी यही। जैसे कि हम लोग बिगड़े वैसे ही वे भयभीत होकर दब गए। कई उठकर सामान रखने की पटरियों पर जा लेटे। फिर क्या था ? हम लोगों ने अपना-अपना बिस्तर बिछाया और लेट गए। गाड़ी सीटी देकर चल दी। मार्ग में गाड़ी के स्टेशन-स्टेशन पर ठहरने के कारण हम निद्रा का आनन्द न ले सके। पैसेंजर गाड़ी होने के कारण वह लगभग आध-आध घण्टे बाद स्टेशनों पर ठहरती थी। जहाँ ठहरती वहीं यात्रियों के चढ़ने-उतरने से हमारी नींद टूट जाती।

नींद से युद्ध करते-करते प्रातःकाल हुआ। समय बड़ा सुहावना था। पौ फट रही थी। ठण्डी-ठण्डी वायु मन्द-मन्द चल रही थी। टूण्डला आ गया था। आगे बढ़ने पर सूर्य-देव अपनी लाल-लाल रश्मियों को फैलाये हुए दिखाई पड़े। आकाश लाल-पीला हो गया इधर-उधर के दृश्य जो अब तक अन्धकार-विलीन थे, स्पष्ट दिखलाई देने लगे। गाड़ी कभी भयानक जंगल में होकर दौड़ रही थी और कभी मनोरम वनस्थली में होकर। कभी शस्य-श्यामला भूमि हमारे मन को अपनी ओर आकर्षित करती थी, तो कभी उपवन हमको आनन्द देते थे। कभी नदी-नाले हमको प्रसन्न करते थे तो कभी पर्वत-छटा हमारा मनोरंजन करती थी। मार्ग के गाँव और नगर भिन्न-भिन्न दृश्य उपस्थित कर रहे थे। ऐसे समय हमारे एक साथी को, जो कवि था, कविता सुनाने की धुन सवार हुई। उसने बड़ी-बड़ी सुन्दर कविताएँ सुनाईं। डिब्बे भर के लोग आनन्द-विभोर होकर झूमने लगे। 'पुनः पुनः', 'वाह-वाह' और 'बहुत सुन्दर' की ध्वनि से डिब्बा गूँजने लगा।

इस प्रकार आमोद-प्रमोद करते-करते हमारा निवास-स्थान देहली आ गया। गाड़ी रुकी। हमने कुली को पुकारा। शीघ्र एक कुली आया और उसने हमारा सब सामान गाड़ी से उतारा। स्टेशन के बाहर पहुँचकर हमने एक ताँगा किया। उसमें सामान रखवाकर हम घर को चले और सानन्द अपने-अपने घर पहुँच गए। माता-पिता ने जब मुझे देखा तब उनके हृदय वात्सल्य-प्रेम से भर गए और उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए।

इस प्रकार हमारी यात्रा समाप्त हुई। वह आज भी स्मृति-पटल पर अंकित है।

किसी मेले का वर्णन

(कैलाश का मेला)

(१) प्रस्तावना—कैलाश के मेले की तैयारी
(२) मार्ग के दृश्य और आपत्तियाँ
(३) यमुना-स्नान और शिवजी की पूजा
(४) कैलाश के मेले का दृश्य
(५) कैलाश के मेले का आमोद-प्रमोद
(६) वापिस लौटने की आपत्तियाँ और मार्ग के दृश्य
(७) उपसंहार—निवास-स्थान आ-पहुँचना

श्रावण का महीना था और शनिवार का दिन। कोई दस बजे होंगे, हम लोग दत्तचित्त होकर अपनी कक्षा में पढ़ रहे थे। इसी समय एक चपरासी छुट्टी की सूचना लाया। हमारे अध्यापकजी ने सूचना सुनाई कि आगामी सोमवार को कैलाश के मेले के कारण स्कूल बन्द रहेगा। जैसे ही हमको सूचना मिली हम हर्ष से फूल गये। मन में उसी समय मेले जाने का दृढ़ निश्चय किया।

सोमवार को प्रातःकाल हम पाँच मित्र मेला जाने को तय्यार हुए। मैस में दोपहर के भोजन की मना की गई। छात्रालय के अध्यक्ष से आज्ञा ली गई। फिर हमने कमीज और नेकर पहिने और मेले के लिए व्यय लेकर हम लोग ७॥ बजे कैलाश को चल दिए। यह स्थान यमुनाजी के किनारे आगरा से ७ मील दूर है। यहाँ कैलाश नामक शिव-मन्दिर है।

पहले हम मोटरों के अड्डे पर गए। मोटर वाले एक की जगह तीन-तीन सवारी बैठा रहे थे। हमारा मन वहाँ से उचट गया और हम सबने पैदल जाने का निश्चय किया। बहुत से व्यक्ति पैदल जा रहे थे। हम भी उन्हीं के साथ हो लिए। मार्ग में स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे शिवजी के गीत गा रहे थे। मनुष्यों की कोई टोली 'जय शंकर की', कोई 'महादेव बाबा की जय हो' और कोई 'जयशिव' आदि के नारों से पृथ्वी को कँपा रही थीं। कोई टोली चुप-चाप रहकर शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर रही थी। हममें एक कवि था। उससे कविता पाठ की प्रार्थना की गई। वह बड़ी सुन्दर कविताएँ सुनाने लगा जिनसे हमारा मनोरंजन हुआ। मार्ग में कोई मनुष्य हमारे समान पैदल जा रहा था, कोई बैलगाड़ी में बैठा हुआ था। कोई मोटर में सवार हो रहा था, कोई ताँगे में आसन जमा रहा था। कोई इक्के में जा रहा था। मार्ग में बड़ी भीड़ थी। श्रावण का महीना तो था ही, वर्षा होने लगी। लोग इधर-उधर भागने लगे। हमारे पास एक भी छाता न था। हम लोगों ने भाग कर एक वृक्ष के नीचे शरण ली। पर बेचारा वृक्ष भी हमारी अधिक देर तक रक्षा न कर सका। हम भीगने लगे। शिवजी की कृपा हुई और वर्षा बन्द हो गई। अब मार्ग में कीचड़ हो गई। हमारे पालिशदार जूते अपने भाग्य को धिक्कारने लगे, उनके चारों ओर कीचड़ लिपट गई। हमारा एक मित्र तो एक स्थान पर फिसल कर गिर गया, पर शिवजी की कृपा से उसे कुछ चोट न लगी, हाँ! कपड़े अवश्य बिगड़ गए। इन सब आपत्तियों को सहते हुए लगभग १० बजे हम कैलाश पहुँच गए।

सर्व प्रथम हमने यमुनाजी के पवित्र किन्तु मैले जल में गोते लगाए। हमारे दो मित्र अच्छी तरह तैरना जानते थे, वे अन्य लोगों को तैरते हुए देखकर नदी में कूद पड़े। मुझे तैरना नहीं आता था, इसलिए भय लग रहा था। नदी का दृश्य बड़ा मनोरम था। कोई जल में गोते लगा रहा था, कोई तैर रहा था। कोई किनारे पर बैठ कर संध्या कर रहा था, कोई कछुओं को भोजन खिला रहा था। स्नान के पश्चात् हम शिवजी के मन्दिर में गए। वहाँ पूजा करने वालों की भीड़ लगी हुई थी। शिव-मूर्ति पुष्प-मालाओं से ढकी हुई थी। प्रत्येक भक्त यमुनाजी का जल पात्र में भर कर मन्त्र उच्चारण करता हुआ शिवजी की मूर्ति पर छोड़ रहा था। चन्दन और पुष्प चढ़ाए जा रहे थे। सुगन्धित बत्तियाँ चारों ओर जल रही थीं। मन्दिर की घण्टा-ध्वनि और देवालय की परिक्रमा देने वालों की जयकार हमारे हृदय में भक्ति और धर्म की भावनाएँ उत्पन्न करती थी। हमने भी शिवजी की पूजा की, फिर हम मन्दिर के बाहर आए, वहाँ साधू धूनी तप रहे थे। स्त्री-पुरुष उन पर पैसे चढ़ा रहे थे। हमें यह अच्छा न लगा। साधुओं को पैसे की क्या आवश्यकता? उन्हे तो चाहिए कि द्वार-द्वार से टुकड़े माँग कर पेट भरें। जो साधू ऐसा नहीं करते वरन् मेलों में जाकर पैसों की इच्छा करते हैं, वे ढोंगी होते हैं। हमने पैसे चढ़ाने वाले कुछ लोगों को समझाया भी, पर कौन सुनता है? धर्मान्धों ने समझ रखा था कि ऐसा करने से स्वर्ग का द्वार उनके लिए खुल जायगा।

इस समय लगभग १२ बज चुके थे। अभी तक मुँह में एक दाना भी नहीं गया था। पेट में चूहे दौड़ रहे थे। अतः एक पूड़ी वाले की दूकान पर हम लोग गए और क्षुधा निवृत्त की। अब हमने मेला देखना आरम्भ किया। दूकानें पंक्तियों में सजी हुई थीं दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए दुकानदारों ने कुछ उठा न रक्खा था। खूब प्रयत्न किए थे। किसी दुकान पर ग्रामोफोन बज रहा था, किसी पर विचित्र खिलौने टँगे हुए थे। मिठाई की दूकानों पर बड़ी भीड़ थी।

दोपहर का समय होने के कारण सभी लोग खाने के लिए कुछ-न-कुछ खरीद रहे थे। रंग-विरंगे विचित्र खिलौने देख कर मन प्रसन्न हो जाता था। दुकानों को देखते-देखते हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ बड़ी भीड़ लगी हुई थी। चारों ओर से मनुष्य आ-आकर वहाँ एकत्र हो रहे थे। हमने देखा कि एक बाजीगर तरह-तरह के खेल दिखा रहा था। कभी वह लोहे के गोले को उछाल कर अदृश्य कर देता था। कभी आम का पेड़ खड़ा कर देता था। कभी ठीकरी का रुपया बना देता था। कभी एक कबूतर से कई कबूतर बना देता था। कभी रस्सी के टुकड़े-टुकड़े करके पुनः वैसी ही कर देता था। यह खेल देखकर हम दंग रह गये। फिर आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक स्थान पर एक ईसाई पादरी अपने धर्म की पुस्तकें मुफ्त बाँट रहा था। बेचारे भोले-भाले ग्रामीण उसकी पुस्तकें ले रहे थे। वह धार्मिक व्याख्यान भी दे रहा था। बहुत से लोग उसके चारों ओर खड़े हुए थे और व्याख्यान सुन रहे थे। ईसाई पादरी भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले हैं। अपने धर्म को फैलाने के लिये वे मेलों में अवश्य पधारते हैं। आगे चलकर देखा तो आर्यसमाज के उपदेश हो रहे थे। लोगों को ईसाइयों के फन्दे से बचने के लिए सचेत किया जा रहा था। एक स्थान पर 'रामचरित-मानस' की कथा हो रही थी। कथा-वाचक पण्डितजी उपस्थित जनता को राम-भक्ति का प्रसाद वितरण कर रहे थे।

एक ओर संगीत हो रहा था। मल्हार राग अलापा जा रहा था। वाद्य-यन्त्र मधुर ध्वनि कर रहे थे। यह स्थान हमें सबसे अधिक रुचा। वहाँ हमारा खूब मनोरंजन हुआ। बैठ कर आध घण्टे तक हम आनन्द में मस्त होकर झूमते रहे। फिर उठकर दंगल देखने चले गये। वहाँ पहलवानों की कुश्तियाँ देखीं। एक स्थान पर रास हो रहा था, वहाँ का भी आनन्द लिया।

मेले में घूमते-घूमते ५ बज चुके थे। अतः लौटने का विचार किया। हम लोग बहुत थक गये थे। एक मोटर पर सवार हुए। मार्ग में 'जय शिव' की ध्वनि से मोटर गूँजने लगी। गरमी के कारण हम

लोग पसीने में तर हो गये और भीड़ में हमारा दम घुटने लगा। इस समय वर्षा होने लगी। खिड़कियों से वर्षा का सुहावना दृश्य दिखलाई दिया। काले-काले मेघ आकाश में इधर-उधर भाग रहे थे और जोर से गरज रहे थे। पैदल यात्री भीगते हुए भागे जा रहे थे कुछ पेड़ों के नीचे खड़े हो गये थे।

यह दृश्य देखते-देखते मोटर-अड्डा आ गया। मोटर रुकी। हम लोग उतरे और अपने छात्रालय को चल दिये। सब सानन्द अपने अपने कमरों में पहुँचे।

किसी मैच का वर्णन

(फुटबौल का मैच)

(१) प्रस्तावना—मैच की आवश्यकता
(२) मैच की तैयारी
(३) खेल के मैदान पर पहुँचना और मैच का आरम्भ
(४) खेल, मैच का फल
(५) ट्रॉफी मिलना और हर्ष के साथ लौटना
(६) उपसंहार—मैच से लाभ

विद्यार्थियों के लिये खेलना बहुत आवश्यक है। इससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है और शारीरिक शक्ति बढ़ती है। खेलों का प्रचार करने और विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए मैचों की योजना की जाती है। प्रति वर्ष इण्टर-स्कूल-टूर्नामेंट और इण्टर-कॉलेज-टूर्नामेंट हुआ करते हैं जिनमें फुटबौल, हौकी, क्रिकेट आदि के मैच खेले जाते हैं। विजयी स्कूल या कॉलेज को पुरस्कार-स्वरूप ट्रॉफी मिलती है।

मैंने जिस मैच को देखा वह फुटबॉल-इण्टर-स्कूल टूर्नामेंट का अन्तिम मैच था। यह सितम्बर में हुआ। इसमें हमारा स्कूल और बैपटिस्ट मिशन हाईस्कूल खेले थे। मैच का आरम्भ होने का समय रविवार को ४ बजे था। शनिवार को प्रधानाध्यापकजी ने मैच की

सूचना कराई और इच्छा प्रकट की कि प्रत्येक विद्यार्थी मैच देखने को उपस्थित हो। मैं छात्रालय में रहता था। वहाँ से खेल का मैदान लगभग २०० गज दूर होगा। अतः मुझे वहाँ जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, परन्तु घर पर रहने वाले कई विद्यार्थियों को कठिनाई थी। उनके घर खेल के मैदान से ३ या ४ मील दूर थे। बेचारों को प्रधानाध्यापकजी के भय से विवश होकर आना पड़ा। ३ बजे हमारे स्कूल के खिलाड़ियों की टीम छात्रालय में एकत्र हुई। छात्रालय के अध्यक्ष खेलों के सेक्रेटरी थे। उन्होंने ५ मिनट तक खिलाड़ियों को मैच-सम्बन्धी कुछ आवश्यक शिक्षा दी। फिर खिलाड़ियों ने खेल की अपनी-अपनी वर्दी पहनी।

३॥ तीन बजे सेक्रेटरी के साथ पैदल ही खेल के मैदान को चल दिये। उनके पहुँचने के पहले ही बैपटिस्ट स्कूल की टीम आ पहुँची थी। दर्शकगण इकट्ठे हो रहे थे। ठीक ३॥ बजे रैफरी (निरीक्षक) भी आ गये। उन्होंने सीटी बजाई। दोनों टीमों के कैप्टिन टौस करने के लिए रैफरी के पास आ गये। टौस में विपक्षी टीम जीत गई। इस पर बैपटिस्ट स्कूल के विद्यार्थियों ने तालियाँ बजाईं। इसके पश्चात् कैप्टिनों ने खिलाड़ियों को यथा-स्थान खड़ा किया। ठीक ४ बजे रैफरी की सीटी के साथ मैच आरम्भ हो गया। उस समय का दृश्य बड़ा आकर्षक था। खेल के मैदान के चारों कोनों पर झण्डियाँ लगी थीं। गोल के स्थान पर जाली और लकड़ी की बल्लियों से चौड़ा दरवाज़ा सा बना दिया गया था। मैदान के चारों ओर लाइनों के पीछे विद्यार्थी आदि दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी दर्शक-गण कई पंक्तियों में खड़े हुए थे। नगर के गण्य-मान्य व्यक्तियों के बैठने के लिए कुर्सियों का प्रबन्ध था। पुरस्कार देने के लिए कलक्टर साहब की पत्नी को आमन्त्रित किया गया था। वे पति-पत्नी दोनों आए थे और दर्शकों के मध्य कुर्सियों पर विराज रहे थे। एक मेज पर ट्रॉफी रक्खी हुई थी। सड़क पर मोटर, ताँगे और बग्घियाँ खड़ी थीं। खोंमचे वाले इधर-उधर पैसे ठग रहे थे।

खेल बड़े जोरों से हो रहा था। दोनों टीमें समान थीं। ३० मिनट तक किसी ओर गोल न हुआ। कभी गेंद हमारी टीम की ओर आ जाती थी और कभी विपक्षी टीम की ओर आ जाती थी। एक बार गेंद विपक्षियों के गोल में घुसने से बाल-बाल बच गई। उधर का गोल-रक्षक बड़ा फुर्तीला और सजग था। गेंद को बड़ी चतुराई से फेंककर उसने गोल बचाया। इस पर उधर के विद्यार्थियों ने बड़े जोर से करतल-ध्वनि की। खेल ने जोर पकड़ा। विपक्षी टीम ने हमारी टीम को दबाना आरम्भ किया और अवसर पाकर गेंद को इस प्रकार फेंका कि वह गोल-रक्षक के बीच से निकल कर गोल में जा पहुँची, फिर क्या था ? गोल होगया। रैफरी ने सीटी बजा दी। वैपटिस्ट के विद्यार्थियों ने और दर्शकों ने बड़े जोर की तालियाँ पीटीं। विद्यार्थियों में से किसी ने हर्ष में अपना हैट उछाला और किसी ने अपना रूमाल। हम लोग उदास हो गए—पर हतोत्साह नहीं हुए, क्योंकि अभी तो मैच का आधा समय भी समाप्त नहीं हुआ था। हमने आवाज लगा-लगाकर अपने खिलाड़ियों को उत्साहित करना आरम्भ किया। अब हमारी टीम जी-तोड़कर खेलने लगी। थोड़ी देर बाद खेल का आधा समय हुआ। रैफरी ने सीटी बजाई। खिलाड़ी मैदान छोड़-छोड़ कर विश्राम करने के लिए चल दिये। विपक्षी दर्शकों ने अपने खिलाड़ियों को खूब सराहा। विद्यार्थी गोल करने वाले खिलाड़ी से लिपट गये। हम लोगों ने अपने खिलाड़ियों को खूब उत्साहित किया। सेक्रेटरी ने उनके खेल की कुछ त्रुटियाँ बतलाईं। दोनों ओर खिलाड़ियों को फल खिलाये गए। १० मिनट के विश्राम के पश्चात् सीटी बजी और खिलाड़ी अपने-अपने स्थान पर जा पहुँचे। खेल पुनः आरम्भ हुआ हमारी ओर के खिलाड़ी अपनी सारी शक्ति लगा रहे थे। थोड़ी देर तक गेंद कभी मैदान के इस ओर और कभी उस ओर रही। फिर हमारे एक खिलाड़ी ने गेंद में ऐसी लात मारी कि वह विपक्षियों के गोले के ठीक सामने गिरी और जैसे ही वह उछली वैसे ही दूसरे खिलाड़ी ने अपने सिर द्वारा उसे गोल में पहुँचा दिया। गोल हो गया। हम लोगों ने तथा अन्य दर्शकों ने तालियों की तुमुल-ध्वनि

की। हमारे हर्ष का पारावार न रहा। हम फूले न समाये। विपक्षी लोगों के मुख मलिन हो गये। अब खेल में दोनों ओर बराबर जोश फैला। उधर के दो-एक खिलाड़ी चिढ़ गये और फॉउल खेलने लगे। इससे विपक्षी टीम को पर्याप्त हानि होने लगी। मैच समाप्त होने में दो ही मिनट बाकी थीं कि हमारी टीम ने एक गोल और कर दिया। अब क्या था? केवल दो मिनट रहने के कारण उधर के खिलाड़ियों की हिम्मत टूट गई। वे कुछ न कर सके। रैफरी ने लम्बी सीटी दी। खेल समाप्त हुआ। हम लोगों ने तालियों की झड़ी लगा दी। हैट और रूमाल उछाले गये। खिलाड़ियों को सोडा-वाटर पिलाया गया और फल खिलाये गये।

इसके पश्चात् पुरस्कार वितरण हुआ। कलक्टर साहब की धर्म-पत्नी ने पहले खेलों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। फिर टूर्नामेंट के संचालकों को धन्यवाद देते हुए हमारे कैप्टिन को ट्राफी प्रदान की। हम लोगों ने खूब करतल-ध्वनि की। लगभग ६ बजे हम सानन्द ट्रॉफी लेकर छात्रालय लौटे। दूसरे दिन प्रधानाध्यापक जी मैच जीतने के उपलक्ष में एक दिन की छुट्टी प्राप्त की।

मैच खेलने से कई लाभ होते हैं। खिलाड़ी धैर्य, सजगता और सहनशक्ति के गुण प्राप्त करते हैं। वे सहयोग के साथ काम करना सीखते हैं और उनमें नियन्त्रण का भाव आ जाता है। इन लाभों के अतिरिक्त मैच से जन-साधारण का भी मनोरंजन होता है। विजयी स्कूल अथवा कॉलेज की जनता में ख्याति होती है।

विज्ञान के चमत्कार

(१) प्रस्तावना—विज्ञान का विस्तार

(२) स्थान-सम्बन्धी चमत्कार—रेल, जलयान, वायुयान, बुलैट, दूर-दर्शक यन्त्र; और टेलीविजन

(३) समाचार-सम्बन्धी चमत्कार—तार, टेलीफोन; और बिना तार का तार

(४) केमरा
(५) मुद्रण-यन्त्र
(६) एक्स-रे
(७) आमोद-प्रमोद-सम्बन्धी चमत्कार—सिनेमा, ग्रामोफोन, रेडियो आदि
(८) बिजली का पंखा और प्रकाश
(९) उपसंहार—विज्ञान का महत्व

यह विज्ञान का युग है। संसार के कोने-कोने में विज्ञान की दुन्दुभी बज रही है। चारों ओर वैज्ञानिक आविष्कारों तथा अनुसन्धानों की धूम मची हुई है। विज्ञान ने आधुनिक जगत में एक प्रकार से क्रान्ति उत्पन्न करदी है। आज ऐसी-ऐसी विचित्र वस्तुएँ इसकी कृपा से प्राप्त हुई हैं जिनकी पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। आजकल इसका बहुत प्रचार है। दिन-दिन अन्य-अन्य विषयों में इसका प्रवेश होता जा रहा है। इतिहास में इसका पर्याप्त प्रवेश हो चुका है। घटनाओं की परीक्षा विज्ञान की कसौटी पर की जाती है। ज्योतिष से ऐतिहासिक समय की जाँच की जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र पर भी विज्ञान ने अपना आधिपत्य जमाया है। धर्म को इसने उलट-पलट दिया है। हम कह सकते हैं कि आज प्रकृति और मनुष्य समाज का कोई विषय इसकी गति से बाहर नहीं है। सारा संसार विज्ञान के चमत्कारों से भरा हुआ है। जिधर देखिये उधर ही इसकी करामात दिखलाई देती है।

पहले स्थान-सम्बन्धी चमत्कारों को लीजिए, जिन्होंने स्थान की दूरी बहुत कम करदी है। रेल, मोटर ; जलयान की तो क्या कहें, आजकल वायुयान और बुलैट थोड़ी-सी देरमें सैकड़ों मील दूर पहुँचा देते हैं। प्राचीन काल में एक रावण के पास ही पुष्पक विमान था, आज सर्व-साधारण के लिए वायुयान प्रस्तुत हैं। बुलैट अत्यन्त तीव्रगामी है। इसमें बैठकर चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारियाँ हो रही हैं। इनसे पहले कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बम्बई से कलकत्ते कभी कुछ घण्टों में हो पहुँचा जा सकेगा।

कोई यह नहीं सोच सकता था कि एक दिन मनुष्य आकाश में उड़ने लगेगा। आजकल तो विज्ञान के प्रताप से सब-कुछ सम्भव हो गया है। दूर से दूर स्थान भी घर-आँगन हो गया है। विज्ञान केवल हमको बात ही बात में दूर पहुँचाता ही नहीं है बल्कि सहस्रों मील दूरी के दृश्यों को टेलीविजन और दूर-दर्शक यन्त्र द्वारा दिखलाता भी है। टेलीविजन द्वारा किसी दृश्य का चित्र एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। दूर-दर्शक-यन्त्र दृश्य के आकार को बहुत बड़ा बना देता है। वह दृश्य को किसी स्थान को भेजता नहीं। कैसे आश्चर्य की बात है कि घर-बैठे दुनिया के दृश्य देख लिए जायँ ! यदि आज महाभारत का युद्ध होता तो क्यों धृतराष्ट्र को संजय से युद्ध-वर्णन सुनने की आवश्यकता होती। वे स्वयं युद्ध का दृश्य देख लेते। यदि कोई कहे कि वे तो अन्धे थे तो विज्ञान ने अन्धेपन को भी दूर किया है।

समाचार-सम्बन्धी चमत्कार भी कम आकर्षक नहीं हैं। समाचार भेजने के लिए विज्ञान ने अद्भुत चमत्कारों की सृष्टि की है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पतला तार लगा रहता है। उसकी सहायता से समाचार भेज दिया जाता है। टेलीफोन से आगरे में बैठा हुआ मनुष्य लन्दन या न्यूयार्क में बैठे हुए अपने आत्मीयजन से उसी प्रकार बात-चीत कर सकता है जैसे अपने निकट बैठे हुए व्यक्ति से। बिना तार का तार क्षण-भर में इङ्गलैंड के किसी स्थान के भाषण या समाचार को आगरे में सुना देता है। इसमें तार की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती।

केमरा पलक मारते-मारते हमारा चित्र खींच लेता है। उड़ती हुई चिड़िया और बन्दूक से निकलती हुई गोली के भी चित्र खींचने में केमरा को सफलता मिली है। पहले चित्रकार पर्याप्त समय लगाकर चित्र खींचते थे और फिर भी वे चित्र असली पदार्थ के सदृश नहीं बनते थे। अभी तक केमरे से जो चित्र लिए जाते थे उनमें वास्तविक वस्तु का रूप तो आजाता था पर रंग नहीं आ पाता था। अब इस प्रकार की युक्ति निकाली गई है जिससे रंग भी आजाता है।

मुद्रण-यन्त्र जरा-सी देर में किसी पुस्तक की हजारों प्रतियाँ छाप देता है। पहले किसी पुस्तक की दूसरी प्रतिलिपि करने में ही कई महीने लग जाते थे। आजकल मुद्रण-यन्त्र ने इतनी उन्नति की है कि एक-एक घण्टे में ५०-५५ हजार प्रतियाँ तक सहज में छप जाती हैं। अब इस यन्त्र में केवल अक्षरों को जोड़कर रखने के अतिरिक्त मनुष्य को इससे हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। एक ओर कोरा कागज आप-से-आप चलता जाता है और दूसरी ओर छपे हुए कागजों की गड्डी अपने आप बनती जाती है।

एक्स-रे विज्ञान का अद्भुत आविष्कार है, इससे विज्ञान-जगत् में हलचल हो गई है। किसी पदार्थ के बाहरी भाग को देखने की तो सब लोगों में शक्ति है, पर उसके अन्दर क्या है यह जानना किसी के लिए सम्भव नहीं। परन्तु आज एक्सरे- की सहायता से लकड़ी, चमड़ा, लोहा, हड्डी आदि के भीतर की वस्तु भी देखी जा सकती है। कैसे आश्चर्य की बात है! डॉक्टर लोग इस विज्ञान की देन द्वारा शरीर के अन्दर की दशा देखकर बड़े-बड़े भयंकर रोगों को दूर करने में समर्थ हुए हैं। कभी-कभी खेल में बच्चा किसी छोटे खिलौने को निगल जाता है और उसकी जान पर आ बनती है। उस समय एक्स-रे ही उसकी प्राण-रक्षा करती है। इस यन्त्र ने जड़ पदार्थों की आन्तरिक अवस्था बताकर वैज्ञानिकों के अनुसंधान के लिए सामग्री जुटाई है।

आमोद-प्रमोद देने वाले कई चमत्कारों को विज्ञान ने जन्म दिया है। सिनेमा कैसा चकित करने वाला चमत्कार है। पर्दे पर नाचते-गाते, उछलते-कूदते और बात-चीत करते हुए चित्रों को देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। भागते हुए घोड़े की टाप, मोटर की आवाज आदि सुनकर हम दङ्ग रह जाते हैं। प्रकृति हरे, गुलाबी, काले, लाल, नीले, पीले आदि रंग के पदार्थ को उनके स्वाभाविक रंग देखकर अचम्भा होता है। ऊषा की लालिमा, वन-स्थली की हरीतिमा, आकाश की नीलिमा, मेघों की कालिमा; और

पुष्पों के तरह-तरह के रंग चित्र-पट पर देखे जाते हैं। ग्रामोफोन नामक चमत्कार देखकर बुद्धि काम नहीं करती। नाना प्रकार के गाने विभिन्न स्वरों में सुनकर हमारे आश्चय का ठिकाना नहीं रहता। धन्य है विज्ञान जिसने ध्वनि पर भी आधिपत्य जमा लिया है ! रेडियो भी इसी प्रकार का आविष्कार है। इससे भी घर-बैठे संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गायक का गायन सुना जा सकता है। यह ग्रामोफोन से भी अधिक चमत्कृत करने वाला है। ग्रामोफोन में गायकों के रैकॉर्ड मशीन पर लगाये जाते हैं जिनमें गाना भरा रहता है। रेडियो में यह कुछ भी नहीं करना पड़ता। सामने एक सन्दूक रक्खा रहता है और वही भाँति-भाँति के गाने सुनाता रहता है। अभी एक और आविष्कार हुआ है जिसका नाम टेलीविजन है, इससे गाना सुनने के साथ-साथ गायक का चित्र अथवा नर्तकी का नृत्य भी दिखलाई पड़ता है। बलिहारी है विज्ञान की !

बिजली के लैम्प और पंखों का आजकल खूब प्रचार है। बिना किसी के जलाये बटन के दबाने मात्र से क्षण-भर में लैम्प जल जाता है और चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। कैसी आश्चर्यजनक बात है ! आँधी और मेह लैम्प को नहीं बुझा सकते। तेल की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती। पंखे बिना किसी के हिलाये चलते रहते हैं, केवल बटन दबाना पड़ता है। पंखा चलाने के लिए किसी नौकर की जरूरत नहीं होती।

विज्ञान के असंख्य चमत्कार देखे जाते हैं। सबका दिग्दर्शन कराना असम्भव-सा है। इन चमत्कारों ने विश्व को पूर्णतया परिवर्तित कर दिया है। यदि किसी शक्ति से १०० वष पहले का मनुष्य आजकल के संसार में लाया जा सके तो शायद वह यह न पहचान सकेगा कि यह वही संसार है जिसमें वह रहता था; अपने चारों ओर तरह-तरह के चमत्कार देख कर वह दंग रह जायगा। आजकल विज्ञान बड़ी द्रुति-गति से असम्भव बातों को भी सम्भव कर रहा है, स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने का प्रयत्न करके

विधाता की सृष्टि में हस्तक्षेप कर रहा है, कृत्रिम मनुष्य बना रहा है और मृतक शरीर में जीवन का संचार करने के प्रयत्नों में संलग्न है। यह सब होगया तो विधाता का स्थान विज्ञान ग्रहण कर लेगा, इसमें सन्देह नहीं।

पाश्चात्य सभ्यता का भारत पर प्रभाव

(१) प्रस्तावना—प्राचीन भारतीय सभ्यता की एक झलक

(२) पाश्चात्य सभ्यता से भारत को हानियाँ—
   (क) फैशन की गुलामी और दिखावटीपन, (ख) धर्म से उदासीनता, (ग) रहन-सहन का ऊँचा होना, (घ) आत्मगौरव पर कुठाराघात,

(३) पाश्चात्य सभ्यता से लाभ—
   (क) राष्ट्रीयता के भाव की उत्पत्ति, (ख) सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों का बहिष्कार, (ग) समय की पावन्दी और सफाई-प्रियता

(४) उपसंहार—पाश्चात्य सभ्यता का मूल्य

भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता का मूल-मंत्र था--Plain living and high thinking अर्थात् सादा जीवन और उच्च विचार। हमारे पूर्वज अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करते थे। राजे-महाराजे तक एक दुपट्टा ओढ़ कर राज-सभा में बैठ जाया करते थे। खान-पान वेष-भूषा, रीति-रिवाज सब में उन्हें सादगी प्रिय थी। उनकी प्रकृति बड़ी सीधी-सादी होती थी। उन्हें दिखावटीपन नहीं रुचता था। प्राचीन सभ्यता संतोष का पाठ पढ़ाती थी और आत्मोन्नति के लिए मार्ग परिष्कृत करती थी। धर्म हमारी प्राचीन सभ्यता का महत्त्वपूर्ण अंग था। प्रत्येक कार्य की अच्छाई-बुराई की जाँच धर्म की कसौटी पर की जाती थी। वस्तुतः प्राचीन भारतीय सभ्यता पूर्णतया आध्यात्मवाद की ओर झुकी हुई थी।

पर आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय सभ्यता पूर्वकालीन सभ्यता से बिलकुल पृथक् हो गई है। यहाँ की फैशन की गुलामी और दिखावटीपन पाश्चत्य सभ्यता की देन है। यह देखा जाता है कि भारतीय पुरुष विलायती साहबों की और भारतीय स्त्रियाँ विलायती मेमों की नकल करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि पाश्चात्य देशों में फैशन का बाजार गरम है। वहाँ नित्य नए फैशन बदलते रहते हैं जिनका कुप्रभाव भारतवर्ष पर पड़ता रहता है। हमारे देश में पढ़े-लिखे व्यक्तियों पर तो फैशन का भूत खूब सवार है। हाँ, अशिक्षित उसके पंजे से अभी बाहर हैं । विद्यार्थियों अथवा सरकारी कर्मचारियों को देखिए। उनमें टीम-टाम, तड़क-भड़क ; और चटक-मटक का बाहुल्य मिलेगा। हममें आजकल दिखावटीपन भी कम नहीं है। हम अपनी वास्तविकता को छिपा कर बाहरी शान-शौकत दिखाते हैं। निस्सन्देह हम फैशन और दिखावटीपन के पूरे दास बनें हुये हैं।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीयों को धर्म से भी उदासीन बना दिया है। यह इसी सभ्यता का कुप्रभाव है कि हमारे देश में धर्म के बन्धन ढीले पड़ गए हैं। वह धर्म जो एक दिन समस्त भारत पर अपना अधिकार रखता था, आज पैरों से कुचला जा रहा है; वह धर्म जो एक दिन इस देश का प्राण था आज पैर का जूता समझा जारहा है। पाश्चात्य भौतिकता ने हमारी धर्म-प्रियता और आध्यात्मिकता की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। 'खाओ, पीओ, और मौज उड़ाओ की तुमुल ध्वनि से देश को गुँजा दिया है। हम ईश्वर और आत्मा को भूल गए हैं।

पाश्चात्य सभ्यता से अन्य हानि यह हुई है कि फैशन के कारण भारतीयों की रहन-सहन ऊँची हो गई है। पहिले यदि किसी परिवार का मासिक व्यय ३० रुपये होता था तो आजकल १००० रुपये से कम नहीं होता। पश्चिम वालों की रहन-सहन ऊँची है। उनके

संसर्ग में रह कर हम लोगों की रहन-सहन भी ऊँची हो गई है। हमारी आवश्यकताएँ नित्य बढ़ती जा रही हैं। पहले यदि किसी मनुष्य को दो कुरते या अंगरखे, दो धोतियाँ, एक दुपट्टा; और एक टोपी पर्याप्त होती थी तो आज उसको कम से कम दो कोट, चार कमीज-कुरते, चार धोतियाँ, दो पायजामे, दो पेन्ट, दो नेकर, दो जोड़े मोजे, दो बनियान; और दो टोपियों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई है। कई आवश्यकताएँ तो नितांत नई हैं। आवश्यकताओं में वृद्धि हो गई है, पर आय में नहीं। परिणाम यह हुआ है कि भारतीयों का जीवन दुःखमय हो गया है।

भारत को पाश्चात्य सभ्यता से जो सबसे बड़ी हानि हुई है वह आत्म-गौरव पर कुठाराघात है। भारतीय स्त्री-पुरुषों में आत्म-गौरव का भाव नहीं रह गया है। हम लोग सब बातों में अपने को अँग्रेजों से छोटा समझते हैं। अँग्रेज हमारे अनुकरणीय हो रहे हैं। उनके ताल-सुर पर हम नाचते हैं। उनकी रहन-सहन, उनकी वेश-भूषा उनके खान-पान का अनुकरण करने में हम अपना महत्त्व समझते हैं हममें यह विचार जड़ पकड़ गया है कि प्रत्येक भारतीय वस्तु बुरी है। इसे त्याग देना चाहिये। हम भारतीय रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान से मुख मोड़ रहे हैं। क्या कोई जाति या देश आत्म-गौरव से च्युत हो कर अपना अस्तित्व संसार में रख सकता है।

निष्पक्षता से देखने पर ज्ञात होगा कि पाश्चात्य सभ्यता से जहाँ हमारे देश को हानियाँ हुई हैं वहाँ कुछ लाभ भी हुए हैं। यह पाश्चात्य सभ्यता का ही प्रसाद है कि भारतीयों में राष्ट्रीयता का संचार हुआ है। हमारे मध्य लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय-महात्मा गाँधी,महामना मालवीय, डा०राजेन्द्रप्रसाद,श्रीजवाहरलाल नेहरू आदि राष्ट्रीय व्यक्ति अवतीर्ण हुए हैं। देश में स्वतंत्रता की लहर फैली हुई है। कहना न होगा कि पश्चिम वालों का राष्ट्र-प्रेम जगत-प्रसिद्ध है।

पाश्चात्य सभ्यता ने हमारी सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों का बहिष्कार किया है। स्त्रियों की दयनीय स्थिति में सुधार, सती की प्रथा का अन्त, बाल-विवाहों में कमी, विधवा-विवाह-प्रचार, शूद्रों के प्रति सद्व्यवहार आदि इसी सभ्यता की देन हैं। हमारे धार्मिक ढोंगों और आडम्बरों का अन्त भी पाश्चात्य सभ्यता ने ही किया है।

पश्चिम वालों से हमने समय की पाबन्दी और सफाई रखना सीखा है। अँग्रेज लोग समय के बड़े पाबन्द होते हैं और साफ-सुथरा रहना उन्हें बहुत पसन्द है। भारतीय लोगों में इन दोनों बातों का अभाव है। गाँवों में चले जाइये, आजकल भी इन बातों का अभाव मिलेगा। जो भारतीय अङ्गरेजों के अथवा उनकी सभ्यता के सम्पर्क में आ गये हैं उनमें सफाई और समय की पाबंदी खूब देखी जाती है

ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि भारतवर्ष के लिए पाश्चात्य सभ्यता का मूल्य क्या है? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि हमारे लिए पाश्चात्य सभ्यता मूल्य-रहित प्रमाणित नहीं हुई है। यद्यपि लाभ की अपेक्षा इससे हानियाँ अधिक हुई हैं तो भी हमें इसका महत्व स्वीकार करना पड़ेगा। जहाँ इसका एक अङ्ग कलुषित है वहाँ दूसरा उज्ज्वल भी है। हमें चाहिए कि हम नीर-क्षीर-विवेक से इसकी अच्छाइयाँ ही ग्रहण करते रहें। तभी हमारे देश का कल्याण हो सकता है।

वायुयान

(१) प्रस्तावना—विज्ञान की करामात और वायुयान

(२) वायुयान का जन्म और विकास

(३) वायुयान की बनावट और उड़ाने का ढँग

(४) वायुयान से लाभ

(५) वायुयान की हानियाँ और कठिनाइयाँ

(६) उपसंहार—वायुयान का भविष्य

विज्ञान के आविष्कारों ने संसार में क्रान्ति उपस्थित कर दी है, असम्भव बातों को भी सम्भव कर दिखलाया है। विज्ञान की नित्य नई करामात देखकर हम आश्चर्य-सागर में निमग्न हो जाते हैं। टेलीफोन, बेतार का तार, ग्रामोफोन, सिनेमा, एक्स-रे, केमरा, टेलीविजन, वायुयान आदि एक से एक बढ़कर विज्ञान के अनेक आश्चर्यजनक चमत्कार हैं। कौन जानता था एक दिन मनुष्य भी पक्षियों की भाँति उड़ सकेगा ? रामचन्द्रजी के पुष्पक विमान की बात कोरी कवि-कल्पना ही समझी जाती थी। पर आज हम पक्षियों की तरह पंख फैलाये हुए, नभ का वक्षस्थल चीरते हुए, गगन में गरजते हुए, वायुयानों को इधर से उधर उड़ते हुए देखते हैं तब हमें पुष्पक विमान की सत्यता में विश्वास होता है।

आधुनिक वायुयानों का विकास गुब्बारों से हुआ है। आरम्भ में पक्षियों को उड़ते हुए देखकर मनुष्य को भी उड़ने की इच्छा हुई। फल-स्वरूप गुब्बारों की रचना की गई। १८ वीं शताब्दी में गुब्बारों का व्यवहार होने लगा। उसमें हाइड्रोजन नामक गैस भरी जाती थी जो वायु से हल्की होने के कारण उसको उड़ा सकती थी। मनुष्य उनमें बैठकर उड़ने लगे, पर उनमें सैर करना भय-रहित न था। हवा के झोंके से गुब्बारा चाहे जिधर उड़ जाता था। उस पर कोई नियन्त्रण न था। जो लोग उसमें उड़ते थे वे कभी-कभी बड़े संकट में पड़ जाते थे। धीरे-धीरे गुब्बारों पर नियन्त्रण किया गया। ऐसे गुब्बारे बनाये गये जिन्हें मनुष्य इच्छानुसार जिस दिशा में चाहते थे उड़ा सकते थे, पर उनसे भी सन्तुष्टि नहीं हुई। सन् १८६७ में प्रथम वायुयान के दर्शन हुए। इसके पश्चात् सन् १८९९ में जेप्लिन नामक जर्मन ने 'जेप्लिन' नामक वायुयान का निर्माण किया यह काफी अच्छा वायुयान था। यूरुपीय महासमर

में इस हवाई जहाज के कार्य देखकर लोग दंग रह गए। इसमें कुछ दोष अवश्य थे। इसमें गैस से भरे गुब्बारे रखने पड़ते थे जिनसे इसका आकार बड़ा हो जाता था और यह द्रुत-गति से नहीं उड़ सकता था। धीरे-धीरे वायुयान में उन्नति और सुधार होता गया। अन्त में सन् १६०३ में अमेरिका के ओरविल राइट और विलिवर राइट नामक दो भाइयों ने इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की, अतः वायुयान के आविष्कार का श्रेय इन्हीं दो भाइयों को मिला है।

वायुयान प्रायः लकड़ी का बनता है, पर अब लोहे का भी बनने लगा है। इसके कई भाग होते हैं जिनमें इंजिन सब से प्रधान है। यह पैट्रोल का होता है और इसमें ३५ से लेकर ४० घोड़ों तक का बल होता है। एञ्जिन द्वारा वायुयान पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। यह चाहे जिस दशा में घुमाया और चलाया जा सकता है। वायुयान के सिरे की ओर उसको चलाने वाले के लिए स्थान रहता है। वायुयान के किनारों पर पंख होते हैं। इनकी संख्या २, ४, ६ होती है। वायुयान में प्रोपैलर होता है जो इसे आगे-पीछे बढ़ा-हटा सकता है। दो पहिए भी होते हैं जो इस प्रकार रक्खे जाते हैं कि वायुयान का मुख ऊपर को उठा रहे। वायुयान का रूप चील-सा होता है। जिस समय यह उड़ता है उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो चील उड़ रही हो। उड़ने से पूर्व पंखों को ठीक तरह से लगाते हैं और फिर एञ्जिन को चलाते हैं। इससे प्रोपैलर बड़े वेग से घूमने लगता है और वायुयान पहियों के ऊपर पृथ्वी पर दौड़ने लगता है। पंखों पर वायु का दबाव पड़ने से यह धरती से ऊपर उठकर वायु में उड़ने लगता है।

वायुयान से अनेक लाभ हैं। इसकी गति २०० मील प्रति घण्टे से भी अधिक होती है, जिससे महीनों का मार्ग दिनों में समाप्त हो जाता है। इङ्गलैंड से भारतवर्ष आने में ३–४ दिन लगते हैं। जिस द्रुत-गति से वायुयान चल सकता है, उस गति से न तो स्थल की कोई सवारी जा सकती है और न जल की कोई सवारी। आवा-

गमन के साधनों में वायुयान ने क्रान्ति उत्पन्न करदी है। द्रुत-गति के अतिरिक्त यात्रा के इस साधन के लिये न सड़क बनवाने की आवश्यकता है और न पुल बनवाने की। इसको मार्ग में न पर्वतों की बाधा है और न जंगलों की। न नदी नाले की रुकावट है और न समुद्र की। डाक भी वायुयान से बहुत शीघ्र आती जाती है। आजकल देश-विदेश से डाक लाने और वहाँ ले जाने के लिए इसका दिन-प्रतिदिन प्रयोग बढ़ता जा रहा है। युद्ध के समय संहार और रक्षा के लिए इसका बहुत व्यवहार होता है। यूरुपीय महासमर में वायुयानों ने धूम मचा दी थी। शत्रुओं की सेना का निरीक्षण, परिस्थिति की देख-भाल, विषैली गैसों का फैलाना, बम-वर्षा, रसद-प्राप्ति आदि के लिये इनका उपयोग होता है। अब दुर्ग और खाई द्वारा शत्रु अपने प्राण नहीं बचा सकते। वायुयान मनुष्य को दुर्गम स्थान की सैर करा सकता है। आज तक जो स्थान मनुष्य के न पहुँच सकने के कारण अज्ञात थे अब इसके प्रताप से ज्ञात होने लगे। वायुयान के यात्रियों को सब प्रकार की सुविधाएँ रहती हैं।

इतने लाभ होते हुए भी वायुयान से कुछ हानियाँ हैं। अभी तक वायुयान की यात्रा भय-रहित नहीं है। कभी यह चट्टानों से टकरा कर चूर-चूर हो जाता है। कभी दो वायुयान आपस में भिड़ जाते हैं। कभी वायुयान में आग लग जाती है। कभी इसका एञ्जिन काम करना बन्द कर देता है। प्रत्येक दशा में यात्रियों की मृत्यु और लाखों रुपयों पर पानी फिर जाता है। वायुयान युद्ध में बड़ा घातक सिद्ध होता है। इसकी कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। यह लम्बे-चौड़े मैदान या जलाशय में ही उतर सकता है और इसमें यात्रा करने में बहुत रुपये व्यय करने पड़ते हैं। केवल धनिक ही यात्रा के इस साधन का उपयोग कर सकते हैं।

यह सब होते हुए भी वायुयान का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसका प्रचार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। भारत में

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली, आगरा, इलाहाबाद आदि अनेक नगरों में वायुयानों के स्टेशन बन गये हैं। वायुयानों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। अब तक ४० यात्रियों तक को ले जाने वाले वायुयान बन सके हैं और ३६ सहस्र फीट तक ऊँचे उड़ सके हैं। धीरे-धीरे इनमें यात्रा करने का व्यय कम होता जा रहा है। यदि इसी प्रकार उन्नति होती गई तो वह दिन दूर नहीं हैं जब रेलों और मोटरों की भाँति ये भी स्थान-स्थान पर दिखाई देंगे और संसार के दूर से दूर स्थान को एक दरिद्र के लिए भी घर-आँगन बना देंगे।

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता और उसका रूप

(१) प्रस्तावना—स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता

(२) (क) कूपमण्डूकता का न रहना, (ख) गृहस्थी के काम-काज करने में कुशलता प्राप्त करना, (ग) स्वच्छता-प्रियता, (घ) ललित-कलाओं के ज्ञान से मनोरंजन की योग्यता प्राप्त करना

(३) स्त्री-शिक्षा का रूप

(४) उपसंहार—भारत में स्त्री-शिक्षा की कमी और उसके दुष्परिणाम

पुरुष के साथ-साथ स्त्री को शिक्षित बनाना किस देश अथवा जाति के लिए आवश्यक न होगा ? स्त्री माता-रूप में हमारी गुरु और पत्नी-रूप में हमारी परामर्श-दात्री है। इसलिये उसका शिक्षित होना नितान्त वांछनीय है, क्योंकि शिक्षा के बिना मस्तिष्क का विकास तथा ज्ञान-भण्डार असम्भव है और बिना इनके गुरु के अथवा परामर्श देने के कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। पत्नी के अशिक्षित होने पर पति की शक्ति आधी रह जाती है और गृहस्थी का कार्य भी सुचारु रूप से नहीं चल सकता।

स्त्री-शिक्षा से अनेक लाभ हैं। मानसिक विकास और ज्ञान की वृद्धि से स्त्री की कूप-मण्डूकता जाती रहती है। निरक्षर होने के कारण वह न तो देश-विदेशकी दशा से परिचित रह सकती है और न उसकी समस्याओं को ही समझ सकती है। वह अन्ध-विश्वासों और प्रचलित कुरीतियों की भक्त हो जाती है। आदिकाल से लेकर अब तक जितना ज्ञान-प्रसार हुआ है उसका वह कुछ भी उपयोग नहीं कर सकती। शिक्षा ही वह शक्ति है जिसे प्राप्त करने पर स्त्री पारिवारिक जीवन में सुख की सुधा-धारा प्रवाहित कर सकती है तथा देश और समाज का कल्याण करने में पर्याप्त योग दे सकती है।

शिक्षा से स्त्री में गृहस्थी के काम-काज करने की कुशलता आ जाती है। वह घर के सब काम-काज को बड़ी योग्यता और अच्छाई के साथ कर सकती है। वह अपने घर का हिसाब-किताब रख सकती है और खाने-पीने का समुचित प्रबन्ध कर सकती है। उसे घरेलू चिकित्सा, सीना-पिरोना आदि का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है। वह बच्चों का पालन-पोषण भी अच्छी तरह कर सकती है और उनमें अच्छे-अच्छे गुणों का सूत्रपात कर सकती है। वह बच्चों की सर्वश्रेष्ठ गुरु बन सकती है। इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जिनमें माता ने अपने बच्चे को सर्वोत्कृष्ट मनुष्य बनाने की नींव डाली। शिवाजी को शिवाजी बनाने वाली उनकी शिक्षित जननी जीजीबाई थीं। उन्होंने बालक शिवाजी को रामायण, महाभारत आदि वीरता-पूर्ण ग्रंथों का ज्ञान कराया और उन्हें हिन्दू-धर्म के साँचे में ढाल दिया।

यह भी देखा जाता है कि शिक्षा से स्त्री स्वच्छता-प्रिय हो जाती है। अशिक्षित स्त्रियाँ प्रायः अपने शरीर एवं वस्त्रों की सफाई की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। वे आभूषणों के लिये अपने प्राण तक दे सकती हैं, पर साफ-सुथरे वस्त्रों से उन्हें प्रेम नहीं। इसके अतिरिक्त वे अपने घरों को गन्दगी का मूर्तिमान रूप दे देती हैं, उनके घरों में कहीं कूड़ा रहता है, कहीं टूटे-फूटे वर्तन अटे रहते हैं,

कहीं फटे-पुराने कपड़ों का ढेर लगा रहता है। घर की सारी वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षा से स्वच्छता की ओर प्रवृत्ति होती है।

शिक्षा द्वारा स्त्री संगीत आदि ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करके पारिवारिक जीवन में मधुरता और सरसता का संचार कर सकती है; मनोविनोद की पर्याप्त सामग्री जुटा सकती है। वह अपना, अपने पति का, तथा अपने बालकों का समान रूप से मनोरंजन कर सकती है। साहित्य के अध्ययन से उसके हृदय का परिष्कार होता है और उसमें हृदय को लुभाने वाले गुणों का संचार होता है।

अब प्रश्न उठता है कि स्त्री-शिक्षा का रूप क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान शिक्षा मिलनी चाहिए। वे सह-शिक्षा के भक्त हैं और चाहते हैं कि स्त्रियाँ पुरुष के प्रत्येक कार्य में भाग ले सकें। दूसरे वर्ग के लोगों के अनुसार स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र विभिन्न हैं। अतः स्त्री की शिक्षा पुरुष की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए। हमारी दृष्टि में दूसरा विचार अधिक बुद्धि-संगत प्रतीत होता है। निःसन्देह स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक हैं। स्त्री का क्षेत्र गृह है और पुरुष का संसार। गृह के सभी कार्य—गृहस्थी का संचालन, बालकों का पालन-पोषण, भोजन-व्यवस्था, सिलाई, बुनाई, कशीदाकारी, तीमारदारी संगीत, चित्र, नृत्यादि द्वारा मनोरंजन इत्यादि स्त्रियों के करने के हैं। पुरुष के कार्य जीविकोपार्जन, सन्तान-शिक्षा, देश-सेवा, समाज-सेवा आदि हैं। अतः स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए जो उनके कार्यों में सहायक हो सकें। कांग्रेस-नेता श्रीयुत भूलाभाई देसाई ने एक बार कहा था—

"लड़कियों के लिए अलग शिक्षालयों की इसीलिए आवश्यकता नहीं कि वे लड़कों का मुकाबिला नहीं कर सकतीं, वरन् इसलिए

कि लड़की लड़के से भिन्न है । प्रकृति उसे लड़के से भिन्न रखना चाहती है और इस कारण उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक गुणों की सर्वोत्तम संस्कृति और पूर्णतम विकास के लिए उसे विभिन्न परिस्थिति रखना आवश्यक है । लड़कियों के लिए संगीत बुनाई गृह-प्रबन्ध, शिशु-मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र प्रभृति जिन विशेष विषयों के पढ़ाने की आवश्यकता है उनका समुचित प्रबन्ध लड़कों के शिक्षालयों में नहीं हो सकता ।"

शायद पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी इस विचार से सहमत न हों । इस सम्बन्ध में हमें यही कहना है कि मनुष्य-समाज का कल्याण स्त्री को गृह-स्वामिनी बनाने में है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि गृह-कार्यों के अतिरिक्त स्त्रियाँ अन्य कोई कार्य न करें । वे अवकाशानुसार पुरूषों के कार्यों में भी हाथ बँटा सकती हैं, घर के काम-काज से छुट्टी पाकर देश तथा समाज के कार्यों में भाग ले सकती हैं, पर उनका प्रधान क्षेत्र घर ही है ।

अतः गृह को केन्द्र मानकर स्त्री की शिक्षा-दीक्षा का विधान होना चाहिए। गृहस्थी के काम-काज स्त्री-शिक्षा के विषय बनाये जायँ, जैसे—सिलाई, बुनाई, कशीदाकारी, घरेलू चिकित्सा, तीमारदारी, भोजन बनाना, बच्चों का पालन-पोषण; और सेवा-सुश्रूषा आदि । इनके अतिरिक्त स्त्री को साहित्य, संगीत, चित्र, नृत्य आदि ललित कलाओं का भी परिचय हो पिछले प्रकार के विषय यद्यपि उसके कार्य-क्षेत्र में किसी प्रकार सहायक नहीं, तथापि मनोविनोदार्थ उनकी आवश्यकता है, इसमें सन्देह नहीं ।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान है। अतः स्त्री-शिक्षा में इन तीनों शक्तियों के विकास की व्यवस्था होनी चाहिए । लड़कियों के लिए खेल आदि व्यायाम का भी प्रबन्ध हो, जिससे उनके शरीर नीरोग एवं भली-भाँति विकसित

हों। घूमना, तैरना, नृत्य बैडमिंटन, टैनिस आदि द्वारा उनका अच्छा व्यायाम हो सकता है। आत्मिक-उत्थान के लिए चारित्रिक शिक्षा की आवश्यकता है। इसके लिए उन्हें सती-साध्वी नारियों के चरित्र का अध्ययन कराना चाहिए।

वर्त्तमान शिक्षा स्त्रियों को हितकर नहीं है। इससे उन्हें गृहस्थी के काम-काज का कुछ भी ज्ञान नहीं हो पाता, प्रत्युत वे उससे घृणा करने लगती हैं। वे अपव्ययी, फैशन की दासी और विलास-प्रिय हो जाती हैं। न उनमें शारीरिक गठन देखा जाता है और न चरित्र की महत्ता। अतः इसका निराकरण करना चाहिए।

हमारे देश में स्त्री-शिक्षा की बहुत कमी है। भारतवर्ष के अतिरिक्त विश्व में शायद ही कोई ऐसा अन्य देश होगा जहाँ स्त्री-शिक्षा की इतनी न्यूनता हो। जहाँ अधिकांश जन-समाज निरक्षरता की महाव्याधि से पीड़ित है, जहाँ पुरुष ही अशिक्षित हैं वहाँ स्त्रियों का क्या कहना? अशिक्षा देवी की कृपा से हमारे यहाँ स्त्रियों में कुरीतियाँ, अंध-विश्वास, भय, पर्दा आभूषण-प्रियता, गन्दगी आदि बातें पाई जाती हैं और वे सुषुप्तावस्था में पड़ी हुई हैं। पर समय की पुकार है—

"चिर निद्रा को कर त्यक्त,
आज हे भारतीय पावन नारी" !

'जो तोकूँ काँटा बुवै ताहि बोइ तू फूल'

(१) प्रस्तावना—उक्ति का अर्थ और उसकी आदर्शता
(२) इस उक्ति के अनुसार चलने से लाभ—
(क) आत्मोद्धार, (क) संसार में आदर और यश
(३) इस उक्ति के अनुसरण से हानि—

(क) आपत्तियाँ, (ख) स्वाभिमान को धक्का
(४) उपसंहार—सारांश

इस उक्ति का अर्थ है कि जो बुराई करे उसके साथ भलाई करनी चाहिए। यह उच्च आदर्श है जिसका पालन करना कठिन है। प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य ही क्यों प्रत्येक जीव, प्रतिकार चाहता है। चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणियों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। जिसे तंग कीजियेगा उसी में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक उठेगी। यह सृष्टि का एक साधारण नियम है। पर मनुष्य को, जो सृष्टि का सिरमौर है, चाहिए कि वह पशु-पक्षिओं से अपने को ऊँचा उठाए, हृदय की कलुषित भावनाओं को दूर करे, जीवन के आदर्शों का पालन करे। कीड़े-मकोड़े अथवा पशु-पक्षियों का-सा स्वभाव मनुष्य जाति को शोभा नहीं देता। क्या मनुष्यता यह पाठ पढ़ाती है कि जो बुराई करे उसके साथ बुराई करनी चाहिए? जो मनुष्य बुराई के बदले भलाई करेगा उसे बहुत लाभ होगा। वह अपनी आत्मा का उद्धार कर सकेगा। वह अपनी आत्मा को उच्चता की चरम-सीमा पर पहुँचा सकेगा। बुराई के स्थान पर भलाई करना एक उत्कृष्ट तप है, जिसके सम्मुख सामान्य तप नहीं ठहर सकता। इसके समक्ष यज्ञ की कोई हस्ती नहीं। जप तुच्छ है, दान-दीन है; और योग आलसियों का व्यवसाय है। यह वह साधन है जिसके द्वारा उच्च से उच्च गुण प्राप्त किया जा सकता है। यह वह साधन है जिससे अधिक से अधिक शक्ति जुटाई जा सकती है। यह वह साधन है जिससे मनुष्य देवता बन सकता है। जो मनुष्य प्रतिहिंसा की अग्नि में जलता रहता है, जो मनुष्य प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर रहता है उसकी आत्मा पतित हो जाती है। शत्रु से बदला लेने के लिए नाना प्रकार के दाँव-पेच, कूट नीति, छल-कपट किये जाते हैं। इनसे आत्मा मर जाती है, मनुष्य राक्षस बन जाता है।

बुराई के बदले भलाई करने वाले, काँटे के बदले फूल बोने वाले व्यक्ति का संसार में आदर होता है। जिस व्यक्ति ने आपके साथ बुरा व्यवहार किया है उसके साथ यदि आप भला व्यवहार करते हैं

तो उस पर आपका कितना अधिक प्रभाव पड़ेगा! वह आपके सद्-व्यवहार के भार से कितना दब जायगा! उसके हृदय में आपके प्रति कितना आदर होगा! वह अपने आपको कितना धिक्कारेगा! उसके हृदय में तो आप घर करेंगे ही, साथ में संसार के अन्य मनुष्यों के भी आप आदर-पात्र होंगे। वे उसकी निन्दा करेंगे और आपकी बड़ाई। वे आपका हृदय से स्वागत करेंगे। आपकी प्रशंसा करने में अपनी वाणी को धन्य समझेंगे। बुराई के स्थान पर भलाई करने वाले मनुष्य को पूर्ण गौरव प्राप्त होता है। सभी उसके प्रति श्रद्धा करते हैं। सभी उसका यशोगान करते हैं। सभी उसको मस्तक नवाते हैं। झौंपड़ी से लेकर राज-प्रासाद तक उसका सत्कार होता है। मृत्यु-पश्चात् ऐसे लोगों की यश-चन्द्रिका विश्व को आलोकित करती रहती है। इतिहास में ऐसे व्यक्तियों के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते हैं। राम का उदाहरण ले लीजिए। कैकेयी ने उनके साथ वह दुर्व्यवहार किया कि उन्हें १४ वर्ष का वनवास दिया परन्तु राम ने इसका बदला सदैव सद्व्यवहार द्वारा ही दिया। फलतः वह आजीवन आत्मग्लानि के गर्त में डूबी रही। देखिए उसने स्वयं एक स्थान पर क्या कहा है—

"युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा—
धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।"

राम के चरित्र की यह विशेषता उन्हें क्या राजा, क्या रङ्क, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध, सभी का हृदय-सम्राट बनाती है।

बुराई के बदले भलाई करने से लाभ तो होते ही हैं, किन्तु कुछ हानि भी होती है। इस आदर्श का अनुयायी व्यक्ति आपत्तियों से घिरा रहता है। संसार में दुरात्माओं की संख्या बहुत है। जब तक कोई मनुष्य थप्पड़ का जवाब घूँसे से और तलवार का जवाब गोली से नहीं देता तब तक दुष्ट लोग उसे कायर समझते

हैं। वे स्थान-स्थान पर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। इससे कुछ समय के लिए विरोधियों एवं विपक्षियों को प्रोत्साहन मिलता है और वे अपने दुराचारों को बढ़ाते हुए चले जाते हैं, जिससे उन्हें अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। किन्तु यह दशा अधिक दिन तक नहीं रहती। लोकमत इसका नियन्त्रण करता है। अत्याचारियों तथा अन्यायियों का दमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त विपक्षियों के हृदय में भी परिवर्तन होता है। यह सम्भव नहीं कि नीच से नीच व्यक्ति भी सदैव आपके साथ बुराई ही करता जाय, जब आप उसका जवाब भलाई से दें।

बुराई के स्थान पर भलाई करने से स्वाभिमान को भी धक्का लगता है। स्वाभिमान तो यह चाहता है कि जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिए। जो आपका आदर करे उसका आपको आदर करना चाहिए। जो आपका तिरस्कार करे उसका आपको तिरस्कार करना चाहिये, जो आप पर प्रहार करे उस पर आपको प्रहार करना चाहिए।

सारांश यह है कि सांसारिक दृष्टि से बुराई के बदले भलाई का व्यवहार करना उचित नहीं ठहरता। परन्तु मनुष्य को निरा संसारी न बना रहकर अपना कल्याण-पथ ढूँढ़ना चाहिए। यदि कोई बात उस पथ में कण्टक का काम करे तो उसे हटा देने में ही भला है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बुराई के बदले भलाई करना, काँटों के स्थान पर फूल बोना, मनुष्य के लिए कल्याण-पथ है।

ब्रह्मचर्य की महिमा

(१) प्रस्तावना—ब्रह्मचर्य की आवश्यकता
(२) शारीरिक-पुष्टता एवं सौन्दर्य
(३) मानसिक-विकास
(४) आत्मिक-उत्थान

(५) कतिपय ब्रह्मचारियों के उदाहरण
(६) उपसंहार—सारांश

"न तपस्तप इत्याहुब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो नतु मानुषः ॥"

इस कथन के अनुसार ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट तप है। इससे मनुष्य देवता बन जाता है। ऐसे महान् ब्रह्मचर्य को ठुकराकर आज हम पददलित हो रहे हैं। ऐसे महान् ब्रह्मचर्य का तिरस्कार करके आज हम अधोगति के गत में पड़े हुए हैं। कहाँ तो हमारे वीर्यवान् प्रतापी, शक्ति-सम्पन्न एवं दीर्घजीवी पूर्वज और कहाँ निस्तेज, दुबल, रुग्ण और अल्पायु हम ! कहाँ तो बल, बुद्धि एवं शिक्षा के भंडार हमारे पूर्वज और कहाँ बल-बुद्धि-हीन तथा अशिक्षित हम ! इस भयंकर पतन से उद्धार पाने के लिये हमें ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य ही हमें अपनी पूर्व गौरवपूर्ण समृद्धि, पूर्व वैभव को प्रदान कर सकेगा।

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने से मनुष्य का शरीर हृष्ट-पुष्ट और नीरोग होता है। ब्रह्मचर्य से वीर्य-रक्षा होती है और वीर्य शरीर की नीरोगता एवं पुष्टता का कारण है। मुख पर कमनीयता और कपोलों पर गुलाबी छटा किसके प्रताप से देखी जाती है? बैलों के से कन्धे और चौड़ी छाती किसकी देन है? स्पात के सदृश भुज-दंड किसका प्रसाद है? वाणी में सिंह-गर्जन के समान तीव्रता किसके प्रताप से प्राप्त होती है? इन सब प्रश्नों का एक मात्र उत्तर ब्रह्म-चर्य है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से शरीर को अद्‌भुत् शक्ति तो मिलती ही है, साथ में अद्‌भुत कान्ति भी प्राप्त होती है।

मस्तिष्क की प्रौढ़ता एवं समुचित विकास के लिए भी ब्रह्मचर्य की महत्ता कम नहीं। बुद्धि की प्रखरता एवं शुद्धता प्रदान करने वाली वस्तु ब्रह्मचर्य ही है। यही कारण है कि विद्या प्राप्त करने वालों के लिए एक स्वर से सभी ने ब्रह्मचर्य पर जोर दिया है, विद्यार्थियों के लिए अविवाहित रह कर विद्या प्राप्त करने का महत्त्व स्वीकार किया है। यहाँ तक कि हमारे पूर्वजों ने सम्पूर्ण जीवन

को चार आश्रमों में विभाजित करके ब्रह्मचर्याश्रम में ही शिक्षा का विधान रक्खा है। परन्तु खेद का विषय है कि पाश्चात्य सभ्यता के झोकों से हमारा यह सुन्दर विधान टूट गया है। आजकल यह अनिवार्य नहीं है कि विद्यार्थी-जीवन अविवाहित रहकर ही व्यतीत किया जाय। इससे जो हानियाँ हो रही हैं उससे सभी भली-भाँति परिचित हैं। ब्रह्मचर्य से मनन-शक्ति की वृद्धि होती है और मस्तिष्क कार्य करते-करते जल्दी नहीं थकता। इससे स्मरण-शक्ति भी बढ़ती है। प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हमारे पूर्वजों की स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र हो जाती थी कि जिस बात को वे एक बार सुन लेते थे, अथवा जिस वस्तु को एक बार देख लेते थे, उसे आजन्म नहीं भूलते थे। अनुपम साहस एवं निर्भीकता का जनक भी ब्रह्मचर्य ही होता है।

ब्रह्मचर्य से आत्मिक उत्थान भी होता है। क्यों न हो? जब बुद्धि शुद्ध होगी तब आत्मिक उत्थान अवश्यम्भावी है। शुद्ध बुद्धि अवश्य मनुष्य को ऐसे कार्यों में संलग्न करेगी जिसमें उसकी आत्मा को शान्ति मिले और उसकी शक्ति बढ़े। ब्रह्मचर्य के प्रसाद से साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपनी आत्मा का संस्कार करता हुआ मुक्ति तक का अधिकारी हो जाता है। ब्रह्मचर्य उत्तम तप है जैसा कि आरम्भ में ही कहा जा चुका है—

'न तपस्तप इत्याहुब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्'

ब्रह्मचर्य-व्रती की विश्व में कीर्ति-पताका फहराती है। हनुमान जी, भीष्मपितामह आदि ब्रह्मचारियों के यश से आज संसार आलोकित हो रहा है। इन महान् पुरुषों के कार्य स्मरण करके मन में अनुपम आनन्द की सृष्टि होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से भीष्म- पितामह के सामने उनके महान् प्रतापी गुरु परशुरामजी तक को हार माननी पड़ी। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण भगवान् को भी उनके लिए मस्तक झुकाना पड़ा। हनुमानजी ने एक ही घूँसे से रावण को मूर्छित कर दिया। इतना ही नहीं वे एक-सौ योजन लम्बे समुद्र को लाँघकर पार कर गये और इन्होंने द्रोणाचल को

लाकर लक्ष्मणजी की प्राण-रक्षा की यह शक्ति किसने प्रदान की? ब्रह्मचर्य ने।

इतिहास से यह बात भली-भाँति प्रमाणित होती है कि ब्रह्मचर्य से असम्भव कार्य भी सम्भव हो सकता है। ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। ब्रह्मचर्य से हम सम्पूर्ण विश्व के अधिकारी बन सकते हैं। ब्रह्मचर्य से हम इस लोक एवं परलोक दोनों में सुख के भागी हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य ही हमारी विद्या, वैभव एवं उन्नति का एक मात्र साधन है। ब्रह्मचर्य ही भारत-माता में अपूर्व शक्ति संचार करने वाला रसायन है। ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना'

(१) प्रस्तावना—उक्ति का अर्थ
(२) सुमति से शक्ति की प्राप्ति
(३) सुमति से ऐश्वर्य-लाभ
(४) सुमति से लक्ष्मीजी की कृपा
(५) सुमति से सुख
(६) उपसंहार—हमारे देश में सुमति का अभाव और उसका दुष्परिणाम

जहाँ मेल-जोल होता है वहाँ सब प्रकार का ऐश्वर्य छा जाता है। जिस घर में स्त्री-पुरुष मेल-जोल से रहते हैं, जिस घर में पति-पत्नी में कलह नहीं होता, वहाँ लक्ष्मीजी निवास करती हैं, वहाँ सब प्रकार का वैभव देखा जाता है। जिस समाज में लोग हिल-मिल कर काम करते हैं वह सम्पन्न हो जाता है। जिस देश में फूट दानवी की दाल नहीं गलती, जो देश पारस्परिक झगड़ों से सुरक्षित है; जहाँ भिन्न-भिन्न जाति, भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न वर्ग, भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के लोग विचार-विषमता के रहते हुए भी कलह की कीचड़ में नहीं फँसते, वह देश सब प्रकार से भरा-पूरा देखा जाता है। यह इस उक्ति का अर्थ है। इसके 'सम्पति' शब्द

को विस्तृत एवं व्यापक अर्थ में लेना चाहिये, जिनके अन्तर्गत धन-धान्य, गौरव, यश, सुख, शक्ति आदि सभी का समावेश हो जाता है।

अब हमें देखना है कि किस प्रकार सुमति से नाना प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। सुमति से शक्ति मिलती है। Unity is strength अर्थात् एकता बल है। कहावत भी है कि 'एक और एक ग्यारह होते हैं'। सूत की एक अण्टी लीजिए। यदि उसको कोई तोड़ने का प्रयत्न करे तो सफल नहीं हो सकता। क्यों? सूत के कच्चे धागे जो पृथक्-पृथक् बड़ी सरलता से तोड़े जा सकते हैं मिलकर ऐसी शक्ति धारण करते हैं जिनका सामना करना कठिन कार्य होता है। जब कच्चे धागों का यह हाल है तब मनुष्य का क्या कहना? सुमति से मनुष्य की शक्ति कई गुनी हो जाती है। एकता के रज्जु से बँधे हुए जन-समुदाय की ओर कौन आँख उठा सकता है? सुमति के शस्त्र से सुसज्जित समाज का कौन बाल-बाँका कर सकता है? यह सुमति की ही शक्ति है कि मुट्ठी भर अँग्रेजों ने भारत जैसे वृहत् देश पर आधिपत्य जमा रक्खा था।

सुमति से धन-दौलत की भी प्राप्ति होती है। जब घर के लोग हिल-मिल कर काम करेंगे तब उस घर की आर्थिक दशा क्यों न सुधरेगी, तब लक्ष्मीजी उस पर क्यों न कृपा करेंगी? जिस देश में एकता का साम्राज्य रहता है वहाँ धन धान्य का अभाव नहीं रहता। क्या अमेरिका, क्या इङ्गलैंड, क्या जापान, जितने भी समृद्धिशाली देश हैं वहाँ सुमति का बोलबाला है। वास्तव में सुमति के प्रताप से दरिद्रता का बन्धन कट जाता है।

सुमति से ऐश्वर्य-लाभ भी होता है। जब शक्ति होगी, जब रुपया पैसा होगा तब चारों ओर सिक्का जमेगा; चरों ओर प्रभुत्व स्थापित होगा, चारों ओर महिमा फैलेगी, चारों ओर गौरव छा जायगा। जिस जाति, जिस समाज, जिस देश में लोग मेल-जोल से रहते हैं, कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करते हैं, प्रत्येक समस्या को सुलझाने में हाथ बँटाते हैं, पारस्परिक मतभेद में नहीं

उलझते--वह जाति, वह समाज, वह देश विश्व में अपना नाम उज्ज्वल करता है। उसे यश मिलता है। उसका सर्वत्र आदर होता है। सभी उसकी महत्ता स्वीकार करते हैं, सभी उसका गुण-गान करते हैं।

सुमति के प्रसाद से शक्ति, धन-धान्य, ऐश्वर्य आदि नाना प्रकार की सम्पत्ति उपलब्ध होती है, जिससे सुख मिलता है, जीवन सरस हो जाता है। वस्तुतः जिस व्यक्ति का समाज में गौरव होगा, जो सबसे मिलकर रहेगा, जिससे दरिद्रता दूर रहेगी, जो सशक्त होगा—वह क्यों कर सुखी न होगा? दुःख का कारण असफलता है। सुमति के सम्मुख असफलता नहीं टिक सकती। जिस कार्य की ओर सहस्रों हाथ बढ़ेंगे उसमें कहाँ तक सफलता न मिलेगी? जिस कार्य के करने के लिए एक-दूसरे की सहायता को सदैव कटिबद्ध रहेगा उसमें कहाँ तक कामयाबी न होगी?

खेद की बात है कि हमारे देश में लोगों में सुमति नहीं है, सभी जगह फूट की बेल फैली हुई है। एक के कार्य में दूसरा सहायता नहीं देता, एक के साथ दूसरा सहयोग नहीं करता। प्रत्युत एक दूसरे का गला काटने को तैयार रहता है, एक दूसरे की उन्नति देखकर जलता है, एक-दूसरे के मार्ग में रोड़े अटकाता है। एक जाति दूसरी जाति से घृणा करती है। एक धर्मानुयायी दूसरे धर्मानुयायी को देखना नहीं चाहता। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र आपस में झगड़ते हैं। हिन्दू और मुसलमान आपस में शत्रुता का व्यवहार करते हैं। जिस देश की यह दशा हो वह स्वप्न में भी उन्नति नहीं कर सकता, वह स्वप्न में भी ऊँचा नहीं उठ सकता। भारतवर्ष में सुमति के अभाव से जो दुष्परिणाम हुए वे किसी से छिपे नहीं। एकता की कमी का अनुचित लाभ विदेशी लोगों ने उठाया। जयचन्द और पृथ्वीराज की कहानी सब जानते हैं। विदेशियों ने हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण ही नहीं किया हम लोगों के बीच एक चौड़ी खाई भी बना दी। वे भारत के भिन्न-भिन्न वर्गों भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में मनमुटाव पैदा करते रहे थे और हमें आपस

में लड़ाते रहते थे, जिससे हम कभी एक राष्ट्र की स्थापना न कर सकें। आपस में लड़ा-भिड़ा कर इन विदेशियों ने हमारे धन पर भी हाथ साफ किया। इस प्रकार Divide and rule (फूट डालो और राज करो) की कूटनीति से अँग्रेजों ने भारतवर्ष की दयनीय दशा कर दी, भारतवासियों को विपत्ति के समुद्र में डुबो दिया। बड़ी कठिनाई से महात्मा गाँधी ने उनके चंगुल से हमारा उद्धार किया।

अतः हम भारतवासियों को, जिनकी शिराओं में पुण्यात्माओं का रक्त प्रवाहित हो रहा है, चाहिये कि फूट का मुँह काला करें और अपने देश को समृद्धिशाली बनाकर अपने पूर्वजों का नाम उज्ज्वल करें।

दीर्घजीवी बनने के साधन

(१) प्रस्तावना—दीर्घजीवी बनने की आवश्यकता

(२) दीर्घजीवी बनने के साधन

(क) स्वच्छता, (ख) सादा भोजन और मादक वस्तुओं का त्याग, (ग) व्यायाम, (घ) गहरी और पर्याप्त निद्रा, (ङ) नियमित जीवन, (च) ब्रह्मचर्य

(३) उपसंहार—वर्तमान भारत में दीर्घ-जीवियों का अभाव

प्रयेत्क व्यक्ति दीर्घजीवी बनना चाहता है। क्यों? सांसारिक सुखों के उपभोग के लिए। कतिपय महान् आत्माएँ मानव-समाज की सेवा और सुधार के लिए भी अधिक काल तक जीवित रहना चाहती है। पहला उद्देश्य स्वार्थ-पूर्ण है और दूसरा परमार्थ-पूर्ण। वास्तव में संसार के सुखों में लिप्त रहने के लिए दीर्घायु होने की कोई आवश्यकता एवं महत्व नहीं। इससे न तो लोक सधता है और न परलोक। हाँ, परोपकार, समाज-सेवा आदि के लिए दीर्घ-जीवन की नितान्त आवश्यकता है। इससे मनुष्य की इस लोक में ख्याति एवं आदर होता है और यह परलोक में परमपद का अधिकारी बनता है। इसके अतिरिक्त दीर्घ जीवन की इसलिए भी आवश्यकता होती है कि आश्रित परिवार को सुख मिले। अल्प-

जीवियों के सम्बन्धी एवं आश्रित उनके देहावसान पर शोक-सागर में निमग्न हो जाते हैं, संसार उनके लिए सूना होजाता है।

अब प्रश्न उठता है कि दीर्घजीवी कैसे बना जा सकता है? दीर्घजीवी बनने के क्या साधन हैं? स्वच्छता दीघ-जीवन के लिए एक अच्छा साधन है। हमें चाहिए कि हम शुद्ध वायु,शुद्ध जल और शुद्ध भोजन का प्रयोग करें, नित्य स्नान करें, वस्त्रों को स्वच्छ रक्खें और शरीर के प्रत्येक अंग की गंदगी से रक्षा करें। दाँत, नाखून, नाक; और नेत्र इन शारीरिक अवयवों को सदैव मैल-रहित रखने का विशेष ध्यान रखना चाहिए। वस्तुतः स्वच्छता स्वास्थ्य की जननी है और स्वास्थ्य दीर्घ जीवन का जनक है।

दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन सादा भोजन है। प्रत्येक मनुष्य को, जो दीर्घकाल तक जीवित रहने का स्वप्न देखता है, शीघ्र पचने-वाला और पुष्टकारक और सादा भोजन करना चाहिए। मस्तिष्क की शक्ति और रुधिर की वृद्धि के लिए रोटी, दाल, भात, तरकारी; और दूध से बढ़कर लाभदायक अन्य भोजन नहीं है। तरकारी पत्तेदार हो तो अत्युत्तम है। ताजे फल खाना भी आवश्यक है। कुछ कच्ची तरकारी भी खानी चाहिये। रोटी ऐसे आटे की बनवानी चाहिए जिससे भूसी अलग न की गई हो। दाल से छिलका नहीं हटाना चाहिए। चावल पकाने में माँड़ नहीं निकालना चाहिये। नीरोग गाय का धारोष्ण-दूध मिल सके तो बहुत अच्छा है। यदि धारोष्ण-दूध न मिल सके तो उसको एक उबाल तक गर्म करके पीना चाहिये। खटाई, लाल मिर्च और मसालों का जहाँ तक हो सके कम प्रयोग करना चाहिए। शराब, अफीम, भाँग, चाय, कहवा आदि मादक वस्तुओं से सर्वथा बचना चाहिये। इसके अतिरिक्त भोजन धीरे-धीरे चबा-चबाकर करना चाहिए जिससे वह शीघ्र पच जाय।

दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन व्यायाम है। व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। इससे शारीरिक अंगों की शक्ति स्थिर रखी जा सकती है और बढ़ाई भी जा सकती है। इससे हमारे शरीर के

प्रत्येक अंग में रुधिर-संचार समुचित रूप से होता है, क्योंकि इससे मांस की पेशियों पर दबाव पड़ता है और रुधिर तीव्र-गति से दौड़ने लगता है। रक्त के तेज दौड़ने से शरीर में स्फूर्ति और बल आता है। व्यायाम से पाचन-क्रिया भी ठीक रहती है जिससे शरीर रोग-मुक्त रहता है। नीरोगता से मनुष्य दीर्घजीवी बनता है। जिस प्रकार घुन-कीट लकड़ी को खोखला करके नष्ट कर डालता है, उसी प्रकार रोग शरीर को जर्जर बनाकर नष्ट कर देता है।

गहरी और पर्याप्त निद्रा दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह जल्दी सो जाय और जल्दी जग जाय। १० बजे के भीतर ही सो जाना चाहिए और ४ बजे तक जग जाना चाहिए यह वह समय है जब निद्रा गहरी आती है। ४ बजे पश्चात् उठने वाला व्यक्ति दिन-भर आलस्य में डूबा रहता है। ४ बजे के पूर्व ब्रह्म मुहूर्त में जगने वाला व्यक्ति स्फूर्तिवान्, स्वस्थ और शक्ति-सम्पन्न बनता है। कहा भी है–Early to bed and early to rise, makes a man healthy. wealthy and wise. अर्थात् जल्दी सोने और जल्दी उठने से मनुष्य स्वस्थ, समृद्ध एवं बुद्धिमान् बनता है।

नियमित-जीवन दीर्घजीवी बनने का अन्य साधन है। अनियमित जीवन व्यतीत करने सें स्वास्थ्य का सत्यानाश हो जाता है और चित्त भी दुःखी रहता है। जो मनुष्य कभी १० बजे भोजन करता है और कभी १२ बजे, कभी सायङ्काल ५ बजे शौच को जाता है और कभी ८ बजे, कभी रात्रि के ६ बजे सो जाता है और कभी १२ बजे, कभी ५ बजे प्रातःकाल सोकर उठता है और कभी ७ बजे, वह कैसे स्वस्थ रह सकता है? वह तो अपने हाथ अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक काय नियमानुसार हो जिससे शरीर में कोई गड़बड़ न होने पाये। संयम दीर्घ-जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य तो दीर्घ-जीवन का मूलाधार ही है। इससे वीर्य-रक्षा होती है और वीर्य-रक्षा से आयु में वृद्धि होती है। हमारे पूर्वज

ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सहस्रों वर्ष की आयु प्राप्त करते थे। यहाँ तक कि वे मृत्यु को जीत लेते थे। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि दीर्घ-जीवन का इच्छुक व्यक्ति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे।

उपर्युक्त बातों को दृष्टिगत रखते हुए जीवनयापन करने से प्रत्येक मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है। खेद की बात है कि आज-कल हमारे देश में मनुष्य इन बातों को व्यवहार में नहीं लाते। फलतः हम लोगों में कोई दीर्घजीवी नहीं होता। जिस देश में लोग स्वच्छता का महत्त्व न जानते हों, जहाँ लोग अनियमित जीवन व्यतीत करते हों, जिस देश में लोग बाल-विवाह द्वारा ब्रह्मचर्य पर कुठाराघात करते हों वहाँ दीर्घजीवी कैसे पैदा हों?

स्वास्थ्य रक्षा के साधन

(१) प्रस्तावना—स्वास्थ्य की उपयोगिता
(२) स्वास्थ्य-रक्षा के साधन—
(क) संयम, (ख) व्यायाम, (ग) स्वच्छता, (घ) शुद्ध जलवायु, (ङ) प्रकाश, (च) सादा और शक्तिदायक भोजन
(३) उपसंहार—सारांश

शरीर की रक्षा के लिए जिस वस्तु की नितान्त आवश्यकता है वह स्वास्थ्य है। इसके अभाव में शरीर कष्ट-गृह और जीवन अभिशाप बन जाता है। जिस व्यक्ति का शरीर अस्वस्थ होगा, जिस व्यक्ति का शरीर रुग्ण होगा, वह सदैव दुःखी रहेगा। मानो जीवन के आनन्दों की सृष्टि उसके लिए हुई ही नहीं है। उसका जीवन भार-स्वरूप होगा, जिससे मुक्ति पाना वह अपना अहोभाग्य समझेगा।

स्वास्थ्य-रक्षा के साधन हैं—संयम, व्यायाम, स्वच्छता, शुद्ध जलवायु, प्रकाश; और सादा तथा शक्तिदायक भोजन। पहले संयम को लीजिए। हमारे जीवन में संयम का पूर्ण अभाव देखा जाता है। कभी हम ५ बजे प्रातःकाल सोकर उठते हैं तो कभी ७ बजे। कभी हम १० बजे भोजन करते हैं तो कभी १२ बजे। कभी हम सायं-

काल ५ बजे शौच को जाते हैं तो कभी ८ बजे। कभी हम ६ बजे सो जाते हैं तो कभी १२ बजे। इस प्रकार अनियमित हमारा जीवन है। इससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। शरीर में तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। जो लोग संयमित जीवन व्यतीत करते हैं; खान-पान, आहार-विहार आदि में संयम रखते हैं, उनका शरीर नीरोग रहता है। अँग्रेजों को देखिये। उनका जीवन कितना नियमित होता है। वे प्रत्येक कार्य को निश्चित समय पर करते हैं। क्या मजाल है जो कभी समय की पाबन्दी का उल्लंघन हो जाय।

जहाँ शरीर को संयम की आवश्यकता है वहाँ व्यायाम की भी कम आवश्यकता नहीं। व्यायाम द्वारा हम अपने शरीर की शक्ति को केवल सुरक्षित ही नहीं रख सकते, वरन् बढ़ा भी सकते हैं। व्यायाम से हमारा जीवन सुखमय हो सकता है, क्योंकि इससे पाचन-कार्य ठीक-ठीक होता है और पाचन-कार्य सुचारुता से शरीर स्फूर्तियुक्त एवं पुष्ट होता है और चित्त प्रसन्न रहता है। जो लोग व्यायाम से जी चुराते हैं उन्हें रोग घेरे रहते हैं। कभी उन पर मलेरिया का आक्रमण होता है तो कभी हैजे का। कभी उन्हें जुकाम से पीड़ित होना पड़ता है तो कभी सिर-दर्द से।

स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता भी महत्वपूर्ण वस्तु है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह स्नान द्वारा शरीर को स्वच्छ रक्खे। वस्त्रों की स्वच्छता भी नितान्त आवश्यक है। मैले-कुचैले वस्त्र देखने में तो भद्दे लगते ही हैं, स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होते हैं। शरीर और वस्त्रों की गन्दगी से तरह-तरह के रोग हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग-कीटाणु गन्दे स्थानों में अपना घर बना लेते हैं। प्रायः देखा जाता है कि शारीरिक स्वच्छता न रखने वाले व्यक्ति दाद, खुजली आदि चर्म-रोगों से पीड़ित रहते हैं। निवास-स्थान की सफाई भी बहुत आवश्यक है। जिस गृह में हम निवास करते हों वह गन्दा न हो, उसमें मल-मूत्र, कूड़ा करकट, कीचड़ आदि जमा न रहता हो, उसमें दुर्गन्ध न आती हो।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए शुद्ध जलवायु का सेवन भी परमावश्यक

है। इसकी उपयोगिता व्यायाम से भी अधिक है। जिस व्यक्ति को शुद्ध जल अथवा शुद्ध वायु न मिल सके वह यदि नित्य व्यायाम करे तो भी अपने स्वास्थ्य को ठीक नहीं रख सकता। जलवायु भोजन से भी अधिक महत्त्व रखती है। अतएव हमें इसकी पवित्रता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जो कार्य बहुमूल्य औषधियाँ नहीं कर सकतीं वह शुद्ध जलवायु के सेवन से सम्पन्न हो जाता है।

प्रकाश भी स्वास्थ्य-रक्षा का एक अच्छा साधन है। सूर्य की किरणें प्राणी-मात्र में जीवन-संचार करती हैं। उनसे जीवधारियों में नवीन शक्ति, नवीन आभा, नवीन रंग-रूप आता है। एक ऐसे पौधे को देखिए जिसे सूर्य का प्रकाश न मिलता हो। उसे पीला और आभाहीन पाइएगा। उसमें न हरा-भरापन मिलेगा और न जीवन की स्फूर्ति। अतः स्वास्थ्य-साधन के लिए आवश्यक है कि शरीर को सूर्य का पर्याप्त प्रकाश मिले। प्राचीन-काल में हमारे यहाँ शरीर को खुला रखने की प्रथा थी, बाह्य-सभ्यता के दूषित प्रभाव ने उसे बिदा कर दिया।

अब भोजन को लीजिए। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सादा और शक्तिदायक भोजन करना चाहिए। मिठाइयाँ तथा तरह-तरह के पकवान जो जिह्वा को रुचिकर होते हैं शारीरिक शक्ति का नाश करते हैं। भोजन में फल, दूध, रोटी, दाल, चावल, शाकादि को ही स्थान मिलना चाहिए। भोजन के परिमाण की बात भी विचारणीय है। हम संसार में भोजन करने के लिए ही पैदा नहीं हुए हैं, बल्कि इसलिए भोजन करते हैं कि जीवित रह सकें। अभिप्राय यह है कि शरीर-रक्षा के लिए परिमित भोजन करना चाहिए। स्वाद में लोग बहुत खा जाते हैं जिसका परिणाम अजीर्ण और अल्पायु होता है।

सारांश यह है कि उपर्युक्त साधनों के अनुसार जीवन-यापन करने से स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है। स्वास्थ्य-रक्षा पर मस्तिष्क की रक्षा निर्भर है, जैसा कि 'A sound mind in a sound body' उक्ति से प्रकट है। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए

स्वास्थ्य की किसी प्रकार भी अवहेलना नहीं की जा सकती। स्वस्थता जीवन है, अस्वस्थता मृत्यु; स्वस्थता जीवन का मधुर सङ्गीत है, अस्वस्थता काल-रात्रि का रुदन; स्वस्थता आह्लाद-दायिनी देवी है, अस्वस्थता सङ्कटदायिनी राक्षसी।

रेडियो

(१) प्रस्तावना—विज्ञान की करामात और रेडियो

(२) रेडियो क्या है ?

(३) रेडियो का जन्म और विकास

(४) रेडियो से लाभ—

(क) सुदूर देशों के समाचार तथा व्याख्यान सुनने में सुविधा, (ख) शासन-प्रबन्ध, (ग) मनोरञ्जन, (घ) शिक्षा-प्रचार एवं सुधार

(५) उपसंहार—रेडियो का भविष्य

यह बीसवीं शताब्दी विज्ञान का युग है। आज विश्व के कोने-कोने में विज्ञान की दुन्दुभी बज रही है। चारों ओर वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसन्धानों की धूम मची हुई है। रेल, मोटर, वायुयान, तार, टेलीफून, टेलीविजन, रेडियो आदि करामात जिन्हें देखकर हम आश्चर्य-सागर में निमग्न हो जाते हैं, विज्ञान की ही देन है। कौन जानता था कि एक दिन मनुष्य घर-बैठे ही विश्व-भर के समाचारों से तत्काल अवगत हो जायगा। रेडियो ने यह कार्य कर दिखलाया है।

रेडियो एक यन्त्र है जिसके द्वारा बिना तार की सहायता के कितनी ही दूरी की ध्वनि सुनी जा सकती है। यह वायु की लहरों से ध्वनियों को पकड़ कर उन्हें प्रसारित करता है। इसका उपयोग सन्देश, व्याख्यान और संगीत सुनने के लिए किया जाता है। किसी बड़े नगर में सन्देश भेजने का स्थान होता है जिसे 'ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन ,कहते हैं। वहाँ से समाचार व्याख्यान या संगीत भेजने की आयोजना की जाती है।

रेडियो का जन्म हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। सन् १६२१ में इटली के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक मारकोनी ने इसका आविष्कार किया था। सबसे पहले इङ्गलैण्ड में ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन स्थापित किया गया, तब से अब तक इसमें निरन्तर सुधार और उन्नति होती रही है। भारतवर्ष में धीरे-धीरे इसका प्रचार हो गया है। ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन पर सरकार का अधिकार है। वहाँ से देश-भर में समाचार भेजे जाते हैं। आज देश के अनेक धनी-व्यक्तियों ने अपने यहाँ रेडियो लगवा लिए हैं।

रेडियो से अनेक लाभ हैं। इस यन्त्र की सहायता से मनुष्य अपना सुदूर देशों से भलीभाँति सम्बन्ध रख सकता है। सात समुद्र पार देशों के समाचार और व्याख्यान तत्काल सुन लिए जाते हैं। न्यूयार्क में देने वाले मनुष्य का भाषण तत्काल आगरे में बैठे सुन लीजिए। ऐसा प्रतीत होता है कि व्याख्यानदाता सामने खड़ा हुआ व्याख्यान दे रहा है और हम उसके मुख से व्याख्यान सुन रहे हैं। रेडियो के अभाव में पहले इस काम में बहुत समय लगता था।

रेडियो से सरकार को शासन-प्रबन्ध में बड़ी सहायता मिलती है। इसके द्वारा सरकार अपनी नीति की घोषणा शीघ्रता के साथ देश के कोने-कोने में कर सकती है और जनता की विचार-धारा को अपनी नीति संचालित करने वाले महान् पुरुषों के व्याख्यानों द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। युद्ध के समय रेडियो की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। सैनिकों के हृदय में वीरता की भावनाएँ जाग्रत की जाती हैं और उन्हें शत्रु से लोहा लेने के लिए उत्साहित किया जाता है। युद्ध का प्रचारात्मक-कार्य करने के लिए इससे अच्छा और क्या साधन हो सकता है?

रेडियो मनोरञ्जन का भी उत्तम साधन है। जब आप दिन-भर के परिश्रम से थक कर मनोरञ्जन की क्षुधा से पीड़ित हों तब रेडियो की शरण लीजिए। विश्व-भर के विख्यात गायक और संगीतज्ञ आपकी सेवा में उपस्थित हैं। जी में आए देहली के गायकों का गाना सुनिए, जी में आए बम्बई के गायकों का। जी में आये लन्दन

के संगीत का आनन्द लीजिए, जी में आए न्यूयार्क के संगीत का। आपकी थकान हवा हो जायगी।

रेडियो द्वारा शिक्षा-प्रसार में बड़ी सहायता मिल सकती है। अनेक नवीन-नवीन विषयों पर प्रकाश डाला जा सकता है। हमारे देश में शिक्षालयों की कमी है। प्रत्येक गाँव में समाचार पत्र नहीं पहुँचते। अतः ग्रामीण जनता देश-विदेश के समाचारों से अनभिज्ञ रहता है। रेडियो द्वारा देश-विदेश के समाचार सुनाकर उसकी कूपमण्डूकता दूर की जा सकती है। इसके द्वारा सामाजिक सुधार को भी योजना हो सकती है। किसी कुप्रथा के विरुद्ध रेडियो स्टेशन पर किसी प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली व्यक्ति का भाषण कराया जाय और उसे दूर-दूर लोगों तक भेजा जाय।

अतः स्पष्ट है कि रेडियो एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इससे देश की उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है। देश के कोने-कोने में इसके प्रचार की आवश्यकता है। ग्राम सुधार के लिए तो यह एक अमोघ साधन है। यदि कोई वस्तु गाँवों को उन्नति के पथपर अग्रसर कर सकती है, यदि कोई वस्तु गांवों को निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त कर सकती है, तो वह रेडियो है।

चाँदनी रात में नौका-विहार

(१) प्रस्तावना—चाँदनी रात का सुन्दर स्वरूप
(२) नौका-विहार की आयोजना
(३) गंगाजी में नौका-विहार
(क) जल-थल की दशा, (ख) मनोरंजन
(४) उपसंहार—गृह-प्रस्थान और निद्रा देवी की स्निग्ध गोद में शयन

अहा ! शरद-पूर्णिमा की वह रात कैसी सुहावनी थी ! पृथ्वी-मंडल को किसी ने दुग्ध-स्नान कराया था, या उस पर किसी ने श्वेत चादर बिछाई थी, या प्रकृति-नायिका ने सफेद साड़ी धारण की थी, या भगवान के विशाल मन्दिर पर सफेदी की गई थी, या किसी

जादूगर ने अपना माया-जाल फैलाया था। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। प्रकृति जली हुई सी प्रतीत हो रही थी। पेड़-पौधे चुपचाप खड़े थे, मानों भयभीत थे। कहीं कामदेव को भस्म करने के लिए शिवजी ने अपना तीसरा नयन तो नहीं खोला था, अथवा प्रकृति-नायिका ने सोने के लिए पुण्य शैया सजाई थी। अथवा विश्व-पति भगवान ने उसके साथ होली खेली थी जिसका अबीर चारों ओर बिखरा हुआ था, अथवा उसने अपनी सौन्दर्य-वृद्धि के लिए पाउडर से शृंगार किया था?

ऊपर का दृश्य और भी आकर्षक था। आकाश में तारे मोतियों की भाँति झिलमिला रहे थे। उनके मध्य-स्थित चन्द्रमा कोहनूर हीरा जैसा प्रतीत होता था। नक्षत्रगण ऐसे प्रतीत होते थे मानो स्वर्गपति इन्द्र ने अपने कोष की नुमायश लगाई थी, अथवा नीलाम्बर के चँदोवे पर सल्मे-सितारे का काम किया गया था, अथवा इन्द्रलोक में दीपावली मनाई जारही थी, उसी के दीपक टिमटिमा रहे थे।

बड़ा मनोरम काल था। रात्रि के ६ बजे थे। इच्छा हुई कि गंगाजी में नौका-विहार का आनन्द लूटा जाय। सनातन धर्म कॉलेज, कानपुर के छात्रालय से गंगाजी की धारा केवल २०० गज दूर थी। फिर क्या था, मैं तीन मित्रों को साथ लेकर नौका-विहार के लिए चल पड़ा। एक मित्र ने अपनी बाँसुरी सँभाली और दूसरे ने अपना सितार, तीसरे को किसी वाद्य-यन्त्र की आवश्यकता नहीं थी, उसके सुमधुर कंठ-स्वर पर सहस्रों वाद्य-यन्त्र न्यौछावर थे।

गंगाजी के किनारे कॉलेज की नाव पड़ी थी। हम चारों उस पर सवार हुए। दो मित्र नाव चलाना भली-भाँति जानते थे। अतः किसी नाविक की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने डाँड उठाए और खेना प्रारम्भ किआ। नाव गंगाजी के वक्षस्थल पर द्रुत-गति से चलने लगी। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। चारु-चन्द्र की चंचल किरणें जल में क्रीड़ा कर रही थीं। धारा में उनकी क्रीड़ा से अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो नक्षत्रराज समस्त नक्षत्रों के साथ जल में स्नान कर रहा है। वायु के

संसर्ग से जब जल की सतह लहराने लगती थी तब ऐसा ज्ञात होता था मानो चन्द्रमा सहस्र रूप धारण करके जल में डुबकियाँ लगा रहा है। गंगाजी की वक्र-धारा हीरों की लड़ियों के समान चमक रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति-नायिका के गले का हार है। डाँडों से छिहरती हुई बूँदें मोती-सी बिखर रही थीं। इधर-उधर फैली हुई बालुका चमक रही थी और ऐसी मालूम होती थी मानो रजत-कणों की राशियाँ लगी हुई हैं।

किनारे की तरु-राजि समाधि-लीन सी खड़ी थी। चन्द्रमा की किरणें वृक्षों के पत्तों में होकर धरणी पर पहुँच रही थीं और वहाँ छाया में बहुत सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रही थीं ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी चित्रकार ने अनुपम चित्रकारी की है। अथवा वृक्षों ने स्वयं अपने चित्र अंकित किये हैं। अथवा प्रकृति-नायिका ने अपनी साड़ी पर बेल-बूटे बनाए हैं। जब पवन प्रवाहित होने लगा तब दृश्य की छटा द्विगुणित हो गई। पादपों के झूलने से प्रकाश-निर्मित बेल-बूटे इधर-उधर हिलने लगे और नेत्रों को बड़े सुहावने लगने लगे—मानो प्रकृति-पटल-पर चल-चित्र प्रदर्शित किए जा रहे हों।

शीतल एवं मन्द समीर, पीयूष-वर्षी चन्द्रिका और रात्रि की निस्तब्धता हमारे नौका-विहार को अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान कर रही थी। हम सब मित्र आनन्द-सागर में निमग्न थे और हमारे मन में प्रफुल्लता की हिलोरें उठ रही थीं। इच्छा हुई कुछ गाना-बजाना प्रारम्भ हो। फिर क्या था, पहले बाँसुरी की तान छेड़ी गई, फिर सितार बजाया गया। ततपश्चात् अनुनय-विनय के साथ गायनाचार्य मित्र को गाने के लिए तैयार किया गया। उसके सुरीले स्वर को सुनकर हम लोग मन्त्र-मुग्ध होगए और सराहना-सूचक करतल-ध्वनि करने लगे! एक ओर नेत्रों के लिए आकर्षक दृश्य थे और दूसरी ओर कानों के लिए सुमधुर संगीत। नौका-विहार में हम इतने तल्लीन थे कि उससे विरत होने को जी नहीं चाहता था। न मालूम उस समय हमारी निद्रा कहाँ चली गई थी। मन में यही इच्छा थी कि रात-भर इस अतीन्द्रिय आनन्द को लूटते रहें।

अन्त में घड़ी ने १२ बजाए। छात्रालय के नियमों ने हमें नौका-विहार से विरत होने को बाध्य किया। हम नाव को किनारे लाए और उतर कर छात्रावास की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर निद्रा-देवी की स्निग्ध एवं सुशीतल गोद में सो गए। उस शरद्-पूर्णिमा का नौका-विहार आज तक नेत्रों के सामने नाच रहा है और उसकी स्मृति हृदय में आनन्द का संचार कर रही है।

वर्त्तमान युद्धों में विज्ञान की करामातें

(१) प्रस्तावना—विज्ञान के कारण वर्त्तमान युद्धों की भयंकरता
(२) संहार के नये-नये साधनों का आविष्कार
(३) टैङ्क
(४) सुरंगें
(५) युद्ध-पोत
(६) वायुयान
(७) परमाणु बम (Atom bomb)
(८) उपसंहार—विज्ञान का दुरुपयोग

प्राचीन काल में युद्ध-क्षेत्र में योद्धा जिस प्रकार आमने-सामने द्वन्द्व युद्ध करते थे अथवा तलवार और तीर-कमान का प्रयोग करते थे वैसा आजकल नहीं होता। आज तो विज्ञान ने युद्ध की काया ही पलट दी है। आज युद्ध-विजय शारीरिक बल पर निर्भर न रह-कर यन्त्रों पर निर्भर है। विज्ञान ने अनेक युद्ध साधनों का आवि-ष्कार किया है। वर्त्तमान युद्धों में उसने जो-जो करामातें दिखलाई हैं उन्हीं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत लेख में कराया जायगा।

वर्त्तमान युद्धों में विज्ञान ने पृथ्वी, जल और आकाश तीनों स्थानों पर युद्ध-सामग्री उपस्थित की है। कहीं भी प्राण-रक्षा नहीं हो सकती। कोई स्थान सुरक्षित नहीं है। पृथ्वी के भीतर बने हुए तलघरों में भी प्राण नहीं बच सकते, क्योंकि पचास-साठ फीट तक पृथ्वी को बेधकर पहुँचने वाले गोलों का आविष्कार हो चुका है।

जल के भीतर भी तारपीडो और सुरंगों के कारण जीवन-रक्षा असम्भव है। कोई भागकर पर्वत-शिखर पर भी शरण नहीं ले सकता, क्योंकि गगन-भेदी वायुयान क्षण-भर में वहाँ जा पहुँचते हैं। सर्वत्र संहारक साधनों के कारण आज का युद्ध अत्यन्त भयावह हो गया है।

विज्ञान ने ऐसे-ऐसे अस्त्रों को जन्म दिया है जो क्षण-भर में असंख्य मनुष्यों का संहार करके रण-भूमि को रक्त रञ्जित कर देते हैं। प्राचीन काल में जो बन्दूकें और तोप प्रयोग में आती थीं, वे आज प्रदर्शिनी की वस्तुएँ बनी हुई हैं। वर्त्तमान काल में पचीसों मील गोले फेंकने वाली भयंकर तोपें और आकाश में चिनगारियों की भाँति छा जाने वाली गोलियों की वर्षा करने वाली मशीनगनें समर-स्थल की शोभा बढ़ाती हैं। आज दुर्ग-विध्वंसक तोप का एक ही गोला पत्थर से भी पुष्ट दीवार को जड़ से हिला देता है। ऐसी तोप की लम्बाई चालीस फीट से भी अधिक और तोल में एक सहस्र मन से भी अधिक होती है। उसका गोला लगभग १५ मन भारी होता है जो जहाज की ८ फीट मोटी इस्पात की चद्दर को बेधकर अन्दर घुस जाता है। ऐसे भी गोले होते हैं जिनमें एक-एक के भीतर एक-एक सहस्र से भी अधिक संख्या में गोलियाँ और लोहे के टुकड़े भरे रहते हैं। फटने पर ये गोले चार-चार पाँच-पाँच सौ मनुष्यों को मार कर धराशायी कर देते हैं। विभिन्न प्रकार की विषैली गैसें भी आविष्कृत हुई हैं जिनसे दारुण यातनायें मिलती हैं।

वर्त्तमान युद्धों को विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण देन टैंक है। स्थल पर होने वाले युद्ध में इसकी उपयोगिता बहुत है। वास्तव में यही साधन समर का भाग्य-विधाता है। यह कई दृष्टियों से सुविधापूर्ण प्रमाणित हुआ है। इसका संचालन यन्त्र-शक्ति द्वारा होता है। इसमें केवल ३ व्यक्ति कार्य करते हैं—एक टैंक को चलाने के लिए, दूसरा मशीनगन एवं तोप का व्यवहार करने के लिए; और तीसरा बेतार के तार द्वारा सन्देश भेजने तथा प्राप्त करने के लिए। अतः अपने पक्ष की अपेक्षाकृत कम मनुष्यों का संहार होता है और

थोड़े सैनिकों की सहायता से अधिक कार्य सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त टैंकों की दूसरी विशेषता गति-सम्बन्धी है। तीस-तीस मील प्रति घण्टे की चाल से चलते हैं और एक बार पैट्रौल लेकर १२५ मील तक जा सकते हैं। तीव्र गति से चलने के कारण वे शत्रु के मोर्चे के भीतर शीघ्र प्रविष्ट हो जाते हैं। गत महायुद्ध में टैंकों के बल से ही जर्मन सेना मैजिनो लाइन तोड़कर फ्रांस की सीमा में प्रविष्ट हो गई थी।

पृथ्वी के भीतर उपयोग में आने वाली सुरंगों का वर्त्तमान युद्धों में बड़ा महत्त्व है। पृथ्वी के अन्दर एक गहरा और पतला छेद बनाकर उसमें विस्फोटक पदार्थ भर दिया जाता है। उसका विस्फोट बिजली की बैटरी से अथवा किसी प्रकार के संघर्ष से किया जाता है। जब शत्रु का टैंक, मोटर या सेना सुरंग के पास पहुँचती है तब विस्फोटक पदार्थ फूट जाता है और सुरंग के ऊपर जो कुछ होता है वह नष्ट हो जाता है। यही नहीं, सड़कों में पच्चीस फीट लम्बा और आठ फीट गहरा गड्ढा भी हो जाता है, जिससे सड़क पर मोटर, टैंक आदि का चलना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार सुरङ्गों द्वारा शत्रु के गति-अवरोध में बड़ी सहायता मिलती है। जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर सुरंगें बिछाई जाती हैं उसी प्रकार समुद्र के अन्दर भी सुरंगें बिछाई जाती हैं। उनका लक्ष्य जलयानों को नष्ट करना होता है।

विज्ञान ने जल-मार्ग में युद्ध करने के लिए युद्ध पोतों की सृष्टि की है। वे नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं। उनमें तोपें लगी रहती हैं जो शत्रु के आक्रमणकारी जलयानों और वायुयानों से उनकी रक्षा करती हैं। तोपों के अतिरिक्त युद्ध-पोतों में 'पाम-पाम' नामक कई मशीनगनें होती हैं, जिनसे एक-एक मिनट में कई सौ गोलियाँ ऊपर-नीचे एवं चारों ओर निकलती हैं उन गोलियों की मार से शत्रु का आक्रमणकारी वायुयान चलनी बन जाता है। युद्ध-पोत पर तीन से छः तक लड़ाकू वायुयान रहते हैं जो शत्रु के आक्रमणकारी वायुयानों से लोहा लेते हैं।

वर्त्तमान युद्धों का तीसरा महान् साधन वायुयान है। वायुयान के संरक्षण में ही टैंक अपनी अद्भुत शक्ति का प्रयोग कर सकता है। शत्रु के विध्वंसक विमानों का सामना लड़ाकू वायुयान करते हैं। उन्हीं की छत्र-छाया में टैंक आगे बढ़ते हैं। बिना वायुयानों के टैंक युद्ध में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता। आकाश-मार्ग से युद्ध करने में इसकी महत्ता वर्णनातीत है। पोलैंड का पतन केवल सोलह दिन में करने वाले जर्मन वायुयान ही थे। नभ के वक्षस्थल को चीरते हुए ये गगन में गरजते हुए, बम-वर्षा द्वारा नर-संहार करते हुए ये विमान अपनी सानी नहीं रखते। उनकी द्रुत-गति उनका झपट्टा सराहनीय है।

विज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण करामात परमाणु-बम (Atom-bomb) है। इसने तो वर्त्तमान युद्धों की काया ही पलट दी है। इससे बड़ा विध्वंस का साधन आज तक कोई नहीं आविष्कृत हुआ। यह क्षण-भर में गाँव के गाँव का सफाया कर देता है। यह परमाणुबम का ही बल था कि जापान ने इतनी शीघ्र मित्रराष्ट्रों के समक्ष घुटने टेक दिये। वस्तुतः मित्रराष्ट्रों की विजय का एक मात्र श्रेय इसी युद्धास्त्र को है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विज्ञान ने वर्त्तमान युद्धों को अत्यन्त भयंकर बना दिया है। उसने संहार के नए-नए साधन जुटा कर मानवता को विनाश की चुनौती दी है। यही नहीं कि सैनिक का वध होता हो, निरीह नागरिक भी अपनी प्राण-रक्षा नहीं कर सकते। रणचंडी ने आज विज्ञान की सहायता प्राप्त करके अपनी विकराल जिह्वा चारों ओर फैलाई है। उसके लिए रुधिर के अथाह प्रवाह चतुर्दिक प्रवाहित हो रहे हैं। मानव-सभ्यता विनाश की ओर अग्रसर होती जारही है। बर्बरता चरम सीमा को पहुँच रही है। वैज्ञानिक आविष्कारों का लक्ष्य होना चाहिए था मानवता का कल्याण एवं विश्व-शान्ति पर इसके विपरीत उसका उद्देश्य हो रहा है--आत्मपतन एवं अशान्ति। विज्ञान प्रलय के साधन एकत्र करता जा रहा है और मनुष्य को पिशाच, दानव, नारकीय श्वान बनने में संलग्न है।

एक निर्वाचन-स्थल का दृश्य

(१) प्रस्तावना—चुनाव की तैयारी
(२) निर्वाचन दिवस पर गाँव का दृश्य
(३) चुनाव के समय का दृश्य
(४) उपसंहार—चुनाव समाप्त होने के समय का दृश्य

भों-भों करती हुई एक मोटर सामने से आई। गाँव वालों की दृष्टि उसकी ओर दौड़ी। कुछ तो उसके निकट जा पहुँचे। चारों ओर से बालकों का समाज उसे देखने के लिए उमड़ पड़ा। मोटर से एक व्यक्ति बाहर निकला और उसने गाँव वालों को एकत्रित करके जन-सङ्घ के उम्मेदवार के गुणानुवाद करते हुए उसका वोट देने के लिए अपील की। थोड़ी देर बाद तिरंगे झंडे से सुशोभित एक कार आ-धमकी। उसमें से ४ व्यक्ति उतरे। उन्होंने झंडा हाथ में लिए हुए 'महात्मा गाँधी की जय हो', प० जवाहरलाल नेहरू की जय हो', के नारे लगाते हुए गाँव की परिक्रमा की तत्पश्चात् एक वृहत् सभा की आयोजना हुई, जिसमें चुनाव-सम्बन्धी प्रभावोत्पादक वक्तृताएँ दी गई। ग्रामीण जनता में अपूर्व जोश का संचार हो गया। अधिकांश लोगों ने काँग्रेसी उम्मेदवार को वोट देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। जन-संघ वालों ने भी यथाशक्ति प्रयत्न किया किन्तु उनकी दाल न गल सकी।

आज निर्वाचन-दिवस है। निर्वाचन-स्थल गाँव का स्कूल नियत हुआ है। वहाँ पुलिस का प्रबन्ध है। अधिकारी इधर-उधर व्यवस्था करने में संलग्न हैं। निकटस्थ ग्रामों से जन-समाज वोट देने के लिए आ रहा है। कोई पैदल आ रहा है, तो कोई घोड़े पर। कोई ऊँट पर आ रहा है, तो कोई बैलगाड़ी में। कोई साइकिल पर आ रहा है तो कोई मोटर लारी में। कोई अकेला आ रहा है, तो कोई टोली में। कोई चुप-चाप चला आ रहा है तो कोई चुनाव के नारे लगाता हुआ। गाँव में चहल-पहल है। दुकानदारों ने दुकानें सजाई हैं। मिठाई वालों ने नई मिठाइयाँ बनाकर थालों में लगाई हैं। उन पर

चमकते हुए चाँदी के बरक दर्शकों के मन को लुभाते हैं। खूब भीड़-भाड़ है। खोंमचे वाले इधर-उधर घूम रहे हैं और 'चने चटपटे-मसालेदार', 'करारी मूगफलियाँ', 'पान-बीड़ी सिगरेट', 'दही-बड़े मजेदार' आदि आवाज लगाते हुए ग्राहकों से पैसे लूट रहे हैं। स्कूल के सामने आज बाजार-सा लगा हुआ है। पान-बीड़ी वालों ने अपनी-अपनी दुकानें इधर-उधर खूब सजा रक्खी हैं। स्कूल के मैदान में चाँदनी लगी हुई है, जहाँ वोट देने वालों के बैठने का प्रबन्ध है।

घड़ी ने आठ बजाये। चुनाव की घंटी बजी। अधिकारी अपने-अपने कार्य में तत्पर हुए। वोट पड़ना आरम्भ हुआ। प्रेसाइडिंग ऑफीसर तहसीलदार महोदय थे। वे इधर-उधर घूम कर प्रबन्ध देखने लगे। पुरुषों एवं स्त्रियों के वोट देने की पृथक्-पृथक् व्यवस्था थी। स्त्रियों के वोट लेने के लिए एक महिला पोलिंग ऑफीसर का प्रबन्ध किया गया था। पोलिंग एजेंट भी महिला ही नियुक्त हुई थी पुरुषों के लिए दो पोलिंग-बूथ थे और स्त्रियों के लिए केवल एक।

थोड़ी देर बाद एक घटना घटी। एक वोटर को जिन काँग्रस-वालों ने अपने उम्मेदवार को वोट देने के लिए तैयार किया था, जन-संघ वालों ने अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न किया। इसी पर दोनों पक्ष के कार्यकर्त्ताओं में तू-तू मैं-मैं होने लगी। बात यहाँ तक बढ़ी कि मार-पीट की नौबत आ गई। किन्तु तहसीलदार महोदय बड़े प्रबन्ध-कुशल थे। उनकी निपुणता तथा सौजन्य से परिस्थिति वश में आ गई और जनता शान्त हो गई।

गाँव के अधिकांश लोग अशिक्षित होते हैं। इसका दुष्परिणाम उन्हें भोगना पड़ता है। एक अन्धे महाशय जो निरक्षर थे वोट देने के लिए पहुँचे। उनसे पूछा गया, "आप किसे वोट देना चाहते हैं"- उत्तर मिला, "गाँधी बाबा को"। गाँधी बाबा उम्मेदवार नहीं हैं--" कहकर तहसीलदार साहब ने उम्मेदवारों के नाम अंधे महाशय को बतलाए। बुडढा चौंका और यह कहता हुआ वापिस लौट आया, "मैं इनमें से किसी को वोट नहीं दूँगा। यदि वोट लेना

चाहते हो तो गाँधी बाबा के ले लो। इस प्रकार वह अपने वोट के अधिकार का उपयोग न कर सका। ऐसी ही कुछ और हास्यास्पद घटानायें घटीं जो अशिक्षा का ही प्रसाद थीं।

दोपहर के पश्चात् जनसंघ के उम्मेदवार को वोट देने वालों की संख्या कम होने लगी। होते-होते दो बजे तक जन-संघ के वोटर समाप्त हो गये। समस्त व्यक्ति काँग्रेस के पक्ष में वोट देने लगे। फलतः जन-संघ वाले हाथ पर हाथ रखकर बैठ गये। ठीक पाँ बजे सायंकाल वोट लेना बन्द कर दिया गया। इस समय काँग्रेस वालों के मुखों पर हर्ष की अपूर्व आभा छिटक रही है। वे रह-रह कर विजय-हर्ष सूचक नारे लगा रहे हैं। इसके विपरीत जन-संघ वालों के मुखों पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। उन्हें अपनी पराजय पर विशेष दुःख हो रहा है।

आस-पास के गाँव वाले वोट देने आये थे, कार्य समाप्त करके अपने-अपने घर को लौटने लगे हैं। किसी ने अपनी साइकिल सँभाली है, किसी ने अपने घोड़े की बाग थामी है। गाड़ियाँ जुत गई हैं। पैदल चलने वालों ने अपने-अपने साथी ढूँढ़े हैं। जन-समाज उमड़ रहा है, मानो कोई मेला उठा जा रहा हो। शनैः शनैः स्कूल का मैदान पुनः अपनी पूर्व दशा को प्राप्त हो रहा है। दुकानदार अपने-अपने गृह की ओर पैर बढ़ा रहे हैं। चुनाव अधिकारी बैलट-बॉक्सों को एकत्र करके उन्हें बन्द करने और उनपर सील लगाने में संलग्न हैं।

आत्म-सम्मान (स्वाभिमान)

(१) प्रस्तावना—आत्म—सम्मान का महत्त्व
(२) आत्म-सम्मान जीवन का अमृत है
(३) आत्म-सम्मान उन्नति की कुञ्जी है
(४) आत्म-सम्मान से आत्म-संस्कार होता है

(५) आत्म-सम्मान से गौरव मिलता है
(६) स्वाभिमानी व्यक्तियों के कुछ उदाहरण
(७) उपसंहार—हमें आत्म-सम्मान की सदैव रक्षा करनी चाहिए

आत्म-सम्मान वह अद्वितीय गुण है, जिसकी समता संसार का कोई पदार्थ नहीं कर सकता। जिसे अपनी मान-मर्यादा का ध्यान है, जिसे अपने ऊपर गर्व है, जिसे अपने मान-अपमान का ज्ञान है, वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है, वही पृथ्वी पर जीवित है। जिसने आत्म-सम्मान को खो दिया, जो स्वाभिमान से हाथ धो बैठा, वह तो मृतक है। विश्व में उनका कोई स्थान नहीं, कोई सत्ता नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। वह तो पशु से भी तुच्छ है। अपमानित जीवन क्या नारकीय यन्त्रणा से कम है ?

आत्म-सम्मान जीवन का अमृत है। यह वह रसायन है जिससे जीवन में मधुरता एवं सरसता का संचार होता है। आत्म-सम्मान को धक्का लगने पर, यद्यपि कुछ समय के लिए मन को दुःख होता है, हृदय में खिन्नता पैदा होती है, तथापि विरोधी शक्ति से संघर्ष करके सफलता पाकर आत्मा को स्थायी शान्ति प्राप्त होती है और जीवन आनन्दमय हो जाता है। यही नहीं; स्वाभिमान की भावना मनुष्य को शक्तिशाली बनाती है, उसमें अदम्य उत्साह भरती है। मानसिक दुर्बलता अथवा कायरता स्वाभिमान के समक्ष क्षण-भर भी नहीं टिक सकती। यही गुण मनुष्य को साहसी बनाता है। इससे प्रेरित होकर वह विरुद्ध परिस्थितियों के साथ टक्कर लेता है और उन्हें चूर-चूर करके छोड़ता है।

आत्म-सम्मान उन्नति की कुञ्जी है, उन्नति का प्रवेश-द्वार है। जिसमें यह गुण है वह जल में तूँबी के समान ऊपर रहता है। पद-दलित होकर रहना उसके लिए असम्भव है। इस प्रकार के जीवन से वह मृत्यु अधिक पसन्द करता है। स्वाभिमान स्वभावतः मनुष्य को उन्नति की ओर अग्रसर करता है। उसे साधारण जन-समाज से ऊपर उठाता है। इस दुनिया में जहाँ आजकल एक दूसरे को निगल जाना चाहता है, एक दूसरे को कुचलना चाहता है, एक

दूसरे की मान-मर्यादा नष्ट करना चाहता है, वहाँ अपने गौरव की रक्षा में संलग्न व्यक्ति विरोधी वातावरण से लोहा लेता हुआ उन्नति किए बिना नहीं रह सकता। उसे ईश्वरीय सहायता भी अवश्य मिलती है। उसमें उत्साह और साहस होता है। फिर ऐसा व्यक्ति क्यों न उत्थान-पथ का पथिक होगा ?

आत्म-सम्मान से गौरव मिलता है। स्वाभिमानी व्यक्ति की संसार में प्रतिष्ठा होती है। आजीवन तो उसे यश मिलता ही है, मृत्यु-पश्चात् भी उसकी यश-कौमुदी अपना उज्ज्वल प्रकाश फैलाती रहती है। जो मनुष्य दबाव नहीं सहेगा, जो मनुष्य आत्म-सम्मान को धक्का लगने पर उसकी रक्षा में तुरन्त तत्पर हो जायगा, जो मनुष्य अपनी मान-मर्यादा पर आघात होने पर आघात करने वाले से लड़ेगा, जनता की उसे सहानुभूति प्राप्त होगी; जनता उसका साथ देगी, जनता उसकी बड़ाई करेगी। कोई भी न अपने आत्म-सम्मान को नष्ट होने देना चाहता है और न दूसरे के आत्म-सम्मान को मिटते देखना चाहता है। यह मानव-प्रकृति है। जब किसी की मान-मर्यादा छिनती है, तब जनता को दुःख होता है और कोई-कोई व्यक्ति तो मान-मर्यादा छिनने वाले मनुष्य का तन-मन से साथ देकर मान-मर्यादा छीनने वाले मनुष्य का दमन करता है। जन-समाज ऐसे महान् पुरुषों का आदर करता है, जो सर्वस्व बलिदान करके भी अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते हैं, जिनके लिए आत्म-सम्मान ही सर्वस्व है।

आत्म-सम्मान से आत्मा का संस्कार होता है, आत्मा प्रबल होती है। इसकी साधना में संलग्न व्यक्ति अपनी आत्मा को तपे हुए स्वर्ण की भाँति निखार सकता है। उसे योगी के समान त्यागी और कष्ट-सहिष्णु बनना पड़ता है, जिससे आत्मा का सुधार होता है। आत्म-सम्मान की साधना एक प्रकार की तपस्या है। जिस प्रकार तपस्या आत्मोद्धार का साधन है, उसी प्रकार आत्म-सम्मान की साधना भी आत्मोद्धार का साधन है।

इतिहास स्वाभिमानी आत्माओं की गौरवपूर्ण गाथाओं से जगमगा रहा है। महाराणा प्रताप ने आत्म-सम्मान की रक्षा में धन, सम्पत्ति, घरबार, राज्य—सबको होमकर वन में दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करना पसन्द किया, पर यवनों की अधीनता स्वीकार नहीं की। गाँधीजी का जीवन तो आत्म-सम्मान की साधना का जीता-जागता इतिहास है। दक्षिण अफ्रीका की अदालत में आपसे पगड़ी उतारने के लिए कहा गया। आप वहाँ से उठकर चले आए और समाचार—पत्रों में आन्दोलन किया। एक बार आप रेल के पहले दर्जे में यात्रा कर रहे थे। मार्ग में एक स्टेशन पर अधिकारियों ने आपको उतार कर रेल के अन्तिम डिब्बे में बैठने के लिए कहा। इससे आपके आत्म-सम्मान को धक्का लगा। आप अपना स्थान छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। तब एक सिपाही ने आपको हाथ पकड़ कर नीचे ढकेल दिया और आपका सामान भी नीचे गिरा दिया। यह आत्म-सम्मान को दूसरी चोट थी। ऐसी दशा में आपने सामान से हाथ न लगाया। केवल हैंडबेग के साथ वेटिङ्ग-रूम में रात भर सर्दी के मारे ठिठुरते रहे। यह आपका सत्याग्रह था। दूसरे दिन आपने रेल के जनरल मैनेजर को शिकायत लिख भेजी। आत्म-सम्मान के आघात-सम्बन्धी आपकी एक और उल्लेखनीय घटना है। आप एक बार घोड़ा—गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। एक गोरे ने आपको अपने स्थान से उठकर पैर रखने की जगह पर बैठने के लिए कहा। आपके आत्म-सम्मान ने अपने स्थान को छोड़ना स्वीकार नहीं किया। फलतः आप पर थप्पड़ों की वर्षा होने लगी और आपको हाथ पकड़ कर नीचे खींचा जाने लगा। परन्तु आप वहाँ से हटे नहीं। कुछ यात्रियों को दया आई और उन्होंने उस गोरे को बुरा-भला कहा; तब उसने आपको छोड़ा। आपने घोड़ा गाड़ी-कम्पनी के एजेण्ट को शिकायत लिखी। आगे चलकर आपने इस प्रकार की बातों के विरुद्ध आन्दोलन किया और सफलता प्राप्त की।

इन गाथाओं से हमें शिक्षा मिलती है कि हमको भी अपने आत्म-सम्मान की सदैव रक्षा करनी चाहिए। चाहे हमें कितनी ही कठिनाईयों का सामना क्यों न करना पड़े, चाहे हमें कितनी ही विरोधी शक्तियों से टक्कर क्यों न लेनी पड़े, हमको अपना आत्म-सम्मान नहीं खोना चाहिए। आत्म-सम्मान का मूल्य प्राणों से भी अधिक है। उसकी रक्षा हमें प्राण देकर भी करनी चाहिए। निरादृत और अपमानित जीवन की अपेक्षा तो मरना ही कहीं अच्छा है। जिसको अपनी मान-मर्यादा की चिन्ता नहीं, जिसको अपने गौरव का ध्यान नहीं, उसके जीवन को धिक्कार है! किसी ने ठीक ही कहा है—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है॥"

एक भिक्षुक की आत्म-कहानी

(१) प्रस्तावना—मार्ग में एक भिक्षुक से भेंट
(२) भिक्षुक की आत्म कहानी—
(क) प्रारम्भिक सुखी जीवन, कुछ समय पश्चात् भूकम्प से सर्वस्व स्वाहा
(ख) पैतृक कारबार सँभालना और कुछ समय बाद पत्नी से हाथ धो बैठना (ग) ऋणग्रस्त होकर जमीन हाथ से निकल जाना
(घ) फिर मेहनत-मजदूरी करके पेट पालना (ङ) हत्या के एक मामले में १० वर्ष का कारावास (च) जेल से छूटने के बाद का जीवन
(३) उपसंहार—भिक्षुक की सहायता

जाड़े के दिन थे और अंधेरी रात; कड़ाके की ठण्ड थी। शीतल वायु कोड़े से मार रही थी। सड़कों पर सन्नाटा था। बिजली की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। चारों ओर शान्ति विराज रही थी। लगभग १० बजे होंगे। उस समय यदि कोई ध्वनि शान्ति को भंग कर रही थी तो वह थी एक दीन बुड्ढे भिखारी की दुःख भरी

आवाज। वह सड़क के किनारे पड़ा हुआ ठण्ड के मारे थर-थर काँप रहा था। जाड़े से बचने के लिए उसके पास पर्याप्त चिथड़े भी न थे। इधर उसे भूख अलग सता रही थी। भूख और ठण्ड के कारण वह रो रहा था। मैं सिनेमा देखकर लौट रहा था। चित्रपट के घटना-सम्बन्धी भावों के घात-प्रतिघात में मेरा मन उलझा हुआ था। सहसा मेरे कान में उस भिक्षुक के विलाप की ध्वनि पड़ी, जिसे सुनकर मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। मैं उसके निकट जा पहुँचा और उससे रोने का कारण पूछने लगा। भिक्षुक बोला—"बाबूजी! बड़े जोर की भूख लगी है और जाड़ा सता रहा है!" मैंने कहा—"चलो मेरे साथ घर; मैं तुम्हारे कष्ट को दूर करूँ।" यह सुनकर भिक्षुक उठा और साथ हो लिया। मार्ग में मैंने उससे पूछा कि तुम इस दयनीय दशा को किस प्रकार प्राप्त हुए हो?

भिक्षुक ने अपनी राम-कहानी इस प्रकार आरम्भ की। 'बाबूजी! आज से लगभग साठ वर्ष पहले की बात है; मैं १२ वर्ष का था। माता-पिता धनाढ्य थे। घर में भगवान की कृपा से सब बात का ठाठ था। खाने-पीने और पहनने की कमी न थी। जमींदारी थी! खेती होती थी। गाय-भैंस थीं! भाई-बहन आदि का बड़ा परिवार था। मैं गाँव के स्कूल में पढ़ता था। उस समय न मुझे कोई दुःख था और न कोई चिन्ता। पर कुछ काल व्यतीत होनेपर भाग्य ने पलटा खाया। एक दिन रात्रि के समय हम लोग सो रहे थे। यकायक बड़े वेग से धरती हिलने लगी। मकान धड़ाधड़ गिरने लगे। गाँव में चारों ओर तहलका मच गया। सब लोग अपनी-अपनी जान बचाकर भागने लगे। किसी ने किसी की सुध नहीं ली। हमारा मकान भी क्षण भर में धराशायी होगया। मेरी आँख खुली तो माता-पिता तथा भाई—बहन लापता थे। मैं झट दौड़कर बाहर आया। रोता हुआ माता-पिता को देखने लगा, पर वे कहीं न मिले। प्रलयकारी भूकम्प ने उनकी जान ले ली, पर मुझ अभागे को ये दुर्दिन दिखाने के लिए जीता छोड़ दिया।" यह कहते हुए बुड्ढे के धैर्य का बाँध टूट

गया और वह रोने लगा। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। आँसुओं को हाथों से पोंछते हुए उसने अपनी कहानी आगे बढ़ाई। वह कहने लगा, "उस भूकम्प ने हमारे तीन-चौथाई गाँव का सफाया कर दिया। बहुत से लोगों की लाशें तो मलबे के नीचे ही दबी रह गईं, अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं निकल सकीं। माता-पिता, भाई-बहिन आदि परिवार के अतिरिक्त हमारी गाय-भैंस भी मकान के नीचे दबकर मर गईं। इस प्रकार पल-भर में सब का सब स्वाहा हो गया।

गाँव के और लोगों की भाँति मैं भी मन मसोस कर रह गया और अपने पैतृक कारोबार को सँभालने लगा। किन्तु मेरे पास रुपया-पैसा कुछ न था। केवल जमींदारी थी। माता-पिता के पास जो रुपया-पैसा, धन-सम्पत्ति थी वह भूकम्प रूपी दानव की भेंट हो गई। उसका कहीं पता न लगा। कारोबार चलाने के लिए मैंने एक साहूकार से कुछ रुपये ऋण लिए। धीरे-धीरे मेरा काम चलने लगा। मेरे दिन फिरे। ३-४ साल बाद मैंने अपना विवाह किया। इस अवसर पर भी मुझे कुछ ऋण लेना पड़ा। विवाह के एक वर्ष बाद फिर मेरे ऊपर आपत्ति के बादल मँडराने लगे। मेरी पत्नी बीमार हो गई। उसकी चिकित्सा में मैंने रुपया पानी की तरह बहाया। कर्ज लेकर बड़े-बड़े डॉक्टरों का इलाज कराया, पर सब निष्फल हुआ। भगवान् ने स्त्री को मुझ से छीन लिया। मैं सिर पीटकर रह गया। अब न मेरे हाथ स्त्री रही और न फूटी कौड़ी।

कहावत है—"Misfortunes never come alone"—अर्थात् विपत्तियाँ कभी अकेली नहीं आतीं। पत्नी से हाथ धो ही बैठा था, उधर साहूकार ने रुपयों की नालिश कर दी और मेरा मकान तथा जमीन नीलाम करा ली। अब मेरे पास आय का कोई साधन नहीं रह गया। मैं हताश हो गया और सोचने लगा कि किस प्रकार पेट

भरा जाय। कभी इच्छा होती थी कि जीवन का अन्त कर डालूँ। जब कोई नहीं रहा तब मैं रह कर क्या करूँगा। थोड़ी देर बाद विवेक-बुद्धि मुझे कायरतापूर्ण विचार के लिए धिक्कारती। कभी इच्छा होती कि कपड़े रंग कर साधू बन जाऊँ, पर इस पुरुषार्थ-हीनता के लिए मेरी आत्मा तैयार नहीं थी।

अन्त में मैंने मेहनत-मजदूरी करके पेट पालने की ठानी। परन्तु अपने गाँव में मुझसे यह काम नहीं हो सकता था। अतः मैं गाँव छोड़कर अन्यत्र चला गया और मेहनत-मजदूरी करके पेट भरने लगा। मेरा मन एक स्थान पर नहीं लगता था। एक तो मैं अकेला था; और दूसरे मेरे भूतकालीन जीवन की स्मृति मुझे दुःख-सागर में निमग्न करती रहती थी। इसलिए मैं स्थान-स्थान पर घूमता-फिरता रहा। इस प्रकार मैंने अपने जीवन का बड़ा भाग समाप्त किया।

पर मेरे लिए अभी आपत्तियों का भण्डार खाली नहीं हुआ था। मुझे अभी और दुख देखने थे। एक दिन मेरे निवास-स्थान के पास हत्या-काण्ड हो गया। एक बुढ़िया का किसी ने गला घोंट दिया और उसका रुपया-पैसा लेकर चम्पत हुआ। पुलिस घटना-स्थल पर आ पहुँची। मुझ पर संदेह किया गया। दो-चार मनुष्य मुझ से द्वेष करते थे। उन्होंने पुलिस को रिश्वत देकर मुझे फँसा दिया। मैंने अपनी निर्दोषता का पर्याप्त प्रमाण दिया, किन्तु कौन सुनता है! पुलिस की मुट्ठी गरम हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि मुझे १० वर्ष के घोर कारावास का दण्ड मिला। इसे भी मैंने पूर्वजन्म के कुकर्मों का ईश्वर-प्रेषित फल समझकर स्वीकार किया। जेल में मुझे यंत्रणाएँ सहनी पड़ीं, उनका स्मरण करके ही मेरा हृदय काँपने लगता है, वर्णन करना शक्ति के बाहर है। मुझे आश्चर्य होता है कि मैं वहाँ किस प्रकार जीवित रहा, मेरा शरीरान्त क्यों नहीं हो गया?

१० वर्ष बाद मैंने फिर स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस ली है। अब मेरा शरीर अस्थि-पंजर हो गया है। उसमें रक्त और मांस नहीं है। सब जेल-दानवी बलि पर चढ़ गया। वृद्धावस्था के कारण अंग

शिथिल हो गए हैं, चला-फिरा नहीं जाता, पर प्राण इस शरीर का मोह नहीं छोड़ते। मेहनत मजदूरी करने की सामर्थ्य नहीं है। भीख माँगने में लज्जा लगती है। उधर पापी पेट नहीं मानता। शरीर ढकने को वस्त्र नहीं है। ऐसी दशा में सड़क के किनारे पड़ा हुआ अपने भाग्य पर आँसू बहाया करता हूँ। लज्जा के कारण किसी से कुछ याचना करने की इच्छा नहीं होती। उसी भगवान से लौ लगाये रहता हूँ जिसने ये दिन दिखाये हैं। "हे भगवान! मैंने ऐसे क्या पाप किए हैं जो तू मेरे जीवन का अन्त करके मुझे इन कष्टों से मुक्त नहीं करता"—यह कहते-कहते उसका कण्ठ रुद्ध हो गया और वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसकी करुण कहानी सुनकर मेरा हृदय भर आया। मैंने उसे धैर्य बँधाया और आश्वासन दिया कि जब तक वह जीवित रहेगा उसे भोजन-वस्त्र का कष्ट न रहेगा।

तब तक घर आ गया। मैंने उसे खाना खिलाया और शरीर ढकने के लिए फटे-पुराने वस्त्र दिये। तृप्त होकर वह अपने स्थान को वापिस चल दिया।

अपने नटखट छोटे भाई का दैनिक कार्यक्रम

(१) प्रस्तावना—बाल्यावस्था की विशेषता
(२) अपने छोटे भाई का जागने के समय से दोपहर तक का कार्यक्रम
(३) उसका दोपहर से सायंकाल तक का कार्यक्रम
(४) उसका सायंकाल से सोने तक का कार्यक्रम
(५) उपसंहार—सारांश

बाल्यावस्था भी कैसी मनोरम होती है! न कोई चिन्ता होती है, न कोई दायित्व। बालक मस्त रहता है। आठ पहर, साठ घड़ी वह अपनी काल्पनिक दुनिया में विचरता रहता है तथा स्वप्निल सृष्टि की रचना किया करता है। शक्ति-आधिक्य के कारण वह कभी थकान का अनुभव नहीं करता और दिन-भर अपनी रँगीली रचना में तन्मय होकर जुटा रहता है। प्रकृति ने उसे चंचल एवं नटखट

बनाया है। चुपचाप एक स्थान पर बैठना उसके लिए असम्भव है। वह कुद्कता-फुद्कता, कूदता-फाँदता, जगह-जगह खेलता फिरता है।

छः वर्ष के मेरे छोटे भाई रमेश में बालकों की विशेषताएँ पूर्णरूप में पाई जाती हैं। वह जैसा चंचल तथा नटखट है वैसा मैंने आज तक कोई बालक नहीं देखा है। प्रातःकाल जब माता जी उसको जगाती हैं तब वह सोने का बहाना किये चारपाई पर पड़ा रहता है। अनुनय-विनय करने और मिठाई का प्रलोभन देने पर भी चारपाई नहीं छोड़ता। विवश होकर माताजी लौट आती हैं और घर के काम-काज में संलग्न हो जाती हैं! थोड़ी देर बाद वह उठता है, माती जी से आँख बचाकर चुपके से मिठाई का डिब्बा खोलता है और मिठाई से अपनी जेब भरकर चम्पत हो जाता है। न माताजी को उसकी इस हरकत का पता लगता है और न घर के किसी अन्य व्यक्ति को। जिस दिन मिठाई पर उसका दाँव नहीं लगता उस दिन खाली हाथ ही वह घर से बाहर भाग जाता है। न हाथ-मुँह धोता है, न शौच को जाता है। माता जी को धोखा देने के हेतु वह अपने ओढ़ने के वस्त्र को इस युक्ति से चरपाई पर फैला देता है कि उसके सोते रहने का भ्रम हो जाय उसकी यह युक्ति कई बार सफल हुई है। एक दिन माताजी तो यह समझती रहीं कि रमेश सो रहा है, पर वास्तव में वह लापता था।

जब माता जी को यह ज्ञात हो जाता है कि रमेश चुपके से बाहर निकल गया है तब वे उसे पकड़ लाने का कार्य मुझे सौंपती हैं। घर-घर और गली-गली उसे खोजता हूँ। कभी उसे गलियारे में गिल्ली-डंडा खेलता हुआ पाता हूँ, तो कभी गली में गेंद खेलता हुआ। कभी उसे साथियों से लड़ता झगड़ता हुआ पाता हूँ, तो कभी रोता हुआ। मुझे देखकर वह दूर भाग जाता है, बहुत समझाने-बुझाने पर भी नहीं आता। अन्त में मुझे निराश होकर लौटना पड़ता है। इससे माताजी क्रुद्ध होती हैं और घर का द्वार बन्द करवा देती हैं। कुछ काल-अनन्तर जब रमेश आता है, तब घर का द्वार बन्द

पाता है। वह द्वार खुलवाने के लिए तरह-तरह की युक्ति करता है। कभी कहता है पिताजी आगए, किवाड़ खोलो। कभी कहता है डाकिया चिट्ठी देने आया है, किवाड़ खोलो। जब किवाड़ खोले जाते हैं तब न पिताजी दिखाई देते हैं, और न डाकिया। हम सबको उसकी इस चालाकी पर हँसी आ जाती है और माताजी का क्रोध शान्त हो जाता है।

अब वह घर के अन्दर आता है। और माताजी उसे ठेलकर शौच के लिए भेजती हैं। तत्पश्चात् उसे कुछ पढ़ाती हैं। वह पढ़ने से बहुत जी चुराता है। कभी कहता है पट्टी खो गई है, कभी कहता है कलम नहीं मिलती, कभी कहता है कि खड़िया निबट गई है। फिर माताजी जब भोजन बनाती हैं, तब द्वार बन्द कर लेती हैं जिससे रमेश बाहर न भाग जाय। यह देख कर वह घर में ही कुछ न कुछ उत्पात करता है। कभी मेरी पुस्तकों को तितर-बितर कर देता है। कभी सन्दूक खोलकर माताजी के कपड़ों को इधर-उधर बखेर देता है। कभी दर्पण लेकर मुख पर पाउडर पोत लेता है। कभी मसि-पात्र लुढ़काकर अपने वस्त्रों को बिगाड़ लेता है। कभी बर्तन-भाँड़े फोड़ देता है। माताजी को जब उसकी करतूतों का पता लगता है तब वे क्षुभित होकर उसे कोठरी में बन्द कर देती हैं और भूखा-प्यासा मार डालने का भय दिखाती हैं। पर रमेश अपनी चतुराई से शीघ्र कोठरी खुलवा कर बाहर निकल आता है। कभी कहता है मुझे बहुत जोर से पेशाब लगा है, कभी कहता है मुझे बहुत जोर से टट्टी लगी है। माताजी तुरन्त कोठरी खोल देती हैं कोठरी से बाहर निकलकर वह न पेशाब को जाता है, न टट्टी को। उसकी इस चतुराई पर हम सब खिलखिलाने लगते हैं।

जब भोजन तैयार हो जाता है तब उसे भोजन करने के लिए बुलाया जाता है। भोजन करते समय भी उसका नटखटपन बन्द नहीं होता। चित्त चंचल रहता है, नेत्र चारों ओर नाचते रहते हैं। कभी रोटी के टुकड़ों को उछाल-उछालकर खेलता है। कभी दाल-भात बखेर देता है। कभी अवसर पाकर बाहर भाग जाता है।

दाल-साग मुख पर लिपटा रहता है। उसे धोने के लिए उसके पास समय कहाँ ? इस प्रकार उसका दोपहर तक का कार्य-क्रम समाप्त होता है।

मातजी सब को खाना खिलाकर स्वयं भोजन करती हैं। तदनन्तर वे विश्राम करती हैं और रमेश से भी विश्राम का आग्रह करती हैं। वह विश्राम करना नहीं चाहता, किन्तु माताजी के भयवश चारपाई पर लेट जाता है और नेत्र मूँदकर सोने का आडम्बर रचता है। जब माताजी निद्रा–सागर में निमग्न हो जाती हैं तब वह चुपचाप उठता है, किवाड़ों की कुण्डी खोलता है और खेलने के हेतु बाहर भाग जाता है। उसे इतना ज्ञान कहाँ कि किवाड़ खुले हुए हैं, घर सूना है, चोरी हो सकती है। उसे तो अपने मनोरंजन से मतलब।

जब माताजी की आँखें खुलती हैं तब वे खुले किवाड़ देखकर दाँत पीसकर रह जाती हैं। उधर रमेश और उसके साथियों में कभी-कभी खेलते-खेलते लड़ाई हो जाती है। एक दिन उसने दाँव न देने के अपराध पर एक लड़के के सिर में पत्थर मार दिया, जिससे रक्त-धारा प्रवाहित होने लगी। लड़के की माँ माताजी के समीप उलाहना देने आई। माताजी ने रमेश को पकड़ कर खूब पीटा, पर वह किंचित् मात्र भी न रोया। फिर उसे रस्सी से बाँध दिया गया। उसने मौका पाकर निकटस्थ ताक से चाकू लेकर रस्सी काट दी और अपने को बन्धन-मुक्त कर लिया। माताजी तंग होकर उसे कोसने लगीं और पिताजी से दण्डित कराने का भय दिखाने लगीं। परन्तु वह टस से मस न हुआ। इस प्रकार वह नित्य कोई न कोई उपद्रव करता रहता है।

सायंकाल रमेश थका-माँदा घर लौटता है और चुपचाप बिस्तर में मुँह छिपाकर लेट जाता है, जिससे पिताजी के दण्ड का भागी न होना पड़े। तत्काल गहरी निद्रा उस पर अपना अधिपत्य जमा लेती है। माताजी ब्यालू के लिए जगाती हैं, पर उसे चेत नहीं होता। उसके मुँह से दूध का प्याला लगा दिया जाता है, जिसमें से अर्द्ध-

निद्रित दशा में वह दो-चार घूँट भर लेता है। कभी-कभी वह दूध के कुल्ले भी कर देता है। इस पर झुँझला कर माताजी उसके गाल पर थप्पड़ जमा देती हैं और उसे भूखा ही सुला देती हैं। इस प्रकार रमेश का दैनिक कार्यक्रम समाप्त होता है।

सारांश यह है कि नटखट रमेश की हरकतों से माताजी परेशान हैं। वह उन्हें चैन नहीं लेने देता। कभी घर की वस्तुएँ बाहर फेंक आता है। कभी बर्तन-भाँड़े तोड़-फोड़ देता है। कभी कोई मुकद्दमा ला खड़ा करता है। कभी किसी से लड़ाई करा देता है, कभी किसी को मारकर भाग आता है। कभी अपने ही हाथ पैर पीड़ित कर लेता है; पर माताजी उसे बहुत प्यार करती हैं। कहाँ माता का स्नेहार्द्र हृदय और कहाँ सन्तान का नटखटपन! कहाँ माता की वत्सलता और कहाँ सन्तान के उत्पात!

——

अपने विद्यालय के एक आदर्श अध्यापक का चित्रण

(१) प्रस्तावना—अध्यापकों का दायित्व, (२) हमारे विद्यालय के आदर्श अध्यापक की विद्वत्ता, (३) अध्यापन-कुशलता, (४) अध्ययन-शीलता, (५) खेल-कूद से प्रेम, (६) कोमल हृदय, (७) विनम्रता, (८) सादगी-प्रियता, (६) छात्रों के प्रति स्नेह, (१०) सच्चरित्रता, (११) उपसंहार—सारांश

विद्यालय वह साँचा है जिसमें नागरिक ढलते हैं। नागरिकों को अच्छा अथवा बुरा रूप देना अध्यापकों पर निर्भर है। एक आदर्श अध्यापक अपने विद्यार्थियों को राष्ट्र-रत्न बना सकता है, उन्हें मनुष्य-कोटि से देव-कोटि में पहुँचा सकता है। उसके ऊपर समाज का बड़ा दायित्व होता है। हमारे विद्यालय में चन्द्रशेखर जी शर्मा ऐसे ही अध्यापक हैं।

शर्माजी बहुत विद्वान हैं। कहने के लिए तो वे केवल गणित में एम० ए० हैं, पर साहित्य, विज्ञान; और समाज शास्त्र में उनकी असाधारण गति है। विद्यार्थी जीवन में वे सदैव सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थी रहे और प्रत्येक परीक्षा में उन्होंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। गणित में तो बाल्यावस्था से ही उन्हें विशेष रुचि थी और परीक्षाओं में सर्वदा उन्हें विशेष योग्यता मिली। इस विषय में उनका ज्ञान अथाह है। कठिन से कठिन प्रश्न वे तुरन्त हल कर देते हैं। उनकी कुशाग्र बुद्धि, उनकी प्रतिभा धन्य है। हमारे विद्यालय में तो उनका आदर है ही, स्थानीय सभी विद्यालयों में अध्यापक उनकी योग्यता का लोहा मानते हैं। उनकी विद्वता की धाक बाहर भी जमी हुई है। समय-समय पर उन्हें व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

शर्माजी की अध्यापन-कुशलता सराहनीय है। विद्वता के साथ-साथ वे अपने ज्ञान की किरणें विद्यार्थियों तक पहुँचाने में पूर्णतया सफल होते हैं। उनकी अध्यापन-शैली रोचक है। शुष्क से शुष्क विषयों को वे सरस बनाकर छात्रों के हृदयंगम करते हैं और उनकी ज्ञान-पिपासा तृप्त करते हैं। कम और अधिक दोनों प्रकार की योग्यता वाले विद्यार्थी उनसे लाभान्वित होते हैं। उनका समझाने का ढङ्ग इतना सरल तथा सुबोध है कि प्रत्येक बात स्पष्ट हो जाती है। यदि गणित का कोई प्रश्न कोई विद्यार्थी हल करने में असमर्थ होता है तो वे उसे स्वयं हल नहीं करते, वरन् उसी विद्यार्थी द्वारा आवश्यक सहायता प्रदान करते हुए हल कराते हैं। इससे विद्यार्थी में स्वावलम्बन, अपने पैरों पर खड़े होने का उत्तम गुण उत्पन्न होता है।

शर्माजी एक अध्ययनशील व्यक्ति है। वे अपना समय अधिकांश पुस्तक पढ़ने में व्यतीत करते हैं। विद्यार्थी उतना अधिक अध्ययन नहीं करते जितना अध्यापक होते हुए वे करते हैं। अध्ययन का उन्हें इतना व्यसन है कि उन्होंने अपने गृह में एक निजी पुस्तकालय स्थापित किया है। प्रति माह अपने वेतन में से वे कुछ न

कुछ इस पुस्तकायल की भेंट करते हैं। अच्छी पुस्तकों के संग्रह की उन्हें बड़ी लालसा रहती है। कोई नवीन अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई नहीं कि उन्होंने खरीदी नहीं। अन्य पुस्तकालयों से भी पुस्तकें ला-लाकर पढ़ने का उन्हें शौक है। मासिक-पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों का भी वे अवलोकन करते रहते हैं। उनके यहाँ कई पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ से और जिस प्रकार से वे अपने ज्ञान-भण्डार में अभिवृद्धि कर सकते हैं करते रहते हैं। वे अपने छात्रों में भी अध्ययनशीलता का दिव्य गुण उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी धारणा है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों को जिज्ञासु होना चाहिए; कभी अपने ज्ञान से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। हमारा ज्ञान समुद्र में एक बूँद के समान है।

जहाँ शर्माजी भगवती वीणापणि के सच्चे पुजारी हैं; जहाँ वे ज्ञान-संचय में संलग्न रहते हैं वहाँ वे खेल-कूद के भी प्रेमी हैं। विद्यालय के खेल-कूद के घण्टे में वे स्वयं छात्रों के साथ खेलते हैं और खेल में ऐसे तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें समय व्यतीत हो जाने का पता नहीं चलता। खेल के क्षेत्र में वे अध्यापक और विद्यार्थी का नाता परित्याग करके समानता का नाता जोड़ते हैं। वे फुटबौल, वॉलीबौल; और क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी हैं। कबड्डी में भी उन्हें रुचि है। दण्ड, बैठक, आसन, तैरना, मुगदर हिलाना आदि व्यायाम का वे स्वयं अभ्यास करते हैं और विद्यार्थियों को भी अभ्यास कराते हैं। वे हमारे विद्यालय में खेल-कूद के प्रबन्धक हैं।

शर्माजी का हृदय बहुत कोमल है। दयार्द्रता उनमें खूब है। किसी को संकट में देखकर उनके हृदय में करुणा जाग्रत हो जाती है और उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं। सहानुभूति उनमें कूट-कूटकर भरी हुई है। पीड़ितों तथा दीन-दुःखियों की सहायता करने से वे आनन्दित होते हैं। उनके मुख पर क्रोध की झलक कभी नहीं देखी गई है। कठोरता का व्यवहार करना तो वे जानते ही नहीं।

शर्माजी विनय की साक्षात् मूर्ति हैं। 'विद्या ददाति विनयम्' उक्ति उन पर पूर्णतः घटित होती है अहंभाव उन्हें छू तक नहीं गया है। वे अपने को तुच्छ समझते हैं। इतने अधिक विद्वान् होने पर भी उनकी प्रकृति विनम्र है। वे अयोग्य से अयोग्य और अज्ञानी से अज्ञानी व्यक्ति की बात ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उस पर विचार करते हैं। ज्ञानी होने का गर्व उन्हें तनिक भी नहीं हैं और विद्यार्थियों के अभिवादन को मुस्कराकर हाथ जोड़ते हुए स्वीकार करते हैं।

शर्माजी सादगी-प्रिय महानुभाव हैं। 'Plain living and high thinking' अर्थात् 'सादा जीवन और उच्च विचार' उनका सिद्धान्त है। वे सादा भोजन पसन्द करते हैं। मिर्च-मसालेदार चटपटे पदार्थों और मिष्टान पक्वान में उन्हें रुचि नहीं। खद्दर से उन्हें प्रेम है। वे खद्दर के ही कपड़े शरीर पर धारण करते हैं। गाँधी टोपी, बन्द-गले का कोट और धोती ये—वस्त्र उनके शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। भोजन एवं वस्त्रों के अतिरिक्त उनके विचारों में भी सादगी पाई जाती है।

शर्मा जी अपने छात्रों पर बहुत स्नेह करते हैं। उनके सुख-दुःख की उन्हें बड़ी चिन्ता रहती है। कोई नटखट लड़का यदि उन्हें कभी तंग करता है तो वे उसे दण्ड नहीं देते, अपितु उसकी अज्ञानता को समझकर टाल देते हैं। दीन छात्रों को वे आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। यदि कोई छात्र रुग्ण हो जाता है तो उन्हें दुःख होता है और समवेदना प्रकट करने के लिए वे उसके अभिभावक के पास जाते हैं। वे प्रत्येक छात्र को प्यार से पढ़ाते हैं और उसकी कठिनाइयों को सहर्ष दूर करते हैं। कोई चाहे कितनी ही बार उनसे कोई बात क्यों न पूछे वे अनखाते नहीं। परीक्षा में जो छात्र अनुत्तीर्ण हो जाते हैं उन्हें ढाढ़स बँधाते हैं।

शर्मा जी सच्चरित्र-शिरोमणि हैं। प्रलोभनों से उन्हें घृणा है और वे उनसे बहुत दूर रहते हैं। किसी को पीड़ित करना, किसी

के प्रति अत्याचार करना, किसी के साथ अन्याय करना, झूठ बोलना, विश्वासघात करना, अपने कर्त्तव्य का पालन न करना आदि दुर्गुणों से वे बिलकुल मुक्त हैं। प्रत्युत् परोपकार, सेवा, अहिंसा, सहनशीलता, न्यायप्रियता, सत्यवादिता, कोमलता, विनम्रता, सहानुभूति आदि सद्गुणों की वे खानि हैं।

सारांश यह है कि शर्माजी एक आदर्श एवं छात्रप्रिय अध्यापक हैं। उनसे क्या विद्यार्थी, क्या सहयोगी अध्यापक, क्या अधिकारी, क्या नागरिक, सभी प्रसन्न हैं। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए छात्रों का हित-साधन करते हैं। अध्यापक और मनुष्य दोनों रूपों में वे हमारी श्रद्धा के पात्र हैं। यदि उनके समान सभी अध्यापक हों तो फिर राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने में कितनी देर लगे ?

किसी जादूगर के खेलों का आँखों देखा वर्णन

(१) प्रस्तावना—जादूगर का आगमन

(२) भीड़ लगना और खेल की तैयारी

(३) खेल—

(क) कागज की धज्जी मुख से बाहर निकालना

(ख) लोहे के बड़े-बड़े गोले मुख से बाहर निकालना

(ग) बिना रस्सी के हाथ बाँधना

(घ) शरीर में खुजली उत्पन्न करना

(ङ) ठीकरी का रुपया बना देना और उसे एक दर्शक की जेब में पहुँचाना

(च) फल-सहित आम का पौधा तैयार करना

(छ) मनुष्य को आकाश में उड़ाकर अदृश्य कर देना

(ज) एक कबूतर के कई कबूतर करना

(४) खेल समाप्त होने पर जादूगर की भिक्षा-याचना और प्रस्थान

(५) उपसंहार—प्रभाव

चैत्र का महीना था और प्रात:काल का समय। बसन्त की बसन्ती छटा छाई हुई थी। सूर्य भगवान अपनी सुनहरी रश्मियाँ छिटका रहे थे। कोयल कूक रही थी। चारों ओर शान्ति थी। शीतल तथा सुगन्धित वायु मन्द-मन्द प्रवाहित हो रही थी। लगभग ६ बजे होंगे। मैं अपनी बैठक में कुर्सी पर बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। सहसा अलगोजा की मधुर ध्वनि कानों में पड़ी, जिसे सुनकर मेरा मन पुस्तक-पाठन से विरत होगया और ध्वनिकारी के निकट पहुँचने के लिये मचलने लगा। फिर क्या था, मैं बाहर आया और ध्वनि के सहारे ध्वनिकारी की खोज में नेत्र दौड़ाने लगा। थोड़ी देर में क्या देखता हूँ कि एक दाढ़ी वाला पुरुष अलगोजा बजाता हुआ, झूमता हुआ आ रहा है। उसके कन्धे पर झोला पड़ा है। उसके साथ एक बालक है। मैं तुरन्त समझ गया कि वह जादूगर है और खेल दिखाने के हेतु आ रहा है। मैं भी खेल देखने की इच्छा से उसके साथ हो लिया।

कुछ आगे चलकर एक खुले मैदान के समीप जादूगर रुक गया। उसके अलगोजा की मधुर ध्वनि से आकृष्ट होकर मेरी भाँति बहुत से स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाए इधर-उधर से एकत्रित हो गई। अलगोजा बजाने का उद्देश्य भी यही था। दो मिनट में दर्शकों की भीड़ लग गई। अपने उद्देश्य की पूर्ति पर प्रसन्न हो अब जादूगर ने अलगोजा बजाना बन्द कर दिया और झोला उतारकर वह एक स्थान पर बैठ गया। तत्पश्चात् उसने झोला खोला और उसमें लकड़ी का एक टुकड़ा निकला। उसे लेकर वह अलगोजा बजाता हुआ चारों ओर घूमा। तदनतन्र उसने अपने बालक को पुकार कर खेलों के लिए तैयार किया। अब खेल आरम्भ हुए।

पहला खेल जो जादूगर ने दिखाया वह कागज की धज्जियों से सम्बन्धित था। उसने कागज की छोटी-छोटी धज्जियों का भोजन किया और ऊपर से जल पिया। फिर उसने अपने बालक को बुलाया और आज्ञा दी कि वह उसके मुख से कागज की धज्जी बाहर खींचे बालक ने धज्जी खींचीं। जादूगर के मुख से छोटी-छोटी धज्जियों के

स्थान पर एक पूरी लम्बी धज्जी बाहर निकलते देखकर हम सभी दर्शक आश्चर्य से भर गए। इसके अतिरिक्त हम यह देखकर दंग रह गये कि जल पीने पर भी कागज की धज्जियाँ गली नहीं, प्रत्युत् जुड़कर एक हो गईं। विधाता का विधान क्यों बदल गया? प्रकृति पंगु हो गई क्या?

इसके उपरान्त जादूगर ने झोले में से लोहे की एक छोटी-सी गोली निकाली और उसे निगल गया। कुछ देर बाद बस उदर-पीड़ा का बहाना करने लगा और उसकी शान्ति के लिए ठण्डा जल माँगने लगा। बालक ने उसे जल पिलाया। जल पीकर उसने उबकाई ली। परिणाम-स्वरूप हम क्या देखते हैं कि उसके मुँह में लोहे का एक बड़ा गोला आकर अटक गया, जिसे बड़ी कठिनाई से उसने बाहर निकाला और आकाश में उड़ा दिया। यह दृश्य देखकर हम आश्चर्य सागर में निमग्न हो गए समझ में नहीं आया कि किस प्रकार एक छोटी-सी गोली पेट में जाकर बड़ा गोला बन गई और वह गोला किस प्रकार आकाश में उड़ गया। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का उस पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ा?

अब जादूगर की दृष्टि एक नटखट लड़के पर पड़ी जिसके हाथ बहुत चल रहे थे। उसने उस नटखट लड़के को सम्बोधित करके पूछा "बाबूजी! क्या आपके ऊपर कोई जादू किया जाय?" लड़के ने उत्तर दिया, "अवश्य।" इस पर जादूगर ने उससे दोनों हाथ मिलाने के लिए कहा। उसने तत्क्षण हाथ मिला लिए। जादूगर ने जादू की लकड़ी फेरकर उन्हें बाँध दिया और कहा, "बाबूजी! अब आप अपने हाथ एक दूसरे से पृथक् नहीं कर सकते।" लड़के ने बहुत चेष्टा की, किन्तु हाथ छूटे नहीं। हाथों के ऊपर न कोई रस्सी थी, न कोई बन्धन, तो भी वे बँधे हुए थे। कैसा अद्भुत दृश्य था।

इस खेल के पश्चात् उसने एक दूसरे लड़के के शरीर में खुजली पैदा करदी। वह बेचारा खुजला-खुजला कर परेशान हो गया, किन्तु बेचैनी दूर न हुई। खुजली के मारे वह इधर-उधर शरीर को रगड़ता

फिरा। इस दृश्य ने हमारा पर्याप्त मनोविनोद किया। अन्त में मैंने जादूगर से कहकर उस लड़के की खुजली ठीक करा दी।

तदनन्तर जादूगर ने अपनी मुट्ठी में एक ठीकरी रखली और जादू की लकड़ी फेरकर मुट्ठी को खोला तो क्या देखते हैं कि उसमें चमकता हुआ रुपया विराजमान है। हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कैसे ठीकरी रुपये में परिवर्तित हो गई ? यदि जादूगर ठीकरी से रुपये बनाने की कला जानता है तो फिर यह क्यों दर-दर पैसों के लिए भटकता फिरता है ? मैं इस प्रकार विचारों के भंवर में फँसा हुआ था कि उसने देखते-देखते रुपये को हथेली से उड़ा दिया और एक दर्शक से उसकी याचना करने लगा। दर्शक ने कहा, मेरे पास तुम्हारा रुपया कहाँ से आया ?" तब जादूगर ने उसकी जेब से वह रुपया निकाल कर सब लोगों को दिखाया। बेचारा दर्शक लज्जित होकर हक्का-बक्का रह गया। हम लोग भी विस्मित हुये।

अब जादूगर ने अपने बच्चे से प्रश्न किया—"जमूड़े ! भूख लगी है।" बच्चे ने उत्तर दिया, "हाँ।" जादूगर ने पूछा, "क्या खाओगे ? "बच्चे ने कहा—"आम।" जादूगर ने कहा कि आजकल पके आम कहाँ हैं जो तुम्हें खिलाऊँ। बच्चे ने कहा कि मैं तो आम ही खाऊँगा, चाहे कहीं से लाओ। तब जादूगर ने कहा कि अच्छा मैं तुम्हारे लिए बहुत जल्दी पके-पके आम तैयार करता हूँ; यह कहकर उसने अपने झोले से एक टोकरी और आम की गुठली निकाली। फिर आम की गुठली मिट्टी में गाड़कर टोकरी को उस पर औंधा दिया। फिर जादू की लकड़ी उस पर फेर दी। थोड़ी देर बाद जब टोकरी हटाई गई तब उसके नीचे पीले पके हुए आमों से लदा हुआ आम का छोटा-सा पौधा निकाला, जिसे देखकर मेरे मुँह में पानी भर आया और मन आश्चर्य समुद्र में डूबने लगा। क्या वे सच्चे आम थे ?

इसके अनन्तर मदारी अपने लड़के के चारों ओर एक लम्बी लकीर खींचकर कुछ मन्त्र-सा पढ़ने लगा। थोड़ी देर में हम क्या देखते हैं कि लड़का लट्ठ के सदृश हो गया। यह देखकर हमारे आश्चर्य का

ठिकाना न रहा। मदारी ने फिर उलटी क्रिया आरम्भ की और लड़का आकाश से नीचे उतरने लगा। धरती पर आकर उसने मुस्कराकर दर्शकों को प्रणाम किया।

फिर मदारी ने अपने झोले में से एक कबूतर निकाल कर दर्शकों को दिखाया और कहा कि देखिये कितनी जल्दी मैं इस कबूतर के कई कबूतर बनाता हूँ। यह कहकर उसने उस कबूतर को कपड़े के नीचे छिपा लिया और उस पर जादू की लकड़ी फेर दी। तत्पश्चात् कपड़ा हटाया गया तो उसके नीचे चार कबूतर निकले। कैसी अनौखी बात थी ? क्या विधाता की सष्टि में यह असम्भव है ?

जादूगर ने इसी प्रकार के कई अन्य विचित्र खेल दिखाये, जिन्हें देखकर मैं दाँतों तले उँगली दबाने लगा। अन्त में उसने दर्शकों से भिक्षा-याजना की। सबने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे कुछ न कुछ प्रदान किया। मैंने भी उसे इकन्नी दी। अब वह अपनी खेल की सामग्री झोले में रखकर और झोले को कन्धे पर डाल कर अपने बालक के साथ अलगोजा बजाता हुआ आगे बढ़ा। मैंने भी घर की ओर पैर बढ़ाए।

मुझ पर उसके खेलों का प्रभाव पड़ा। मैं बहुत समय तक उनकी विचित्रता पर विचार करता रहा। न मालूम कैसे जादूगर असम्भव बातें कर दिखाता है। क्या वह दर्शकों की आँखों में धूल झोंक देता है ? क्या वह हाथ की सफाई से आश्चर्यजनक दृश्य प्रदर्शित करता है ? क्या जादूगरी भी एक विद्या है ? कुछ भी हो, बलिहारी है जादूगरी को जो अपने चमत्कारों से चमत्कृत करके हमारा मनोरंजन करती है, जो अपनी अद्भुत करामातों से हमारे आमोद-प्रमोद की सामग्री जुटाती है, जो अपनी सृष्टि से विधाता की सृष्टि को भी मात करती है।

———

अन्नोत्पादन समस्या

(१) प्रस्तावना—सम्पन्न भारतवर्ष में अन्न की कमी
(२) अन्न की कमी का दुष्परिणाम
(३) अन्न-समस्या के हल के लिए आवश्यक बातें—
(क) अधिक से अधिक अन्नोत्पादन, (ख) प्रचुर मात्रा में देशी खाद की तैयारी, (ग) परती भूमि को कृषि-योग्य बनाना, (घ) सिंचाई की सुव्यवस्था
(४) उत्तर प्रदेश में अन्न-संकट निवारण के प्रयत्न
(५) उपसंहार—सारांश

वह भारत-भूमि जो कभी 'शस्य-श्यामला' थी, आज अन्न के लिए भिखारिणी बनी हुई है। वह भारत-भूमि जो कभी अपने अन्न से विदेशों का उदर-पोषण करती थी, आज स्वयं क्षुधातुर होकर पर-मुखापेक्षी बनी हुई है। आज हमारे देश में १० प्रतिशत अन्न का अभाव है जिसकी पूर्ति विदेश कर रहे हैं। आज अन्नाभाव की समस्या ने स्वाधीन भारत को पराधीन बना रक्खा है। आज यह समस्या भयंकर रूप धारण करके देश के समक्ष उपस्थित हुई है। इसके सन्तोषजनक हल पर ही हमारा राष्ट्रीय कल्याण अवलम्बित है। भोजन मानव की सर्व-प्रथम आवश्यकता है। उसकी समुचित व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। जिस राष्ट्र के नागरिकों को भरपेट भोजन नहीं मिलेगा उसकी क्या दशा होगी, यह सभी जानते हैं। अतः हमारी सरकार का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह अन्नाभाव की समस्या का शीघ्र से शीघ्र हल करने की चेष्टा करे।

खाद्यान्न की कमी के फलस्वरूप विदेशी अन्न का जो आज आयात करना पड़ रहा है उसमें हमारे करोड़ों रुपये विदेश जा रहे हैं इससे हमारा दरिद्र भारत और दरिद्र होता जा रहा है, हमारी विकास-योजनाएँ ठप्प हो रही हैं, हम उन्नति के स्थान पर अवनति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हमारे देश को खाद्यान्न के मामले में शीघ्र स्वावलम्बी होना चाहिए। इसी में हमारा हित है।

खाद्यान्न संकट-निवारण के निमित्त अन्नोत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि की आवश्यकता है। हमारा प्रयत्न अधिक से अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाना होना चाहिए। प्रत्येक नागरिक चाहे वह कृषक हो अथवा नहीं, कुछ न कुछ खाद्यान्न उत्पन्न करना अपना कर्त्तव्य समझे। गज-दो गज भूमि भी खाली न छोड़ी जाय। अन्नोत्पादन को देश-सेवा का प्रमुख अंग समझा जाय। देश-भर में इसका आन्दोलन किया जाय। केवल सरकार ही अन्नोत्पादन का गुरु-भार वहन करने में समर्थ नहीं हो सकती। इस महत्त्वपूर्ण योजना में जन-सहयोग भी नितान्त वांछनीय है।

अन्नोत्पादन आन्दोलन में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए हमें निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना होगा—

(१) प्रचुर मात्रा में देशी खाद का उत्पादन

(२) परती भूमि को कृषि-योग्य बनाना

(३) सिंचाई की सुव्यवस्था

गाँवों में करोड़ों मन कूड़ा-कर्कट व्यर्थ नष्ट होता रहता है। यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो वह स्वर्ण उत्पन्न कर सकता है। उससे देशी खाद तैयार करके भूमि को अधिक उर्वर बनाया जा सकता है। सरकार इस कार्य के लिए व्यापक योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यान्वित कर रही है। ग्रामीण जनता को कूड़ा-कर्कट से देशी खाद तैयार करना सिखाया जा रहा है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने देहाती क्षेत्रों में देशी खाद बनाना अनिवार्य कर दिया है।

प्रचुर मात्रा में देशी खाद के उत्पादन के प्रयास के साथ-साथ अधिक भूमि में कृषि-विस्तार भी आवश्यक है। इसके लिए परती भूमि को कृषि-योग्य बनाना होगा। प्रान्तीय सरकारें ही नहीं, केन्द्रीय सरकार भी इस कार्य में प्रयत्नशील है। कई भू-भागों में से काँस निकाल कर उन्हें कृषि-योग्य बनाया जा रहा है। जंगल साफ किए जा रहे हैं। नदियों के तट की भूमि भी इस उपयोग में लाई जा रही है। विद्यालयों, पाठशालाओं तथा कार्यालयों के अहातों में

जुताई-बुआई हो रही है। इस प्रकार हमारी सरकार प्राणपण से खाद्यान्न-संकट-निवारण में सचेष्ट है और कृषि-योग्य भूमि के चप्पे-चप्पे का उपयोग करना चाहती है।

कृषि के लिए सबसे आवश्यक वस्तु सिंचाई की उत्तम व्यवस्था है। इस दिशा में भी प्रत्येक प्रान्त में महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। कुओं तथा तालाबों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार के निमित्त सरकार की ओर से छोटी-छोटी योजनाएँ बनाई गई हैं और कार्य-रूप में परिणत की गई हैं। कुओं में बोरिंग द्वारा अधिक जल पैदा किया जा रहा है और उनमें रहँट लगाए जा रहे हैं, जिससे सुगमता से सिंचाई हो सके। इसके अतिरिक्त गाँवों में जो तालाब बेकार पड़े हैं उनका उपयोग करने की भी व्यवस्था हो रही है। उनको अधिक गहरा किया जा रहा है, जिससे वर्षा का पर्याप्त जल उनमें एकत्र हो सके और सिंचाई का काम दे सके।

हमारे प्रान्त में खाद्यान्न-उत्पादन के लिए एक प्रान्तीय संचालक नियुक्त किया गया है। उसके अधीन एक विशेष प्रधान इंजीनियर रक्खा गया है, जो प्रान्त में सिंचाई की व्यवस्था के सुधार एवं विस्तार के सम्बन्ध में उक्त संचालक को परामर्श और सहायता प्रदान करेगा। १५ जिलों को प्रयोगार्थ ७१ ट्रेक्टर दिये गये हैं जो परती भूमि को तोड़कर कृषि-योग्य बनायेंगे। ट्रेक्टरों की यह संख्या अपर्याप्त है। अतः सरकार अधिक ट्रेक्टर उपलब्ध करने का प्रयत्न कर रही है। सरकार ने जिला मेरठ के गंगा-खादर में १०,००० एकड़ और तराई-भाभर में ७५०० एकड़ भूमि को कृषि-योग्य बनाया है। अब उसका विचार अलीगढ़, मथुरा, लखनऊ; और हरदोई जिलों में १७००० एकड़ भूमि को कृषि-योग्य बनाने का है। अन्य जिलों पर अभी उतना ध्यान नहीं दिया जायगा। भूमि की उर्वरा-शक्ति में अभिवृद्धि करने के हेतु मिस्सी (Compost) खाद की योजना कार्यान्वित की गई है। सिंचाई के लिए पक्के कुओं के निर्माण के अतिरिक्त रहँट लगाकर कुओं से पानी निकालने के उपाय भी किए जा रहे हैं।

सारांश यह है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार खाद्यान्न-समस्या हल करने के लिये भरसक प्रयास कर रही है। किन्तु जनता के सहयोग के अभाव में उसे आशाजनक सफलता नहीं मिल रही है। प्रजातन्त्र शासन में सरकार को अपने कार्य और नीति की सफलता के लिए जनता के सहयोग पर अवलम्बित रहना पड़ता है। अतः सरकार द्वारा संचालित 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना तभी पूर्णतया सफल हो सकती है जब जन-साधारण इस योजना के कार्यान्वित करने में सरकार का पूरा-पूरा हाथ बँटाए। सरकार का भी यह कर्त्तव्य है कि इस योजना के सम्बन्ध में प्रचार द्वारा लोकमत तैयार करे और जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करे। जन-हित के लिए सरकार जो कार्य कर रही है उसके सम्बन्ध में जन-समुदाय को जानकारी कराना और उससे पूरा सहयोग लेना सरकार और जनता दोनों के लिए कल्याण-कारी है।

यदि अन्नोत्पादन-वृद्धि के मोर्चे पर सरकार और जनता कन्धे से कन्धा भिड़ाकर संयुक्त शक्ति से युद्ध करेगी तो विजयश्री भारत-माता की पद-धूलि में लोटेगी और भारत-माता का क्षुधा-जर्जरित कंकाल पुष्ट होकर दिव्य प्रभा से भर जायगा।

समाज-सेवा

(१) प्रस्तावना—भारतीय संस्कृति और समाज-सेवा
(२) राष्ट्रोत्थान के लिए समाज-सेवा-भावना की आवश्यकता
(३) वर्त्तमान काल में हमारे देश में इस भावना का अभाव
(४) समाज-सेवा का रूप
(५) उत्तर प्रदेश का इस दिशा में प्रयास
(६) उपसंहार—सारांश

संसार के इतिहास में समय-समय पर समाज-सेवा का आदर्श रखने वाले महान् पुरुषों के जीवन की अमर गाथाएँ मानवता के लिए प्रकाश और प्रेरणा के रूप में सदैव अमर रहेंगी। भारतीय

संस्कृति तो पग-पग पर समाज-सेवा का संदेश सुनाती रही है। हमारी सभ्यता का प्रतीक ही समाज-सेवा है। नालंदा एवं तक्षशिला के अमर विश्व-विद्यालयों की गाथा उस युग की समाज-सेवा-भावना का साकार रूप थीं। हमारा तो शिक्षा-आधार ही समाज-सेवा रहा है। गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली, जहाँ शिक्षा केवल राष्ट्र एवं समाज-सेवा की भावनाओं से अनुप्राणित होकर दी जाती थी, हमारी शिक्षा योजनाओं का प्रमुख प्रकार थी।

सेवा-भावना मानव-हृदय की स्वभाव-गत विशेषता है। प्रत्येक प्राणी में यह भावना बीज-रूप में विद्यमान रहती है। परिस्थितियों के अनुकूल एवं प्रतिकूल होने पर इसमें परिवर्तन होता रहता है। राष्ट्रीय चरित्र का उत्थान-पतन इन भावनाओं को जाग्रत एवं मृतवत् करने में सहायक होता है। सेवा-भावना से प्रेरित होकर लोक-हित में लगे हुए समाज-सेवी महापुरुष अपनी जाति, देश और प्राणी-मात्र के लिए अपने जीवन को अर्पण करते रहे हैं। यह सेवा-भावना प्रत्येक देश व जाति एवं प्राणी-मात्र की उन्नति के लिए परमावश्यक है। भारत का इतिहास इस प्रकार के अगणित उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस अन्धकार-युग को युगावतार महामानव बापू के रूप में भगवान् ने शक्ति-पुञ्ज की दीप्त ज्वाला प्रदान की। उस महामानव ने पराधीनता से जकड़े आत्म-विस्मृत भारत के समक्ष अपने अथक् परिश्रम, अपरिमित त्याग; तथा आदर्श बलिदान से समाज-सेवा का पाठ भारत के ही नहीं अपितु समस्त जगत् के समक्ष उपस्थित कर दिया।

प्रत्येक राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ के नागरिक पारस्परिक कठिनाइयों का हल स्वयं करें। स्वतन्त्र देश में वहाँ के नागरिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शासन की ओर उन्मुख नहीं होते। वे एक दूसरे के सहयोग से ही अपने स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते रहते हैं। उनके समस्त कार्य इस भावना से ओत-प्रोत रहते हैं कि उनके पड़ौसी की हानि उनको ही हानि है। इस भावना का फल यह होता है कि समाज में कोई भी काम ऐसा

नहीं होने पाता जिससे राष्ट्रीय उन्नति में बाधा उपस्थित हो। समाज-सेवा की कसौटी यही है कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति हो। जर्मनी जैसे छोटे-से राष्ट्र में यह नियम लागू था कि इक्कीस वर्ष के युवकों एवं युवतियों को समाज-सेवा-गृह में एक वर्ष सेवा-व्रत ग्रहण करना चाहिए। इस काल में वे सभी प्रकार के छोटे-बड़े शारीरिक श्रम के कार्य करते थे। इसके अन्तर्गत मकान बनाना, गाँव की सफाई करना, सड़कें बनाना आदि कार्य थे। इसी योजना के फलस्वरूप इन समाज-सेवी युवकों और युवतियों द्वारा सुन्दर सड़कों का जाल जर्मनी के कोने-कोने में बिछा दिया गया था।

हमारे देश की तो दशा ही विचित्र है। इसका प्राचीन स्वर्ण-युग केवल कल्पना-मात्र प्रतीत होता है लगभग तीन-सौ साल की परतन्त्रता में भारत का जितना चारित्रिक ह्रास हुआ है उतना भारतीय इतिहास में कभी किसी की कल्पना में भी नहीं आया था। इन दासता की शताब्दियों में हमारा एक मात्र ध्येय केवल स्वार्थ की भावना ही हो गया। सामूहिक लाभ-हानि हमारे लिए एक विडम्बना सी बन गई है। ऐसी स्थिति में राष्ट्र का पतन स्वाभाविक ही है। दासता के अनेक अभिशापों के साथ-साथ समाज-सेवा की पुनीत भावना का नाश भी अँगरेजी शासन का एक लक्ष्य रहा था। यदि व्यक्ति में समाज-सेवा के कर्त्तव्य के प्रति चेतना विद्यमान रहती है तो उस देश के नागरिक अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति; और अपने आत्माभिमान की रक्षा कर सकते हैं।

भारत की अपनी सांस्कृतिक निधि महान् है। आज देश स्वतन्त्र है। प्रत्येक नागरिक पर देश की सर्वतोमुखी उन्नति का भार है। देश के नाम पर १८५७ से लेकर १६४२ तक की क्रांतियाँ हमें अपने कर्त्तव्य-पथ की ओर अग्रसर होने के लिए आवाहन करती रही हैं। अगणित शहीदों के बलिदान स्वतन्त्रता के स्वर्णिम पुष्पों के रूप में विकसित हो चुके हैं। उनकी रक्षा एवं संवर्द्धन हमारा कर्त्तव्य है। देश की उन्नति के लिए यह अनिवार्य है कि हम अपनी समाज-सेवा की लुप्त भावनाओं को पुनः जाग्रत करें।

देश के उत्थान तथा सर्वतोमुखी विकास के लिये समाज-सेवा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यह कार्य देश के भावी नागरिकों की सुशिक्षा द्वारा सरलता से सम्पादित किया जा सकता है। समाज-सेवा का कार्य शिक्षकों और शिक्षार्थियों पर पूर्णरूप से निर्भर है। प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय के छात्रों तक में इस सेवा-भावना का उदय आवश्यक है। समाज-सेवा के कितने ही प्रकार हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन्हें कार्यान्वित करने में अपना योग दे सकता है। कोई कारण नहीं है कि स्वतन्त्र देश के नागरिक होने के नाते आज हम अपने उत्तरदायित्व की गुरुता को न समझें अथवा उसे कार्यान्वित करने से विमुख हों। छोटे-से-छोटे कार्य को सम्मान कार्य समझना समाज-सेवा की कुंजी है। नगर अथवा गाँव, जहाँ भी हम रहते हों, वहाँ की उन्नति करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। यदि समाज का व्रत हम ले लें तो हमरे नेताओं का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय और राष्ट्र-निर्माण कार्य में बहुत बड़ी सहायता मिले।

स्काउटिंग, जूनियर रेडक्रॉस, बाल-सभाएँ आदि ऐसी संस्थाएँ हैं जिसकी नींव समाज-सेवा पर आधारित है। पाठशालाओं एवं सभी छोटी-बड़ी शिक्षा-संस्थाओं में उपर्युक्त समाज-सेवा-संस्थाएँ विद्यमान हैं, परन्तु वे लगभग निष्प्राण हैं। उनका अस्थि पंजर मात्र ही दिखाई पड़ता है। इन संस्थाओं को नव राष्ट्रीय जागरण की भावनाओं से परिपूरित करके पुनर्जीवित करना हमारा कर्त्तव्य है। कठिनाई एवं अवनति के गर्त में पड़े हुए साथियों की सेवा करना समाज की सेवा है। उदाहरण के रूप में यदि हम किसी गाँव को लें तो उस गाँव की सर्वतोमुखी उन्नति करना समाज-सेवा है। उस गाँव की गन्दी गलियों की सफाई, कूड़ा-कर्कट के यत्र तत्र ढेरों की समुचित व्यवस्था, कच्चे, टूटे-फूटे, प्रकाश एवं शुद्ध वायु-हीन मिट्टी के घरोंदों का कायाकल्प; तथा गाँव की अशिक्षा एवं पार्टी-बन्दी का नाश करके सेवा-कार्यों द्वारा उचित मार्ग-प्रदर्शन समाज-सेवा के अन्तर्गत आता है। समाज-सेवा की कसौटी यह है कि मनुष्य स्वयं कार्य करे। व्याख्यान तथा कोरी लम्बी-चौड़ी बातों का समाज-सेवा से कोई

सम्बन्ध नहीं है। समाज-सेवा तो मानव-हृदय की उच्चतम भावनाओं का साकार रूप प्रदान करने में ही निहित है। बातों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। समाज-सेवी निःस्वार्थ भाव से अपने समाज की सेवा इसलिए करता है कि उसके समाज का दुःख दूर हो और उसके राष्ट्र की उन्नति हो।

नवयुवकों में समाज-सेवा की भावनाएँ जाग्रत करने के लिए हमारे प्रदेश की सरकार ने एक ठोस कदम उठाया है। वास्तव में नवयुवक ही हमारे देश के भावी भाग्य-निर्माता होंगे। विश्वविद्यालयों की शिक्षा ने हमारे नवयुवकों व नवयुवतियों का सभी दृष्टियों से घोर पतन कर दिया है। वहाँ उनकी मनःस्थिति कुछ इस प्रकार की ढल जाती है कि वे अपने को साधारण जन से विभिन्न एवं उच्चतर समझने लगते हैं। शारीरिक श्रम उनकी दृष्टि में हेय होता है। वे ग्रामवासियों को जो वास्तव में हमारे अन्नदाता हैं, नितान्त मूर्ख एवं पशु समझते हैं। इन अनर्गल अवांछनीय एवं हानिप्रद भावनाओं को समूल उखाड़ फेंकने की दृष्टि से ही हमारी प्रांतीय सरकार ने 'समाज-सेवा-शिक्षण-विद्यालय' का श्रीगणेश किया है। इस योजना का उद्देश्य प्रांत के नवयुवकों को स्वतन्त्र देश के नागरिकों के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व की शिक्षा देना है। यह योजना उसके उत्साह तथा शक्ति को क्रियात्मक रूप देने के लिये निर्मित हुई है। इसका ध्येय यह भी है कि उनके जीवन में वे पक्ष उपस्थित किए जायँ जिनके प्रति उनकी उदासीनता तथा अवहेलना रही है। इसके द्वारा वे ग्राम्य-समस्यायों का स्वयं अध्ययन कर सकेंगे और शारीरिक श्रम द्वारा अपने स्वास्थ्य का सुधार करके ग्रामवासियों के स्वास्थ्य-निर्माण तथा अन्य उन्नति-कार्यों में योग दे सकेंगे।

समाज-सेवा वास्तव में एक महान् व्रत है। इसके व्रती को अपनी बहुत सी भौतिक सुविधाओं तथा सुखों का परित्याग करना पड़ता है। यह तो बलिदान की पराकाष्ठा है, जिसमें आत्म-संतोष एवं सुख के अतिरिक्त साधारणतया अन्य कोई सांसारिक महानता प्राप्त नहीं होती। संसार के सभी प्रकार के समाज-सुधारकों एवं समाज-सेवियों

ने अपने प्राणों का समय-समय पर उत्सर्ग किया। तत्कालीन जनता ने इस समाज-सेवा के लिए उनकी कड़ी भर्त्सना की और कुछ के प्राण तक ले लिए। यूनानी दार्शनिक सुकरात को विष का घूँट पीना पड़ा! प्रभु ईसा मसीह को क्रॉस पर अपने प्राण देने पड़े। हमारे देश में भी समाज-सेवियों के जीवन-बलिदान की अनेक गाथाएँ हैं। अभी कल की बात है कि हमारे बापू जो समाज-सेवा के ज्वलन्त प्रतीक थे अपना महान् सेवा-व्रत पालन करते-करते गोलियों के शिकार हुए। सेवा का व्रत तो तलवार की धार के समान है। समाज-सेवी कभी हताश नहीं होता। जब चारों ओर निराशा की काली रात्रि अपना अंचल फैला कर विद्यमान रहती है उस समय भी वह व्रती आशा की किरण लिए हुए अपने कार्य में निरंतर रत रहता है। अपना-पराया उसके लिए झूठा बन्धन है।

स्वतन्त्र भारत के पुनरुत्थान के साथ-साथ समाज-सेवा का भाव देश में व्यापक जाग्रति पैदा करेगा। प्राचीन भारत की परम्पराओं को जन्म देने में समाज-सेवा-व्रती देश के आगे लिखे जाने वाले इतिहास में अपना विशेष स्थान रखेंगे। हम अपने प्राचीन ऋषि-मुनियों के आदर्शों को ग्रहण करके, संसार में पुनः विश्व-बंधुत्व की भावनाओं को जाग्रत करके, मानव-सेवा का व्रत लेंगे। आज के भयानक संघर्ष एवं कुत्सित भावनाओं के युग में समाज-सेवा का पाठ अपना विशेष स्थान रखेगा। यदि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त संसार समझ ले तो यह अमानवी संसार वास्तव में मानवी बन जाय। अवश्य ही भारत इस दिशा में संसार का पथ प्रदर्शन करेगा।

उत्तर-प्रदेशीय जमींदारी-उन्मूलन-योजना

(१) प्रस्तावना—जमींदारी-प्रथा से किसानों का अहित और इस प्रथा के उन्मूलन का उद्देश्य

(२) जमींदारी उन्मूलन योजना का रूप

(३) जमींदारी-उन्मूलन-योजना से लाभ

(क) जमींदारी के अत्याचारों से कृषकों की मुक्ति

(ख) कृषकों को भूमिधर बनाने का अधिकार

(४) भूमिधर बनने से लाभ—

भूमि पर स्वत्वाधिकार और उनके हस्तान्तरण का अधिकार

(ख) लगान में ५० प्रतिशत की कमी और ४० वर्ष तक उसकी समानता

(ग) गाँव की ताल-तलैया, पहाड़ी ऊसर भूमि आदि पर सम्मिलित अधिकार

(घ) सामाजिक स्तर की उच्चता

(५) उपसंहार—जमींदारी-उन्मूलन-योजना से कृषकों का हित

हमारा देश कृषि-प्रधान है। यहाँ की ७५ प्रतिशत से भी अधिक जनता कृषि-कार्य से अपनी जीविका का उपार्जन करती है। किन्तु वर्त्तमान दूषित भूमि-व्यवस्था के फलस्वरूप घोर परिश्रम करने वाले किसान न भरपेट भोजन पाते हैं और न उन्हें शरीर-रक्षा के हेतु पर्याप्त वस्त्र मिलता है। जमींदार प्रथा ने भारतीय कृषकों के रक्त को चूसकर उन्हें कंकाल-मात्र बना रक्खा है। यह प्रथा भारतीय नहीं है, वरन् ब्रिटिश शासन की देन है। मनुजी के अनुसार भूमि का स्वामी वही होना चाहिए जो परिश्रम करके उसे खेती-बारी और रहने के योग्य बनाए। अँगरेजों ने अपनी शासन-सुविधा के लिए हमारे देश में जमींदारी-प्रथा को जन्म दिया। आज हमारा देश उनके चंगुल से मुक्त है। आज हम स्वतन्त्र भारत में साँस ले रहे हैं। आज हमारे यहाँ जन-राज्य की स्थापना हो चुकी है। तब हम क्यों न जमींदारी-प्रथा का उन्मूलन करें ? तब हम क्यों न जन-हित की दृष्टि से कृषकों को भूमि का स्वामी बनाकर नवीन भूमि-व्यवस्था करें ? तब हम क्यों न किसानों के परिश्रम पर जीवन-निर्वाह करने वाले जमींदारों को हटाकर खेतिहरों को उनका जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान करें ? तब हम क्यों न कृषकों की आर्थिक पराधीनता का अन्त करके उन्हें

सम्मान का स्थान दें ? तब हम क्यों न किसानों का आर्थिक शोषण बन्द करें।

अतः उत्तर-प्रदेशीय सरकार ने जमींदारी-उन्मूलन-योजना तैयार की है, जिसके अनुसार जमींदारों को भूमि-स्वामित्व से वंचित किया गया है और इसके बदले उन्हें मुआविजा देने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक जमींदार को समान रूप से पक्की निकासी का आठ गुना मुआविजा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त छोटे जमींदारों को उचित पुनर्वास-सहायता भी प्रदान की जायगी। किसान सरकार को सीधा लगान प्रदान किया करेंगे। जो किसान इस समय अपने लगान का दस गुना सरकार को देंगे वे भूमिधर बन जायेंगे और उनके लगान में ५० प्रतिशत की कमी हो जायगी।

जमींदारी-उन्मूलन योजना से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि किसान जमींदारों के अत्याचारों से त्राण पा जायेंगे। आजकल जमींदार कभी किसानों से खेत छुड़ा लेते हैं, कभी उनसे दुगुना-तिगुना लगान वसूल करते हैं, कभी खेत देने पर नजराना लेते हैं, कभी उन पर कर लगा देते हैं वे सदैव कृषकों की पसीने की कमाई पर हाथ साफ करते रहते हैं और उन्हें पनपने नहीं देते। जमींदारी-उन्मूलन से खेतिहरों की आर्थिक दशा सुधरेगी, क्योंकि आर्थिक शोषण करने वाले मध्यवर्ती जमींदार न रहेंगे। इसके अतिरिक्त कृषकों को भूमिधर बनने का भी अधिकार इस योजना के अन्तर्गत प्राप्त हुआ है। प्रत्येक कृषक अपने खेत का पूर्ण स्वामी बन सकेगा।

भूमिधर बनने से कृषकों को कई लाभ होंगे। जिस किसान को भूमिधर के अधिकार प्राप्त हो जायँगे वह अपनी जोत का पूर्ण स्वामी हो जायगा। वह अपनी जोत का चाहे जैसे उपयोग कर सकेगा। चाहे वह उसे खेती-बारी के काम में लाए, चाहे उस पर उद्योग-धन्धा करे, चाहे उस पर भवन निर्माण करे, चाहे उस पर बाग लगाए, चाहे उस पर और कोई कार्य करे। इसके अतिरिक्त वह अपनी जोत को हस्तान्तरित भी कर सकेगा। उसे अपनी भूमि बेचने, दान करने, वसीयत करने, गिरवी रखने का अधिकार होगा। इस प्रकार वह

उसकी अचल सम्पत्ति हो जायगी जिसे वह मरते समय पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपनी सन्तान के पालन-पोषणार्थ छोड़ सकेगा।

भूमिधर बनने पर कृषकों का लगान आधा हो जायगा और उसे भूमि-कर के नाम से सम्बोधित किया जायगा। यह भूमि-कर ४० वर्ष तक समान रहेगा, उसमें कोई वृद्धि नहीं की जायगी। इस अवस्था से किसानों की आर्थिक दशा में पर्याप्त सुधार होगा।

भूमिधर अपनी ही भूमि पर स्वत्वाधिकार नहीं प्राप्त करेंगे, वरन् गाँव में चारागाह, ताल-तलैया, पहाड़ी, ऊसर-भूमि आदि पर भी उन्हें सम्मिलित अधिकार प्राप्त होंगे। इस प्रकार वे जमींदारों के समकक्ष हो जायँगे।

भूमिधर बनने से किसानों का सामाजिक-स्तर ऊँचा हो जायगा। उन्हें वे सम्मान, वह प्रतिष्ठा उपलब्ध हो जायगी जिससे वे अब तक वंचित थे। जमींदार उन पर बड़प्पन का रौब न जमा सकेंगे। आजकल जमींदारों के कर्मचारी भी कृषकों के सामने अकड़ कर चलते हैं और उन्हें अपने समक्ष तुच्छ समझते हैं। यह भावना दूर हो जायगी। अब किसानों को किसी के सामने दबने की आवश्यकता न होगी। बड़े से बड़ा जमींदार भी यह न कह सकेगा कि मैं ऊँचा हूँ और किसान नीचे हैं। सब भूमिधरों की हैसियत बराबर होगी, सबके अधिकार बराबर होंगे। न कोई ऊँच होगा, न कोई नीच।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जमींदारी-उन्मूलन-योजना में कृषकों के हितों की सब प्रकार से रक्षा की गई है। उसमें न केवल उनकी आर्थिक दशा में ही सुधार करने की व्यवस्था हुई है, बल्कि उनकी सामाजिक दशा को भी अच्छी बनाने का प्रयत्न किया गया है। जमींदारी-प्रथा समाप्त होने पर कृषकों में नवीन उत्साह एवं नवीन चेतना का संचार होगा, उनके जीवन में सरसता उत्पन्न होगी और वे अपने परिश्रम के फल का यथेष्ट उपभोग कर सकेंगे। जमींदारी-विनाश के फलस्वरूप जब मिट्टी से रत्न पैदा करने वाला मौन तपस्वी किसान भरपेट भोजन

पाएगा, जब उसे शरीर ढकने को वस्त्र मिलेगा, तभी यह देश पुनः अपनी प्राचीन समृद्धि को प्राप्त करेगा, तभी यह देश पुनः धन-धान्य से अट जाएगा; और तभी यह देश पुनः अपनी खोई हुई लक्ष्मी को प्राप्त करेगा।

अपने मित्र की बरात का वर्णन

(१) प्रस्तावना—उत्सव
(२) वर की सजावट और बरात की निकासी
(३) वर-यात्रा और मार्ग के दृश्य तथा घटनाएँ
(४) कन्या-पक्ष की ओर से बरात का स्वागत
(५) बरात की चढ़ाई और जनवास
(६) आदर-सत्कार और विदाई
(७) उपसंहार—लौटकर घर आ-पहुँचना; प्रभाव

यह क्या ? बेलनगंज में आज अद्भुत परिवर्तन क्यों ? जल का छिड़काव हो रहा है। पंडाल बना हुआ है। रंग-विरंगी पताकाएँ लगी हुई हैं। फूल-पत्ती निर्मित 'शुभागमन' केले के स्तम्भों में लगा हुआ है। आम्र पत्तों की बन्दनवारें लटक रही हैं। वाद्य-यन्त्रों की मधुर ध्वनि हो रही है। सुन्दरियाँ कोकिल-कण्ठ से गीत गा रही हैं। यह सजावट, यह उत्सव, क्यों हो रहा है ? अरे, आज तो मित्र रमाकान्तजी का विवाह है। यह उत्सव उसी के सम्बन्ध में मनाया जा रहा है। मुझे भी तो उसमें सम्मिलित होना है, अन्यथा रमाकान्तजी रुष्ट हो जायँगे। उन्होंने कितने प्रेम के साथ रंग-विरंगे बेल-बूटों से सुसज्जित निमन्त्रण-पत्र मुझे प्रदान किया था ! कितनी अनुनय-विनय के साथ बरात में चलने का आग्रह किया था।

मैं शीघ्र तैयार होकर रमाकान्तजी के घर पर पहुँचा। वहाँ रमाकान्तजी की सजावट हो रही थी। उन्हें जड़ाऊ लाल अँगरखा पहनाया जा रहा था। सिर पर एक लाल पगड़ी बाँधी जा रही थी। मुख पर मोतियों की चमचमाती हुई झालर लगाई जा रही थी।

पगड़ी के ऊपर जड़ाऊ मौर रक्खा जा रहा था, कलाई पर कंकण सुशोभित हो रहा था। कमर में मखमली म्यान की जगमगाती हुई कटार थी। पैरों में गुलाबी रंग का पायजामा और चमकदार जूते पहनाए जा रहे थे। यह वेश-भूषा रमाकान्तजी जी को बहुत फब रही थी। झिलमिलाती हुई झालर ने उनके मुख की शोभा में चार-चाँद लगा दिये थे। उनके सुगठित अङ्गों से सौन्दर्य की आभा छलकी पड़ती थी। जैसे ही उन्होंने मुझे देखा वैसे ही मुसकराते हुए हाथ जोड़कर जय-हिन्द कहा और अपनी प्रेमपूर्ण चितवन से मेरा स्वागत किया।

सुसज्जित होकर रमाकान्तजी वर-वेश में बाहर आए। उन्हें एक सजे हुए अश्व पर बिठाया गया। यह अश्व उनके पिताजी ने इस वर्ष बटेश्वर के मेले से दो सहस्र रुपयों में खरीदा था। इस शुभ अवसर पर रमाकान्तजी को अपनी पीठ पर आरूढ़ देखकर अश्व परम गौरव का अनुभव कर रहा था और ग्रीवा ऊँची करके अकड़-अकड़ कर चल रहा था। पीछे-पीछे स्त्रियाँ मंगल गान करती हुई, चँवर डुलाती हुईं जा रही थीं। बीच-बीच में दूलह पर अक्षत फेंकती जाती थीं, जिससे घोड़ा चौंक उठता था। बाजों की मधुर ध्वनि हो रही थी। ग्राम-परिक्रमा के पश्चात् रमाकान्तजी को घोड़े की पीठ से उतार कर पुष्प-सज्जित कार में बिठाया गया। उन्होंने सानुरोध मुझे भी अपने साथ बैठने के लिए विवश किया। अन्य बराती ताँगों पर बैठे। इस प्रकार गाँव के बाहर बरात की निकासी हुई।

हम सब लोग आगरा फोट स्टेशन पर पहुँचे। वर के पिताजी ने बरातियों के लिये टिकट खरीदे। बरात जयपुर जाने वाली थी। वहाँ गाड़ी यहीं से बनकर जाती है। अतः कोई चिन्ता न थी। गाड़ी छूटने में अभी आधा घण्टा था। इस समय को बरातियों ने विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद के साथ व्यतीत किया। कोई प्लेटफार्म पर घूमने लगा। कोई समाचार-पत्र पढ़ने लगा। कोई ताश खेलने लगा। कोई खोंमचे वाले से चाट खाने लगा। कोई मुँह में सिगरेट दबाकर धुएँ के गुब्बारे उड़ाने लगा। कोई पान से मुख सुशोभित करने लगा।

तात्पर्य यह है कि समस्त बराती किसी-न-किसी प्रकार मन बहलाने लगे। इतने में समय हो गया। गाड़ी प्लेटफॉर्म पर लग गई हम सब सुविधापूर्वक अपना-अपना बिस्तर बिछाकर बैठ गये। गाड़ी ने सीटी दी और चल दी।

मार्ग के दृश्य बहुत मनोरंजक थे। कहीं हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों की छटा थी। कहीं जलाशयों की शोभा थी। कहीं रंग-विरंगे पुष्पों की छवि थी। कहीं अमराइयों की सुन्दरता थी। गाड़ी से बाहर ऐसा प्रतीत होता था मानो मार्ग की सभी वस्तुएँ हमारे साथ रमाकांत जी के विवाह में सम्मिलित होने के निमित्त भागी जा रही हैं। हम लोगों में एक महाशय अच्छे गायक थे। उन्होंने बहुत सुन्दर-सुन्दर गाने सुनाकर सब बरातियों का मनोरंजन किया। दूसरे महाशय हँसोड़ थे। उन्होंने हँसी की फुलझड़ियाँ छोड़-छोड़कर हम लोगों की कली-कली खिला दी। इधर रात्रि का आरम्भ हुआ। निद्रा-देवी ने मुझ पर कृपा की। मेरी आँखें लग गईं। मार्ग के स्टेशनों पर खोंमचे वालों की पान, बीड़ी, सिगरेट, पूड़ी, मिठाई, दूध, चाय गरम, दालमोठ, पेठा, चटपटी चाट की आवाज रात्रि की शांति को भंग करती हुई मेरी नींद को तोड़ देती थी। वे मुझे यमदूत सदृश बुरे लगते थे। प्रातःकाल बरात जयपुर आ पहुँची।

कन्या-पक्ष वालों द्वारा स्वागत का सुप्रबन्ध था। कई नवयुवक स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही हमारा सामान उठाकर बाहर ले गए और उन्होंने उसे सड़क पर खड़े हुए ताँगों में, जिनका प्रबन्ध कन्या-पक्ष वालों की ओर से था, रख दिया। हम लोग भी उन्हीं ताँगों पर सवार हुए। बरात समीपवर्ती एक धर्मशाला में ले जाकर टिका दी गई। वहाँ नौकर-चाकर, शौचालय, स्नानागार, जल, तेल, साबुन, दर्पण, कंघा आदि की व्यवस्था पहले से कर दी गई थी। सब शौच, स्नानादि से निवृत्त हुए। निवृत्त होते ही कन्या-पक्ष की ओर से चाय-पानी का प्रबन्ध हुआ। दोपहर को बरात को भोजन कराया गया।

सायङ्काल सब लोग शौचादि से निवृत्त हुए और बरात की चढ़ाई आरम्भ हुई। सभी बराती भव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर ताँगों पर सवार हुए। दूलह विद्युत् के लट्टुओं से देदीप्यमान अत्यन्त मनोरम कार द्वारा संचालित हंसासन पर आसीन हुआ। बरात का प्रस्थान आरम्भ हुआ। आगे-आगे बैंड आदि विविध प्रकार के वाद्ययन्त्रों की ध्वनि होती जा रही थी। बाजों के पीछे महात्मा गाँधी और श्री जवाहरलाल नेहरू के जड़ाऊ चित्र थे। उनके पीछे चमचमाता हुआ हंसासन था, जिस पर रमाकान्तजी विराजमान थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो सौन्दर्य मूर्तिमान होकर छवि-सागर में तैर रहा हो। उनके पीछे एक सुसज्जित कार थी जिसमें मैं तथा छोटे-छोटे बालक बैठे हुए थे। हमारे पीछे शेष बराती ताँगों पर सवार थे। वर के पिताजी तथा अन्य वयोवृद्ध महानुभाव एवं गुरुजन पैदल चल रहे थे। वाद्य-यंत्रों की तुमुल एवं मधुर ध्वनि के साथ बरात कन्या के पिताजी के गृह-समीप पहुँची। वह स्थान बहुत सजाया गया था। चारों ओर रंग-बिरंगी पताकाएँ लगी हुई थीं। प्रवेश-द्वार चित्रकारी फूलपत्ती, शुभागमन आदि से अलंकृत था। वहाँ चाय, पान, सुपारी, इलायची; और सिगरेट से बरातियों का सत्कार हुआ। इस प्रकार चढ़ाई के बाद बरात जनवासे पहुँची। जनवासा स्थानीय कॉलेज के भवन में रक्खा गया था जिसकी प्रवन्धकारिणी समिति के अध्यक्ष कन्या के पिताजी थे। वहाँ शौचालय, स्नानागार, भोजनागार, विश्रामालय, क्रीड़ालय आदि की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक बराती को सोने के लिए पलङ्ग और बैठने के लिए कुर्सी का प्रबन्ध था। जल, तेल, साबुन, दर्पण, कंघा आदि आवश्यक वस्तुएँ भी एकत्रित की गई थीं। सेवा के लिए नौकर-चाकर नियुक्त थे।

कन्या-पक्ष की ओर से बरातियों का आदर-सत्कार करने में कुछ उठा न रखा गया। प्रातःकाल चाय, दोपहर को भोजन, तीसरे पहर फल; और सायंकाल पुनः भोजन का प्रबन्ध किया गया था। भोज्य पदार्थ सुन्दर और स्वादिष्ट थे। अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तथा

पकवान खिलाए गए, जिनसे हमारी रसना तृप्त हो गई। मनोविनोदार्थ गायन, अभिनय, कविता-पाठ; और सैर सपाटों की योजना की गई। पाणिग्रहण आदि विवाह की रस्में समाप्त होने के पश्चात् तीसरे दिन बरात बिदा हुई। इस अवसर पर कन्या के पिताजी ने प्रत्येक बराती को 'रामचरित-मानस' की एक-एक पोथी उपहार-स्वरूप प्रदान की।

हम लोग रात्रि की गाड़ी से लौटे और प्रातःकाल अपने-अपने घर आ-पहुँचे। इस बरात में मुझे जितना आनन्द मिला उतना आज तक किसी बरात में नहीं। आज भी उसके मनोहर दृश्य नेत्रों के सम्मुख नाच रहे हैं। आज भी उसकी स्मृति मन में आनन्द का संचार कर रही है।

हमारी पाठशालाओं में सैनिक-शिक्षा

(१) प्रस्तावना—अध्यात्मवादी भारत में सैनिक-शिक्षा का अभाव और उसका दुष्परिणाम
(२) आज के भौतिकवादी युग में सैनिक-शिक्षा का महत्व
(३) स्वतन्त्र भारत की रक्षा के निमित्त सैनिक-शिक्षा की आवश्यकता
(४) हमारे नवयुवकों को सैनिक-शिक्षा से लाभ
(५) उत्तर प्रदेश का सैनिक-शिक्षा के लिये प्रयत्न
(६) उपसंहार—सारांश

स्वतन्त्र राष्ट्रों के इतिहास में सैनिक-शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। किन्तु हमारा राष्ट्र सदैव इस ओर उदासीनता एवं अवज्ञा की दृष्टि से देखता रहा है। हमारे यहाँ की संस्कृति आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत रही है। उसमें भौतिकता को पनपने का वातावरण कभी नहीं मिला। यहाँ आत्मिक बल के समक्ष शारीरिक बल को निकृष्ट समझा गया। अहिंसा जैसी पुनीत भावना की युग-प्रवर्तक मंजुल धारायें यहीं से प्लावित होकर देश-देशान्तरों में प्रवाहित हुईं। अतः अध्यात्मवादी भारत में हिंसा-वृत्ति प्रोत्साहित करने वाली सैनिक

शिक्षा को कोई स्थान नहीं मिला। इसके अभाव के कारण देश शक्तिहीन हो गया और विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा ध्वस्त होकर परतन्त्रता की शृङ्खला में जकड़ गया। भूतकाल में सैनिक-शिक्षा के अभाव से देश को जो अपार क्षति पहुँची उसका उल्लेख करना इस जड़ लेखनी की शक्ति के बाहर है।

आज भगवान की कृपा से हम पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके हैं। आज का युग पूर्ण भौतिकवादी है। इस युग में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा है।

नैतिक पतन की इस भयंकर दौड़ में हिंसा की भावना प्रमुख है। एक राष्ट्र दूसरे से भयभीत है। 'हीरोसीमा' और 'नागासाकी' को धराशायी करने वाला विध्वंसकारी 'एटम बम' आज सैनिक शिक्षा के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ा रहा है। आज पाश्चात्य देशों में प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन-काल में कुछ समय के लिए सैनिक-शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। इसका उद्देश्य यह है कि समय पड़ने पर नागरिकों को थोड़ी-सी शिक्षा देकर युद्ध के मैदान में उतारा जा सके। भारत के लिए यह दृष्टिकोण नितांत नवीन है। पर हमें इसे अपनाना होगा।

इस युग में हमारे यहाँ सैनिक-शिक्षा की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इस युग में भारत अपने को अन्य देशों से पृथक् नहीं रख सकता। उसे अपने देश की सुरक्षा के लिये पूर्ण प्रबन्ध करना है। डेढ़-सौ वर्षों की अँग्रेजी दासता ने भारत को मानसिक, शारीरिक और चारित्रिक दृष्टि से दिवालिया कर दिया है। अब हम भारतवासियों को स्वतन्त्र वातावरण में साँस लेने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है। अतएव राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए हमारे नेताओं पर वृहत् उत्तरदायित्व आ गया है।

अन्य योजनाओं के साथ-साथ नागरिकों की सुरक्षा का प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है। देश आन्तरिक एवं बाह्य खतरों से आक्रांत है। भारतीय नवयुवकों पर अपने देश की सुरक्षा का भार है। यदि

पाठशालाओं में अनिवार्य रूप से सैनिक-शिक्षा दी जाने लगे तो इस समस्या का हल स्वयं निकल आएगा। आज जो स्थिति देश के नवयुवकों की है वह बड़ी शोचनीय है। राष्ट्र का स्वास्थ्य नष्ट-प्रायः है। नवयुवक अनुशासन-शून्य हैं। परिश्रम के प्रति इनमें उदासीनता एवं अवज्ञा है। राष्ट्र के प्रति उनमें प्रेम है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे कार्यान्वित करने की उनमें क्षमता नहीं। सैनिक-शिक्षा से उपर्युक्त त्रुटियों का निराकरण हो जायगा।

सैनिक वातावरण हमारे नवयुवकों को शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करेगा। सैनिक-शिक्षण-काल में वे अनुशासन के कड़े नियमों का पालन करके भावी जीवन में नियम-बद्धता को अपनाने में समर्थ हो सकेंगे। सैनिक-शिक्षा उन्हें शारीरिक परिश्रम कराएगी, जिसके फलस्वरूप वे अपने जीवन-संघर्ष में सफल होंगे। परिश्रम के प्रति उदासीनता एवं अवज्ञा राष्ट्र के लिए केवल कलंक ही नहीं है, वरन् अहितकर भी है। समय-समय पर हमारे राष्ट्र-निर्माताओं ने इस ओर अपना ध्यान दिया, परन्तु परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के कारण कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति सम्भव न हो सकी।

राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के उपरान्त जनता की ओर से भी बड़े जोरदार शब्दों में पाठशालाओं में सैनिक-शिक्षा की माँग की जाने लगी। वैसे तो सन् १९३७ में ही हमारे प्रान्त में काँग्रेस-मंत्रिमंडल ने इस ओर ध्यान दिया था, परन्तु इससे पूर्व कि कुछ कर सकें मंत्रिगण परिस्थितिवश मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देकर बाहर आ गए। काँग्रेस-मंत्रिमंडल की फिर स्थापना होने पर हमारे प्रान्त के शासन में इस पर पुनः गम्भीरता से विचार किया गया। फलस्वरूप एक सैनिक-शिक्षण समिति का निर्माण हुआ, जिसको प्रान्त की पाठशालाओं और कॉलेजों में सैनिक-शिक्षा की गति-विधि पर योजना बनाने का भार सौंपा गया। समिति ने शीघ्र ही पूर्ण विवरण सरकार के समक्ष उपस्थित किया और वह स्वीकार कर लिया गया। परिणामस्वरूप प्रान्त के ११ बड़े-बड़े नगरों में कक्षा ११ और १२ में

अनिवार्य सैनिक-शिक्षा आरम्भ करने की योजना कार्यान्वित की गई। इस समय केवल ८ जिलों में सैनिक-शिक्षण-कार्य चल रहा है।

सैनिक-शिक्षण-योजना में अन्य कठिनाइयों के साथ-साथ आर्थिक कठिनाई भी है। आज देश जिन भयंकर आर्थिक परिस्थितियों में होकर निकल रहा है वे बड़ी गम्भीर हैं और प्रान्त को सरकार के हाथ बहुत कुछ जकड़े हुई हैं। किन्तु शासन की बागडोर आज उन लोकप्रिय मंत्रियों के हाथ में है जो जन-कल्याण के प्रत्येक कार्य में अधिक से अधिक धन व्यय करने को तत्पर हैं। बहुत सम्भव है कि निकट भविष्य में कम से कम १६ वर्ष की आयु वाले समस्त छात्रों के लिए सैनिक-शिक्षा अनिवार्य हो जाय।

हमारे राष्ट्र के कल्याण एवं विकास की दृष्टि से सैनिक-शिक्षा का विशेष महत्व है। छात्रों के हित की दृष्टि से भी इसका मूल्य कम नहीं। इसके द्वारा छात्रों का स्वास्थ्य, अनुशासन, और नैतिक-स्तर ऊँचा होगा। प्रचुर धन-राशि के अभाव में—सम्भव है, सैनिक-शिक्षा के पूर्णरूप से अनिवार्य होने में कुछ समय लग जाय, परन्तु इसके बिना भारत अन्य उन्नतिशील राष्ट्रों के समक्ष खड़े होने में अपने को असमर्थ पाएगा। अनिवार्य सैनिक-शिक्षा हमारे देश के लुप्त गौरव को पुनः प्रतिपादन करने में समर्थ होगी, हमारे राष्ट्र में अपूर्व बल एवं शक्ति का संचार करेगी।

निबन्धों की विस्तृत रूप-रेखाएँ

समय का सदुपयोग

"कालि करै सो आज करि, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब।"

(१) प्रस्तावना—समय का महत्व।

समय का महत्व कौन स्वीकार न करेगा ? समय एक बड़ी शक्ति है जो राजा को भिखारी और भिखारी को राजा बना देती है तथा किसी का अन्त करती है और किसी की उत्पत्ति, किसी को सम्मान

देती है और किसी को अपमान, किसी को सुख देती है और किसी को दु:ख। सारे विश्व में उलट-फेर करने वाला समय ही है।

(२) समय का सदुपयोग।

(क) श्रेष्ठ कार्यों में लगाना चाहिये।

मनुष्य को चाहिये कि सदैव अपने समय का सदुपयोग करे उसे ऐसे कार्यों में लगाए जिनसे अपना, अपने समाज का, अपने देश का कल्याण हो।

(ख) भगवद्-भजन में लगाना चाहिये।

जो भगवान् जन्म से मृत्यु तक हमारी रक्षा करता है उसकी आराधना करना मनुष्य-मात्र का प्रधान धर्म है।

(ग) मनोरंजन में लगाना चाहिये।

कुछ समय सिनेमा, नाटक, खेल-कूद, ताश, शतरंज, गाना-बजाना, सैर-सपाटे आदि मनोरंजन के साधनों को देना चाहिए जिससे जीवन में मिठास तथा सरसता का संचार हो जाय।

(घ) आलस्य से दूर रहना चाहिए।

आलस्य शारीरिक, मानसिक; और आत्मिक अवनति की जड़ है। आलसी मनुष्य अपना कल्याण नहीं कर सकता।

(ङ) व्यर्थ गप शप में समय व्यतीत करना उसका दुरुपयोग है।

(च) समय की पाबन्दी उसका सदुपयोग है, क्योंकि उससे समय नष्ट नहीं होता और सब काम सुचारु रूप से होते रहते हैं।

(३) उपसंहार—समय के सदुपयोग से लाभ।

विश्व में गौरव मिलता है। चित्त को सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उत्थान होता है। समाज का कल्याण होता है।

सैनिक और शिक्षक में देश को किसकी अधिक आवश्यकता है?

(१) प्रस्तावना—देश के लिए सैनिक और शिक्षक दोनों की आवश्यकता। सैनिक द्वारा देश की रक्षा। शिक्षक द्वारा देश की ज्ञान-वृद्धि और मानसिक तथा आत्मिक-विकास।

(२) देश के लिए शिक्षक का महत्त्व अधिक है। बालक भविष्य का नागरिक होता है। शिक्षक ही उसे उपयुक्त और आदर्श नागरिक अथवा दुष्ट और देश के लिये भार-स्वरूप व्यक्ति बना सकता है। सैनिक पर समाज का बनना या बिगड़ना निर्भर नहीं।

(३) शिक्षक के कार्य—

(क) देश की ज्ञान-वृद्धि और मानसिक-विकास।

(ख) चरित्र-निर्माण।

(४) सैनिक के कार्य—

(क) देश की सुरक्षा—

(ख) विजय द्वारा देश की सुख समृद्धि में बढ़ती।

(५) सैनिक के कार्यों की अपेक्षा शिक्षक के कार्य कहीं अधिक हितकर होते हैं। पहले का प्रभाव अल्पकालीन होता है, दूसरे का प्रभाव चिरस्थायी होता है।

(६) अपने कार्य करने में सैनिक को हिंसा का सहारा लेना पड़ता है, पर शिक्षक को नहीं। सैनिक अपने कार्य की पूर्ति के लिये युद्ध करता है जिसमें अनेक प्राणियों की हत्या होती है। शिक्षक शान्ति के साथ किसी प्राणी को कष्ट दिये बिना ही अपना कार्य सम्पन्न करता है। अतः जहाँ देश को लाभ होता है वहाँ हानि भी होती है।

(७) उपसंहार—अतः स्पष्ट है कि सैनिक की अपेक्षा देश के लिए शिक्षक की अधिक आवश्यकता है। यद्यपि दोनों से ही देश का हित होता है, तो भी जो महत्त्वपूर्ण लाभ शिक्षक से होते हैं वे क्या सैनिक से सम्भव हैं ? कदापि नहीं। कोई देश सैनिक के अभाव में तो उन्नति कर भी सकता है, पर शिक्षक के अभाव में उन्नति का नाम भी असम्भव है।

मधुर भाषण

(१) प्रस्तावना—मधुर भाषण की आवश्यकता ।

"कोयल काको देत है, कागा कासों लेत ।
तुलसी मीठे वचन सों, जग अपनो कर लेत ॥"

मीठा बोलना अमृत-तुल्य है । यह वह वशीकरण मन्त्र है जिससे मनुष्य के हृदय पर अधिकार जमाया जा सकता है । जीवन-यात्रा को सुखी बनाने के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है ।

(२) मधुर भाषण से लाभ—

(क) सर्वप्रियता और सहानुभूति की प्राप्ति ।

(ख) अपने को और अन्य व्यक्ति को शान्ति मिलना ।

(ग) झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक मृदुभाषी का आदर-सत्कार ।

(घ) संसार में यश की प्राप्ति ।

(ङ) मृदु-भाषण से द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि भावों की संसार में कमी होना ।

(च) जीवन में सफलता की उपलब्धि ।

(छ) आत्मिक उत्थान ।

(३) कटु-वाणी से हानियाँ—

(क) दूसरों का जी दुखना । उनके हृदय में कड़वी वाणी का तीर की भाँति छिदना ।

(ख) लोगों का कटुभाषी व्यक्ति से घृणा करना और उससे दूर रहना ।

(ग) कड़वी बोली से संसार में अपयश फैलना ।

(घ) कटुभाषी मनुष्य के लिये स्थान-स्थान पर द्वेषी हो जाना ।

(४) संसार के महान् पुरुष प्रायः सभी मृदुभाषी हुए हैं । कृष्ण भगवान् ने सर्वदा इस गुण को अपनाया । कौरवों के कठोर वचनों को उन्होंने मृदु-मुस्कान के साथ सहा । भगवान् राम ने परशुरामजी की कटु-वाणी का उत्तर मीठी वाणी में दिया । गाँधीजी मधुर भाषण की साक्षात् मूर्ति थे ।

(५) उपसंहार—सारांश

"ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।"

प्रातःकाल का पर्यटन

(१) प्रस्तावना—प्रातःकालीन प्राकृतिक छटा।

ऊषा की छवि। पक्षियों का कलरव शीतल और सुगन्धित समीर। विकसित कुसुमों का सौन्दर्य, पेड़-पौधों का रमणीय दृश्य।

(२) प्रातःकाल के पर्यटन के आनन्द—

(क) सुन्दर-सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों को देखकर नेत्रों को आनन्द

(ख) पक्षियों के कलरव से श्रवणों को आनन्द।

(ग) सुगन्धित वायु से नासिका को आनन्द।

(३) प्रातःकाल के पर्यटन से लाभ—

(क) शरीर में स्फूर्ति आती है।

(ख) प्रातःकालीन स्वच्छ वायु के सेवन से रक्त शुद्ध होता है।

(ग) पर्यटन से शरीर का व्यायाम होता है।

(घ) अजीर्ण आदि शारीरिक व्याधियों से शरीर बचा रहता है।

(ङ) मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, उसे शान्ति मिलती है।

(च) आलस्य पर विजय-प्राप्ति होती है।

(छ) सदाचार और धार्मिक भावों की वृद्धि होती है।

(४) प्रातःकालीन पर्यटन का उपयुक्त समय—

जाड़े के दिनों में ६॥ से ७॥ बजे तक। गरमी के दिनों में ४॥ से ५॥ बजे तक।

(५) उपसंहार—हमें नियमित रूप से प्रातःकाल पर्यटन करना चाहिए। इससे हमारी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का समुचित विकास होगा।

आज्ञा-पालन

(१) प्रस्तावना—समाज-व्यवस्था के लिए आज्ञा-पालन की आवश्यकता।

समाज में कुछ व्यक्ति बड़े होते हैं और कुछ छोटे। माता, पिता, पति, स्वामी, गुरु आदि बड़े; और पुत्र, पुत्री, पत्नी, शिष्य, नौकर

आदि छोटे माने जाते हैं। बड़े से तात्पर्य आयु की अधिकता के अतिरिक्त पद की उच्चता से भी है। समाज में यदि छोटे बड़ों के कहने के अनुसार कार्य न करें तो उसकी मर्यादा भंग हो जायगी, वह कदापि फूले-फलेगा नहीं और उसमें अशान्ति बनी रहेगी।

(२) बड़ों की आज्ञा का पालन छोटों का धर्म है।

मनुष्यता यह चाहती है कि हम अपने से बड़े लोगों के कथनानुसार कार्य करें। जो मनुष्य अपने माता-पिता, गुरु आदि पूज्य व्यक्तियों की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं।

(३) आज्ञा-पालन से लाभ :—

(क) आज्ञा-पालन आत्म-नियन्त्रण का मूल-मन्त्र है। इसमें मनुष्य को अपनी इच्छाओं को दबाना पड़ता है।

(ख) आज्ञा-पालन से समाज का संगठन होता है। यदि नेता की आज्ञा नहीं मानी जायगी तो समाज को कभी एक सूत्र में नहीं पिरोया जा सकेगा।

(ग) आज्ञा-पालन से समाज में सुख और शान्ति का साम्राज्य रहता है।

(घ) उच्चता की ओर अग्रसर होने के लिए आज्ञा-पालन अच्छा साधन है।

(ङ) आज्ञा-पालक व्यक्ति सर्वप्रियता प्राप्त करता है।

(४) भारतवर्ष के कुछ आज्ञा-पालक व्यक्तियों के उदाहरण—

भगवान् रामचन्द्रजी ने पिता दशरथ की आज्ञा का पालन किया और १४ वर्ष वन में रहे। भीष्मजी ने पिता की इच्छानुसार आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा का पालन किया। परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पाकर अपनी माता रेणुका का वध किया।

(५) आज्ञा-पालन में आज्ञा के औचित्य या अनौचित्य के विचार की आवश्यकता नहीं। 'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने लिखा है :—

"अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति अयन॥"

(६) उपसंहार—सारांश

हमें अपने गुरुजनों की आज्ञा माननी चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

मितव्ययता

(१) प्रस्तावना—मितव्ययता का रूप और आवश्यकता।

थोड़ा व्यय करने का गुण 'मितव्ययता' कहलाता है। भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संचयार्थ मितव्ययता अत्यन्त आवश्यक है।

(२) अपव्ययता से हानियाँ—

(क) जीवन दुःखी हो जाता है।

(ख) अपव्ययी मनुष्य सदैव दूसरे का मुख ताकता है।

(ग) अपव्ययता मनुष्य को दुर्गुणों की ओर अग्रसर करती है।

(३) मितव्ययता से लाभ—

(क) जीवन सदा सुखी रहता है।

(ख) सब कार्य सुचारु रूप से चलते हैं।

(ग) मितव्ययी को किसी के सामने हाथ नहीं पसारना पड़ता।

(घ) मितव्ययता से जीवन में सादगी आती है।

(ङ) मितव्ययता से सद्वृत्तियों की प्राप्ति होती है।

(च) आत्म-संयम का गुण आता है।

(छ) मितव्ययी अपने धन से देश और समाज की सेवा कर सकता है।

(४) मितव्ययता की उपलब्धि के साधन—

(क) आय-व्यय के लेखे की आवश्यकता।

(ख) भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान।

(ग) अनावश्यक कार्यों में धन कभी न व्यय किया जाय।

(घ) ऋण कभी न लिया जाय।

(५) उपसंहार—सारांश

हमें मितव्ययी होना चाहिए जिससे हम अपना और समाज का कल्याण कर सकें।

परिशिष्ट

(पत्र-लेखन)

पत्र लिखने की प्रत्येक मनुष्य को आवश्यकता पड़ती है। अत: यहाँ पर पत्र-लेखन के विषय में कुछ स्थूल-ज्ञातव्य बातें बतलाई जाती हैं।

पत्र तीन प्रकार के होते हैं—(१) छोटे की ओर से बड़े को, (२) बड़े की ओर से छोटे को; और (३) बराबर वाले को। दूसरे प्रकार से भी पत्रों का वर्गीकरण किया जाता है। एक वर्ग के पत्र वे होते हैं जो जान-पहचान वालों के लिये लिखे जाते हैं। दूसरे वर्ग के पत्र वे होते हैं जो अपरिचित लोगों को काम-काज के कारण लिखे जाते हैं। पहले वर्ग के पत्रों में प्रेम-भाव होता है और दूसरे वर्ग के पत्रों में इसका अभाव। उनमें केवल काम-काज की बातें लिखी जाती हैं।

पत्र के प्रधान चार अंग होते हैं—

(१) पत्र भेजने वाले का स्थान और पत्र लिखने की तिथि, (२) प्रशस्ति या पत्र-सम्बन्धी शिष्टाचार (आदि और अन्त में), (३) पत्र का विषय; और (४) पाने वाले का पता।

पत्र-रचना में सबसे पहले कागज की दाईं ओर के कोने पर वह स्थान लिखा जाता है जहाँ से पत्र भेजा जाता है, उसके नीचे तारीख लिखी जाती है।

फिर बाईं ओर प्रशस्ति लिखी जाती है। बड़ों को 'मान्यवर', 'पूज्य' आदि ; बराबर वालों को 'प्रियवर', 'प्रिय' आदि; और छोटों को 'चिरजीवी', 'प्रिय' आदि विशेषणों का प्रयोग होता है। इन

विशेषणों के साथ बड़ों का तो केवल नाता और बराबर वालों तथा छोटों का नाम अथवा नाता लिखा जाता है। जैसे—पूज्य पिताजी, मान्यवर चाचाजी, प्रियवर हरी, प्रिय शिष्य इत्यादि।

दूसरी लाइन में बड़ों को सादर प्रणाम, बराबर वालों को 'सप्रेम नमस्ते'; 'सप्रेम वन्दे, नमस्ते'; और छोटों को 'प्रसन्न रहो', 'सप्रेम आशीर्वाद' आदि लिखते हैं।

फिर जो समाचार लिखना होता है वह लिखा जाता है। पत्र के अन्त में कागज की दाहिनी ओर बड़ों को 'आपका आज्ञाकारी', 'स्नेह-भाजन', 'आपका कृपाकांक्षी', 'भवदीय', 'सेवक' आदि; बराबर वालों को 'आपका स्नेही, 'आपका सुहृद', 'आपका मित्र', 'भवदीय', 'आपका' आदि; और छोटों को 'तुम्हारा हितैषी', 'तुम्हारा शुभ-चिन्तक', 'तुम्हारा', आदि लिखकर नीचे अपना नाम लिखते हैं।

अपरिचित लोगों के लिए प्रशस्ति 'महोदय', 'प्रिय महोदय' आदि लिखा जाता है। अन्त में 'भवदीय' लिखकर अपना नाम लिखते हैं। अधिकारियों के लिए प्रशस्ति 'श्रीमान्', या 'मान्यवर' लिखा जाता है। अन्त में 'प्रार्थी', श्रीमान् का आज्ञाकारी सेवक' आदि लिखकर अपना नाम लिखते हैं। यह भी ध्यान रहे कि अधिकारी वर्ग को लिखे गए पत्रों के आरम्भ में अपना निवास-स्थान न लिखकर अधिकारी का पता लिखते हैं। जैसे—'श्रीमान् कलक्टर महोदय, आगरा जिला आगरा'; श्रीमान् हैडमास्टर महोदय, डी० ए० वी० हाई स्कूल, अतरौली' इत्यादि। पत्र के समाप्त होने पर कागज की बाईं ओर अपना निवास-स्थान और तारीख लिखी जाती है।

यही संक्षेप में पत्र लिखने का ढँग है। एक नमूना देखिए—

मित्र को

गोकुलपुरा, आगरा।
२० दिसम्बर, सन् १६३७ ई०

प्रिय नरेन्द्र,

सप्रेम नमस्ते।

आज १० बजे आपका पत्र मिला। पढ़कर चित्त को बड़ा आनन्द

हुआ। बहुत दिन से आपके पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था। कभी-कभी सोचता था कि कहीं आप मुझसे अप्रसन्न न हो गए हों। पत्र से ज्ञात हुआ कि आप बड़े दिन की छुट्टियों में अपने भाई के साथ बम्बई की सैर करने जा रहे हैं। यह आपका सौभाग्य है। मैं आज पिताजी को पत्र भेज रहा हूँ। यदि उनकी आज्ञा मिल जाय तो मैं भी उक्त यात्रा का आनन्द लूटूँगा, पर मुझे अधिक आशा नहीं है। आपको एक कष्ट अवश्य दूँगा। बम्बई से मेरे लिए वैस्ट एण्ड वाच कम्पनी की अपनी पसन्द की एक हाथ की घड़ी अवश्य लेते आइएगा।

ईश्वर करे आपकी यात्रा सकुशल समाप्त हो।

आपका सुहृद,
सुरेन्द्रकुमार शर्मा

सहेली को

शिव-सदन,
स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।
२५ जुलाई, १९५१ ई०

बहन स्नेहकुमारी,

सप्रेम नमस्ते।

इधर कुछ दिनों से आपका कोई कुशलता सूचक पत्र नहीं मिला। क्या बात है? अभी तो वर्ष का आरम्भ है। स्कूल खुले ही हैं। लिखने-पढ़ने के कार्य-भार का बहाना भी नहीं हो सकता। क्या हम सहेलियों को भुला दिया? ऐसी उदासीनता उचित नहीं है। कहिए, इस वर्ष पुरानी सहेलियों में से कौन-कौन कॉलेज में प्रविष्ट हुई हैं? कुसुमलता ने, सुना है पढ़ना छोड़ दिया। माताजी आपको प्यार कहती हैं। शेष कुशल है, आशा है आप भी सकुशल होंगी।

उत्तर की प्रतीक्षा में,

आपकी प्यारी सहेली,
ऊषा कुमारी

विशेष पत्रों के अन्य नमूने आगे देखिए

पत्र या तो कागज पर लिखकर लिफाफे में बन्द कर दिया जाता है या पोस्टकार्ड पर लिखा जाता है। लिफाफे या पोस्टकार्ड की पीठ पर पाने वाले का पता लिखते हैं। पते में सबसे पहले पाने वाले का नाम उपाधि सहित लिखा जाता है। नाम के नीचे उसका निवास-स्थान लिखते हैं। यदि पत्र डाक से भेजना हो तो स्थान के नीचे डाकखाना और डाकखाने के नीचे जिला लिखते हैं। यदि निवास-स्थान प्रसिद्ध नगर हो तो डाकखाना और जिला लिखने की आवश्यकता नहीं। लिफाफे के बाएँ किनारे पर भेजने वाला अपना पता लिख देता है, जिससे यदि पत्र पाने वाले का पता न लगे तो उसके पास लौटाया जा सके।

निबन्धात्मक पत्र

पिता को पत्र

(अपने विद्यालय का वर्णन)

गवर्नमेंट हायर सैकिंडरी स्कूल होस्टल, आगरा।
१ सितम्बर, सन् १९५२ ई०

पूज्य पिताजी,

सादर प्रणाम।

आपका स्नेह-पत्र मिला। चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने पत्र में मेरे विद्यालय का परिचय प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। अतः अपने विद्यालय का वर्णन लिखकर सेवा में भेजता हूँ।

हमारा विद्यालय शाहगंज के निकट स्थित है। इसके पास ही ट्रेनिंग कॉलेज और नॉर्मल स्कूल है। राजामण्डी अथवा ईदगाह स्टेशन से यह पास पड़ता है।

यह विद्यालय गवर्नमेंट ने सन् १६१० में स्थापित किया था। तब से अब तक निरन्तर उन्नति करता रहा है और उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध विद्यालयों में इसकी गणना है। इसका भवन भव्य है। सरकार को इसके निर्माण में कम से कम २-३ लाख रुपये तो व्यय करने ही पड़े होंगे। भवन में कई कमरे हैं जिनमें भिन्न-भिन्न कक्षाओं की पढ़ाई होती है। मध्य में एक विशाल हॉल है। इसमें उत्सव, व्याख्यान आदि होते हैं। इसके उत्तर में प्रिंसीपल महोदय का कमरा और कार्यालय है। हॉल से भिन्न-भिन्न कमरों में जाने के लिये एक गैलरी बनी हुई है। इसके निकटवर्ती एक कमरे में अध्यापकों के बैठने के लिए प्रबन्ध है और दूसरे में पुस्तकालय है। इतिहास, भूगोल, ड्राइङ्ग, नेचर-स्टडी और कॉमर्स पढ़ाने के लिए अलग-अलग कमरे नियत हैं। विज्ञान का भवन प्रधान भवन से पृथक् बना हुआ है। मैनुअल-ट्रेनिंग की शिक्षा के लिए भी एक इमारत अलग है।

विद्यालय भवन के सम्मुख एक मनोरम वाटिका है जिसके चारों ओर कन्नेर की अवलियाँ हैं। वाटिका में रंग-विरंगे पुष्प खिले हुए बड़े सुन्दर लगते हैं। कटी हुई हरी घास का मैदान ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने धरती पर हरी चादर बिछा दी हो। विद्यार्थी छुट्टी के समय इस वाटिका में खेलते-कूदते हैं। कुछ घास पर बैठकर गप-शप उड़ाते हैं और कुछ पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। पीछे मैदान में लड़कों को ड्रिल कराई जाती है। विद्यालय के पास एक बड़ा क्षेत्र है जिसमें विद्यार्थी खेलते हैं। हमारे स्कूल में फुटबौल, हॉकी, क्रिकेट और वॉलीबॉल खेल खिलाए जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए किसी न किसी खेल में भाग लेना अनिवार्य है। यदि कोई लड़का नहीं खेलता तो उसे दण्ड का भागी होना पड़ता है। हमारे प्रिंसीपल श्री टॉमस खेल-कूद के बड़े प्रेमी हैं। उनकी देखा-देखी अध्यापक-गण भी खेलों में बड़ी रुचि लेते हैं।

हमारा छात्रावास विद्यालय के पास ही स्थित है। इसमें भीतर बड़ी सुन्दर वाटिका है। इसका बहुत कुछ श्रेय हमारे छात्रालय के

अध्यक्ष को है जो बगीचे के कार्य में बड़ा आनन्द लेते हैं। स्वच्छता और सौंदर्य की दृष्टि से हमारा छात्रावास बड़ा अच्छा है। यहाँ व्यय भी अधिक नहीं पड़ता। भोजन, अध्ययन, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि का बहुत सुन्दर प्रबन्ध है। इसके लिए हम छात्रावास के अध्यक्ष महोदय को धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते। उनके सद्व्यवहार से सभी छात्र प्रसन्न रहते हैं। उनके उपदेशों और सतत प्रयत्नों के कारण विद्यार्थियों में पारस्परिक मेल-जोल रहता है।

विद्यालय में पढ़ाई का बहुत अच्छा प्रवन्ध है। प्रिंसीपल महोदय स्वयं बड़े अच्छे अध्यापक हैं। वे प्रत्येक अध्यापक के कार्य की निगरानी रखते हैं। कभी-कभी अवकाश मिलने पर किसी कमरे के बाहर चुपके से जा खड़े होते हैं और अध्यापक जो कुछ पढ़ाता है उसे सुनते रहते हैं। इससे शिक्षक गण सजग रहते हैं और परिश्रम से पढ़ाते हैं। परिणाम यह होता है कि विद्यालय की सभी कक्षाओं का परीक्षा-फल बड़ा अच्छा रहता है। प्रिंसीपल महोदय में प्रबन्ध-कुशलता भी कम नहीं। स्कूल में नाम-मात्र को हुल्लड़ नहीं होता। सब काम सुचारु रूप से होते हैं। लड़के पढ़ने के समय इधर-उधर घूमकर अपना समय नष्ट नहीं कर सकते। वस्तुतः हमारे विद्यालय की ख्याति के प्रधान कारण हमारे योग्य और अनुभवी प्रिंसीपल श्री टॉमस हैं। हाँ, अध्यापकगण भी प्रशंसा के पात्र हैं। वे योग्य हैं और विद्यार्थियों पर स्नेह रखते हैं। हमारे शारीरिक, मानसिक ; और आत्मिक-विकास के लिये वे कुछ उठा नहीं रखते। सदैव हमें बहुमूल्य शिक्षाएँ दिया करते हैं। पढ़ने वालों और पढ़ाने वालों में पारस्परिक प्रेम-भाव रहता है।

आजकल हमारे विद्यालय का समय प्रातःकाल ७ बजे से ११। बजे तक है। जाड़े के दिनों में १० बजे से ४ बजे तक हो जायगा। आजकल ४०-४० मिनटों के ६ घण्टे पढ़ाई होती है। काल-विभाजन के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है। मैं इस वर्ष अँग्रेजी,

गणित, हिन्दी, इतिहास और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर रहा हूँ। हमारे विद्यालय में प्रति सप्ताह जो कुछ पढ़ाया जाता है उसकी जाँच होती है। अब तक हमारी कक्षा की ४ बार जाँच हो चुकी है। आपको यह जानकर हर्ष होगा कि मैं प्रत्येक बार उत्तीर्ण हुआ हूँ और गणित, विज्ञान तथा हिन्दी में तो मेरे सर्वदा सबसे अधिक अंक आए हैं। साप्ताहिक जाँच के अतिरिक्त लगभग तीन-तीन माह पश्चात् और परीक्षाएँ ली जाती हैं। इन परीक्षाओं के प्राप्ताङ्कों के आधार पर लड़के को पास या फेल किया जाता है। प्राप्ताङ्क लड़के के अभिभावक के पास भेजे जाते हैं, जिससे यदि लड़का पढ़ने में कमजोर हो तो अभिभावक इसका समुचित प्रबन्ध करें।

हमारे विद्यालय में विद्यार्थियों की वाक्-शक्ति का विकास करने के लिए प्रति मास वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है। बसंत-पंचमी के अवसर पर वार्षिकोत्सव मनाया जाता है, जिसमें कविता, वाद-विवाद, खेल-कूद और निबन्ध-प्रतियोगिताएँ होती हैं। हमारे विद्यालय में एक स्काउट ट्रूप भी है। मैं उसका सदस्य हूँ। समय समय पर विद्यालय में व्याख्यानों की आयोजना की जाती है।

सारांश यह है कि हमारा विद्यालय आगरा के विद्यालयों में ऊँचा स्थान रखता है, प्रति वर्ष विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या इसकी सर्व-प्रियता की द्योतक है। प्रबन्ध की दृष्टि से, पढ़ाई की दृष्टि से, आमोद-प्रमोद की दृष्टि से, स्वास्थ्य की दृष्टि से, मुझे अपना विद्यालय बहुत प्रिय है।

आशा है आप मेरे विद्यालय का वर्णन पढ़कर प्रसन्न होंगे और कभी पधार कर इसे देखने का अवश्य कष्ट करेंगे।

सरला और सुशीला को प्यार तथा पूजनीया माताजी को चरण-स्पर्श।

दर्शन की अभिलाषा में

आपका स्नेह-भाजन,
रमेश

माता को पत्र

(विद्यार्थी को छात्रालय में रहना अच्छा है या घर में ?)

सनातन धर्म कॉलेज होस्टल,
कानपुर
२० अगस्त, सन् १९३२ ई०

पूजनीया माताजी,

सादर प्रणाम ।

बहुत दिनों बाद आज आपका स्नेह-पत्र पाकर हर्ष हुआ । आपने पूछा है कि मैं छात्रालय और घर के जीवन में से किस जीवन को उत्तम समझता हूँ और क्यों ? इस पत्र में मैं इसी प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ ।

छात्रालय के जीवन से जहाँ लाभ हैं, वहाँ हानियाँ भी हैं । इसी प्रकार घर के जीवन से जहाँ लाभ हैं वहाँ हानियाँ भी हैं । दोनों में से एक भी प्रकार का जीवन विद्यार्थी के लिए पूर्णतः कल्याणकर नहीं । तो भी छात्रालय का जीवन घर के जीवन की अपेक्षा अधिक अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं ।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि छात्रावास में विद्यार्थी को विद्योपार्जन का सुभीता रहता है । वहाँ उसे पढ़ने में जो सुविधाएँ मिलती हैं, वे घर में कदापि नहीं प्राप्त हो सकतीं । घर पर उसका पर्याप्त समय इधर-उधर घूमने में नष्ट हो जाता है । कभी उसके पिता उसे अनाज खरीदने बाजार भेजते हैं, तो कभी उसकी माता उसे साग लेने को साग वाले के पास । कभी उसके चाचा उसे स्टेशन भेजते हैं, तो कभी उसके भाई उसे दर्जी की दुकान पर । छात्रावास में वह इन व्याधियों से पूर्णतः मुक्त रहता है और अपना अधिकांश समय पढ़ने में लगा सकता है । साथ में अपनी या अपनी से ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों से वह अपनी कठिनाइयों को दूर करा सकता है ।

इसके अतिरिक्त छात्रावास के जीवन से स्वास्थ्य-लाभ भी होता है घर पर रहने वाला विद्यार्थी खेल-कूद और व्यायाम के उन साधनों से वंचित रहता है, जो छात्रालय में रहने वाले विद्यार्थी को उपलब्ध होते हैं। घर पर उसे खेलने को कहाँ फुटबॉल मिल सकती है ? कहाँ वॉलीबॉल मिल सकती है ? कहाँ हॉकी मिल सकती है ? कहाँ क्रिकेट मिल सकती है ? छात्रावास प्रायः नगर से बाहर खुले स्थान में होता है, जहाँ की वायु स्वास्थ्य-वर्द्धक होती है।

छात्रालय में रह कर विद्यार्थी नियमित जीवन व्यतीत करना सरलता से सीख सकता है। वहाँ उसे समय की पाबन्दी सिखाई जाती है। भोजन, शयन, स्नान, खेल-कूद, अध्ययन, जागरण आदि के लिए समय नियत होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को नियत समय पर ही नियत कार्य करना पड़ता है। घर पर विद्यार्थी का जीवन नियमित नहीं रहता। नियन्त्रण न रहने के कारण वह—इच्छा होती है जब भोजन करता है, इच्छा होती है जब पढ़ता है, इच्छा होती है जब सोता है, इच्छा होती है जब जागता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नियमित जीवन व्यतीत करने से मनुष्य को अपने कार्यों में सफलता मिलती है और वह चिरायु होता है।

छात्रालय में रहने से विद्यार्थी को मिल जुल-कर रहने की भी शिक्षा मिलती है। धनी-निर्धन, विभिन्न प्रान्तों के निवासी, विभिन्न प्रकृति के विद्यार्थी; सब मिलकर एक साथ रहते हैं। इसमें सामूहिक जीवन व्यतीत करने का अभ्यास होता है। एक विद्यार्थी दूसरे के स्वभाव से, प्रकृति से परिचय प्राप्त करता है। वह भ्रातृत्व, स्नेह, आदर, सहानुभूति, परोपकार आदि गुणों को सीखता है और छात्रालय में इन गुणों के प्रयोग के लिए उसे पर्याप्त अवसर मिलते रहते हैं। घर में रहकर विद्यार्थी केवल अपने माता, पिता, भाई, बहन आदि के संसर्ग में ही रह कर, सामूहिक जीवन के लाभ से वंचित रहता है।

पर छात्रालय में रहने वाला विद्यार्थी माता-पिता के मधुर स्नेह से अवश्य वंचित रहता है। कैसा ही अच्छा छात्रालय का अध्यक्ष क्यों न हो वह माता-पिता के समान व्यवहार नहीं कर सकता। विद्यार्थी बीमार हो जाता है तब बेचारे को घर की याद आए बिना नहीं रह सकती। उस समय कौन माता के समान सर्वदा उसकी देख-रेख कर सकता है। यद्यपि अन्य विद्यार्थी ऐसी दशा में उसकी सेवा करते हैं, तथापि वे माता की समता नहीं कर सकते। घर का सा सुख कहाँ मिल सकता है।

छात्रालय में भोजन भी अच्छा नहीं मिलता। घर में माता बड़ी पवित्रता और स्वच्छता से भोजन पकाती है और प्यार के साथ बालक को खिलाती है। छात्रालय में खाना बनाने वाला महाराज न तो स्वच्छता का ध्यान रखता है और न शुद्धता का। वह बाजार से सस्ते से सस्ता आटा खरीदता है और बुरी तरकारी। उसे तो अपनी जेब गरम करने को पड़ी रहती है। परिणाम यह होता है कि अच्छा भोजन न मिलने के कारण विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खेल-कूद और स्वच्छ वायु से उसे जितना लाभ होता है, बुरे भोजन से उतनी ही हानि होती है।

कभी-कभी विद्यार्थी छात्रालय में रहकर दुर्गुण सीख लेता है। छात्रालय में भले-बुरे सब प्रकार के लड़के होते हैं। यदि दुर्भाग्यवश बुरे लड़कों का साथ हो जाता है तो उसका सत्यानाश हो जाता है। वर्त्तमान समय के अनेक छात्रालय दुर्गुणों की खान हैं। कहीं जुआ खेला जाता है, कहीं कुछ और होता है।

छात्रालय में हुल्लड़ भी बहुत होता है। न पढ़ने वाले लड़के शोर मचाकर पढ़ने वालों को हानि पहुँचाते हैं। कुछ गाने के शौकीन विद्यार्थी गा-बजाकर अध्ययन में बाधा उपस्थित करते हैं।

पर ये हानियाँ ऐसी नहीं हैं जो छात्रालय के योग्य और अनुभवी अध्यक्ष द्वारा दूर न की जा सकें। अध्यक्ष को चाहिये कि दुराचारी विद्यार्थी को छात्रावास में स्थान न दे और भोजन, शान्ति आदि का

ठीक प्रबन्ध करे। छात्रालय में सादगी, मितव्ययता; और शुभ-संस्कार के दर्शन हों। तभी विद्यार्थियों का जीवन कल्याणप्रद हो सकता है।

आशा है कि यदि आपके विचार भिन्न होंगे तो आप मुझे अवश्य सूचित करेंगी।

पूज्य पिताजी को सादर प्रणाम और स्नेहलता को प्यार।

आपका वात्सल्य-भाजन,
चन्द्रशेखर

मित्र को पत्र

(गरमी की छुट्टियों का कार्य-क्रम)

शारदा-भवन,
बिठूर।
१० अप्रेल, १६४२ ई०

प्रिय नरेन्द्र,

सप्रेम नमस्ते।

चिरकाल से आपका पत्र नहीं मिला। इसलिये चित्त खिन्न है। मालूम पड़ता है आप मुझसे अप्रसन्न हैं। मेरी परीक्षा के पूर्व अवश्य आपका पत्र आया था जिसका उत्तर मैं परीक्षा-भार के कारण नहीं दे सका था। क्या इसलिए अप्रसन्न हो गए हो? यदि हाँ, तो क्षमा माँगता हूँ। आपने उस पत्र में मुझसे गरमी की छुट्टियों का प्रोग्राम पूछा था, अतः लिख भेजता हूँ।

७ अप्रेल को मेरी हाईस्कूल परीक्षा समाप्त हुई। ८ अप्रेल को मैं घर आ पहुँचा। कल छुट्टियों का कार्यक्रम निर्धारित किया। सबसे पहले मुझे अपना स्वास्थ्य सुधारने की चिन्ता है। घर आने पर माता-पिता ने जब मेरी तन्दुरुस्ती देखी तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। बोले—परीक्षा क्या दी है तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर डाला है। स्वास्थ्य सुधारने के लिये मैंने यह निश्चय किया है कि नित्य

प्रातःकाल ४ बजे जगकर शौच से निवृत्त होकर गंगाजी के किनारे-किनारे दो मील तक पर्यटन के लिए निकल जाया करूँगा। फिर लौटकर गंगाजी में आध घण्टे तक तैरा करूँगा। तत्पश्चात् धारोष्ण-दुग्ध का एक गिलास पिया करूँगा। फिर एक घण्टे बाद ठण्डाई पिया करूँगा।

८ बजे से ११ बजे तक अँग्रेजी की योग्यता बढ़ाने के लिए अध्ययन किया करूँगा और प्रति सप्ताह एक निबन्ध लिख कर भाई साहब को दिखलाया करूँगा। १२ बजे भोजन करके सो जाया करूँगा। फिर जगकर २ बजे से ४ बजे तक संगीत, शतरंज, ताश आदि से मनोरंजन किया करूँगा। ४ से ५ तक 'सार्वजनिक पुस्तकालय' में समाचार-पत्र और पुस्तकें पढ़ा करूँगा। फिर शौच से निवृत्त होकर 'नवयुवक क्लब' जाया करूँगा। वहाँ मित्रों से गप-शप उड़ा करेगी और खेल-कूद होगा। सूर्यास्त के समय पुनः गंगा-स्नान और तैरने का आनन्द लिया जायगा। फिर भोजन करके पुनः गाना-बजाना होगा। १० बजे सो जाया करूँगा। यही संक्षेप में मेरी दिनचर्या होगी।

पर मुझे आशंका है कि मैं सारी छुट्टियों में इस दिनचर्या का अनुसरण नहीं कर सकूँगा। १० मई को मामाजी के लड़के का विवाह है। बरात लखनऊ जायगी। मेरी इच्छा तो वहाँ जाने की न थी। पर मामाजी ने अभी से कहला भेजा कि मैं अवश्य विवाह में सम्मिलित होऊँ। अतः मुझे लखनऊ जाना पड़ेगा। सुना है लखनऊ बड़ा अच्छा नगर है। वहाँ का अजायबघर, पशु-पक्षी घर (Zoo), अमीनाबाद पार्क, बाजिदअली शाह का हरम, कौंसिल भवन और यूनीवर्सिटी-भवन देखने योग्य हैं। हर्ष है ये सब चीजें देखने को मिलेंगी, और भाई एक ही स्थान पर बहुत दिनों तक तबियत भी नहीं लगती। इस विवाह में जाने से कुछ दिन बाहर घूमना हो जायगा।

फिर पिताजी की इच्छा है कि जून के महीने में मसूरी चला जाय। मैं मसूरी जाने को तैयार हूँ। वहाँ की जल-वायु बड़ी स्वास्थ्य-वर्द्धक है। वहाँ यहाँ की सी गरमी नहीं पड़ती, प्रत्युत ठण्ड पड़ती है। अँग्रेज लोग गरमी के दिनों में मसूरी जाते हैं। कहते हैं वहाँ के प्राकृतिक दृश्य बड़े मनोरंजक हैं। कहीं जल-स्रोत कल-कल निनाद करते हुए प्रवाहित होते हैं, कहीं पुष्पोद्यान की छटा दर्शनीय है। चारों ओर सुहावनी हरियाली देखी जाती है। हिमालय के हिमाच्छादित शृंग अपनी निराली ही छटा प्रदर्शित करते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे पहाड़ों की अनुपम शोभा देखने को मिलेगी। यदि आप भी आजायँ तो बड़ा आनन्द रहे। मसूरी में पिताजी के साथ भ्रमण करने में उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहेगी जितनी आपके साथ। मित्र के साथ घूमने-फिरने में और ही आनन्द है।

मंसूरी से लौटने के पश्चात् बहिन के यहाँ जाना पड़ेगा। उन्होंने मेरे आने से पहले ही पिताजी को पत्र भेज दिया था कि छुट्टियों में भैया जरूर मेरे घर हो जायँ, मुझे भैया से मिलने की लालसा है। मैंने निश्चय किया है कि १५ दिन इलाहाबाद जाकर बहिन के घर निवास करूँगा।

मैंने 'लीडर' में पढ़ा है कि बनारस यूनीवर्सिटी २१ जुलाई को खुल रही है। अतः १६ जुलाई को बनारस पहुँच जाऊँगा और कॉलेज खुलने के प्रथम दिन ही अपना दाखिला करा लूँगा।

अन्त में, भाई मंसूरी-यात्रा के लिए अवश्य साथी बनना। हम ३ जून को घर से चल देंगे। इसलिए आप २ जून तक हमारे घर पधारने की कृपा करें।

शेष कुशल है। आशा है आप भी प्रसन्न होंगे।

उत्तर की प्रतीक्षा में,

आपका दर्शनाभिलाषी,
महेन्द्र

छोटे भाई को पत्र

(खेल-कूद आदि व्यायाम से लाभ)

विद्या-मन्दिर, प्रयाग ।
१८ अगस्त, १६४२ ई०

प्रिय सुरेन्द्र,

चिरंजीवी हो ।

कल तुम्हारे छात्रालय का विद्यार्थी मदनमोहन अपने मामा से मिलने आया था । मैंने उससे तुम्हारे अध्ययन, व्यायाम आदि के विषय में पूछ-ताछ की । व्यायाम के विषय में उसने कहा कि तुम न तो कसरत करते हो और न खेल-कूद में भाग लेते हो । शायद तुम खेल-कूद आदि व्यायाम के महत्त्व को नहीं जानते । मैं इस पत्र द्वारा तुम्हें सूचित करना चाहता हूँ कि खेल-कूद आदि व्यायाम से क्या लाभ हैं ।

खेल-कूद आदि व्यायाम से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। इनके द्वारा हम अपने शारीरिक अंगों की शक्ति को स्थिर रख सकते हैं और बढ़ा भी सकते हैं । व्यायाम या खेल-कूद से हमारे शरीर के प्रत्येक अंग में रुधिर-संचार समुचित रूप से होता है, क्योंकि इससे मांस की पेशियों पर दबाव पड़ता है और रुधिर तीव्र गति से दौड़ने लगता है । रक्त के तेज दौड़ने से शरीर में स्फूर्ति और बल आता है । विद्यार्थी के ६-१० घण्टे सिर और कमर झुकाकर बैठे-बैठे पुस्तकें पढ़ते रहने से उसकी नाड़ियों का रक्त स्तम्भित होने लगता है, जिससे शरीर निर्बल हो जाता है ।

दण्ड-बैठक करने अथवा हॉकी, फुटबौल- बॉलीबौल आदि खेल खेलने, अथवा टहलने, तैरने, दौड़ने, कूदने आदि से मनुष्य को कभी रोग नहीं हो सकता, उसकी पाचन-क्रिया ठीक रहती है। व्यायाम से पाचन में सहायता मिलती है। प्रायः देखा जाता है कि अनेक विद्यार्थियों को अजीर्ण की शिकायत रहती है। जरा भारी खाना उन्होंने खाया नहीं कि उन्हें अजीर्ण हुआ नहीं। इसका

कारण यह है कि वे कोई व्यायाम नहीं करते। कुछ विद्यार्थी सदैव पुस्तकों के कीड़े बने रहते हैं। कुछ गप-शप उड़ाते रहते हैं कुछ बाइसिकिल पर बाजार घूमते रहते हैं। उन्हें तरह-तरह के रोग हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि किसी का मुख पीला पड़ जाता है, किसी के नेत्र कमजोर हो जाते हैं, किसी का शरीर अस्थि पिञ्जर बन जाता है, किसी को दो मील चलना कठिन हो जाता है। उनके मुख पर कान्ति नहीं देखी जाती। वे उदास रहते हैं।

खेलने-कूदने और कसरत करने से शारीरिक ही नहीं मानसिक लाभ भी होता है। जिसका शरीर ही स्वस्थ न होगा, जिसे कोई न कोई रोग सदा सताएगा, उसका मस्तिष्क कैसे ठीक रह सकता है। मस्तिष्क को ठीक रखने के लिए शारीरिक स्वास्थ्य नितान्त आवश्यक है। इसलिए मनुष्यों को और विशेषतः विद्यार्थियों को, जिन्हें मस्तिष्क से बहुत काम करना पड़ता है, चाहिये कि वे किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम करते रहें। जिसको टहलना रुचे वह टहले। जिसे दौड़ना अच्छा लगे वह दौड़े। जिसको दण्ड बैठक रुचिकर हों वह दण्ड-बैठक करे। जिसको हॉकी, फुटबौल आदि खेलों में आनन्द आए वह इन खेलों को खेले। ऐसा करने से शरीर नीरोग होगा और शरीर के नीरोग रहने से मस्तिष्क ठीक-ठीक कार्य करेगा। यह कभी न होगा कि जरा-सा भी मानसिक परिश्रम किया नहीं कि सिर-दर्द हुआ नहीं।

संसार के जितने प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं वे किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम नियमपूर्वक करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी नित्य प्रातः काल २-३ मील दूर शौच के लिए जाते थे। इससे उनका अच्छा व्यायाम हो जाता था। महाराज पृथ्वीराज मृगया के लिए दूर-दूर जाते थे। छत्रपति शिवाजी भी घोड़े की सवारी का व्यायाम करते थे। महात्मा गाँधी नियमित रूप से पर्यटन करते थे।

व्यायाम से जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत होता है। जीवन के मिठास का वही आस्वादन कर सकता है जो नियमित व्यायाम करता

है। कठिन से कठिन परिश्रम करने की शक्ति उसमें होती है। वह बालू से भी तेल निकाल सकता है। उसके लिए कोई कार्य असम्भव नहीं होता। देखो हनुमानजी को, उन्होंने व्यायाम के प्रताप से समुद्र लाँघकर पार किया और द्रोणाचल लाकर लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की। संसार में यश-प्राप्ति और परोपकार के लिए व्यायाम कितना आवश्यक है, यह सभी जानते हैं।

अतः तुम्हें चाहिए कि व्यायाम जैसी आवश्यक वस्तु से मुख न मोड़ो। प्रातःकाल या सायंकाल अपनी शक्ति के अनुसार जो रुचे वह व्यायाम नियमपूर्वक नित्य करो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे लिए टहलना और खेलना-कूदना अच्छे व्यायाम रहेंगे। तुम्हारे विद्यार्थी-जीवन के लिए खेल-कूद आदि व्यायाम अमृत का काम देंगे।

आशा है मेरी शिक्षा का तुम पर अवश्य प्रभाव होगा। यदि तुम आगामी पत्र द्वारा अपने व्यायाम के सम्बन्ध में कुछ विवरण लिख भेजोगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

शेष कुशल है। आशा है तुम भी सकुशल होगे।

सद्भावनाओं के साथ,
तुम्हारा शुभाकांक्षी,
गणेशप्रसाद

अन्य प्रकार के पत्र

बधाई-पत्र

[छोटे भाई के जन्म-दिवस (वर्ष-गाँठ) पर]

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।
१६ मार्च, १९४२ ई०

प्रिय हरी,

आशीर्वाद।

आज तुम्हारे जन्म-दिवस पर तुम्हें बधाई देते हुए मुझे अपार हर्ष है। उपहार-स्वरूप एक फाउंटेनपैन और गुप्तजी की 'भारत-भारती' भेज रहा हूँ।

ईश्वर करे तुम चिरञ्जीवी हो और जन्म-दिवस के अनेक उत्सवों का आनन्द लूटो, यही मेरी शुभ-कामना है।

सस्नेह,

तुम्हारा हितेच्छु,
जगदीशचन्द्र

शोक-पत्र

(मित्र को उसकी पत्नी की मृत्यु पर)

गोकुलपुरा, आगरा।
१७ मार्च, १६४२ ई०

प्रिय रामगोपालजी,

सप्रेम नमस्ते।

आज आपकी पत्नी की मृत्यु का दुःखद सन्देश सुनकर अपार शोक हुआ। ईश्वर की गति कौन जानता है? अभी एक सप्ताह पूर्व जब मैं आपके यहाँ आया था तब वे पूर्ण स्वस्थ थीं। उनका सा अच्छा स्वास्थ्य मैंने कम स्त्रियों का देखा है। सचमुच आपके ऊपर विशाल वज्रपात हुआ है। आपकी इस क्षति की पूर्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। आपकी पत्नी सरलता, शिष्टता, सौजन्य एवं सदाचार की साक्षात् मूर्ति थीं। उनकी विनोद-प्रियता, भाषण और आदर-सत्कार का स्मरण करके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। अपने पति पर सर्वस्व न्यौछावर कर देनी वाली आदर्श महिलाओं में उनका उच्च स्थान था।

ऐसी रमणी-रत्न के खो जाने पर मैं आपके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस असह्य दुःख सहने की शक्ति और दिवङ्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

भवदीय शुभाकांक्षी,
हरिहरनिवास

(उत्तर)

लक्ष्मी-भवन, मेरठ ।
२० मार्च, १९४२ ई०

प्रिय हरिहरनिवासजी,

सप्रेम वन्दे ।

आपके समवेदना-सूचक पत्र के लिए अनेक धन्यवाद । इससे मुझे पर्याप्त सान्त्वना मिली है। पत्नी की मृत्यु ने तो मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया है, पर आप जैसे स्नेहियों की सहानुभूति मुझे शक्ति प्रदान कर रही है।

आपका,
रामगोपाल

विवाह का निमन्त्रण-पत्र

❀ ऊँ ❀

श्रीगणेशायनमः

सिद्धसदन करवर-वदन, बुद्धिराशि गणराज ।
विघ्न-हरन मंगल करन, सफल करहु मम काज ॥

प्रिय महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे अपार हर्ष है कि परमब्रह्म परमात्मा की असीम अनुकम्पा से चिरञ्जीवी गुलाबराय के सुपुत्र हरिदयाल का पाणिग्रहण संस्कार बुलन्दशहर के इण्टारोड़ी मुहल्ला निवासी डॉक्टर गौरीशङ्करजी की सुपुत्री शान्तिदेवी के साथ शुभ-मिती वैशाख शुक्ला ११ मंगलवार संवत् १९९९ वि० तदनुसार ता० १० मई सन् १९४२ ई० को होना निश्चय हुआ है। अतः विनम्र प्रार्थना है कि आप इस शुभ अवसर पर अपने इष्ट जनों के साथ पधार कर विवाह की शोभा बढ़ाइयेगा और हमें अनुगृहीत कीजिएगा।

इगलास
(अलीगढ़)

आपके दर्शनाभिलाषी—
कुञ्जबिहारीलाल मगनीराम गुप्त

वैवाहिक कार्य-क्रम

प्रीति भोज—वैशाख शुक्ल १० सोमवार, ता० ६ मई सायङ्काल ८ बजे
बरात-प्रस्थान तथा पाणिग्रहण संस्कार—वैशाख शुक्ल ११ मङ्गलवार, ता० १० मई

बराहार—वैशाख शुक्ल १२ बुधवार, ता० ११ मई
विदा—वैशाख शुक्ल १३ गुरुवार, ता० ११ मई

प्रीति-भोज का निमन्त्रण-पत्र

प्रिय महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे अपार हर्ष है कि मेरे सुपुत्र प्रेमनारायण ने इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है। इसके उपलक्ष्य में मैंने एक प्रीति-भोज ता० २८ जून सन् १९४२ ई० को सायङ्काल ८ बजे देने का निश्चय किया है। अतः सविनय निवेदन है कि आप इस शुभ अवसर पर पधार कर मुझे अनुगृहीत कीजिएगा।

शान्ति कुटीर,
फीरोजाबाद

—आपका दर्शनाभिलाषी,
अमृतलाल

पुस्तक-विक्रेता को पत्र

इगलास (अलीगढ़)
२७ मई, १९४२ ई०

श्री संचालकजी
साहित्य-रत्न भंडार,
ठण्डी सड़क, आगरा।

प्रिय महोदय,

मैं इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित हो रहा हूँ। अतएव मुझे निम्नाङ्कित पुस्तकों की आवश्यकता है। कृपया उचित कमीशन काटकर शीघ्र इन पुस्तकों को वी० पी० पार्सल से भेज दीजियेगा।

(१) ब्रजमाधुरीसार (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)
(२) कवितावली " " "

(३) प्रिय-प्रवास (खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर)
(४) उत्तर-रामचरित (रत्नाश्रम प्रेस, आगरा)
(५) तुलसीदास (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

भवदीय,
गंगाप्रसाद सारस्वत

समाचार-पत्र के सम्पादक को पत्र

श्री सम्पादक,
'दैनिक प्रताप', कानपुर

महोदय,

कृपया आप मुझे अपने पत्र द्वारा सरकार का ध्यान बिठूर के किसानों की उस करुणाजनक दुर्दशा की ओर आकर्षित करने की अनुमति दीजिएगा जो इस वर्ष अनावृष्टि के कारण उनकी हुई है।

किसानों के दुर्भाग्य से इस वर्ष बिठूर में वर्षा नहीं हुई। आषाढ़ के अन्त में कुछ पानी बरस गया था। तभी किसानों ने खेत बो दिये थे। उसके पश्चात् आज तक वर्षा नहीं हुई है परिणाम यह हुआ कि खेत सूख गए हैं। मवेशी के लिये घास का नाम निशान नहीं दिखलाई पड़ता। चारों ओर गाँव में 'त्राहि त्राहि' मची हुई है। किसान भूखे मर रहे हैं। उनके बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसते हैं। खेती की शोचनीय दशा देखकर गाँव के महाजन उन्हें कौड़ी भी कर्ज देना नहीं चाहते। वे बेचारे कैसे अपने बाल-बच्चों का पेट पालें? उनकी दुर्दशा देखकर हृदय विदीर्ण होता है। इतना होने पर भी जमींदार लोग भूमिकर प्राप्त करने के लिये उन्हें अनेक प्रकार से तंग कर रहे हैं।

मैं सरकार से प्रार्थना करूँगा कि दया करके उन दीन दुखियों को खरीफ के भूमिकर से मुक्त कर दिया जाय और तहसील से जमींदारों को सूचना भेज दी जाय कि उनसे भूमिकर प्राप्त न करें। क्या यह सरकार का धर्म नहीं है कि आपत्ति में प्रजा की सहायता करे?

बिठूर (कानपुर) एक बिठूर-निवासी
२५ अक्टूबर, सन् १६४२ ई०

याचना-पत्र

२८, सब्जीमण्डी,
देहली
५ अप्रेल, १९४२ ई०

बाबू रमाशंकर गुप्त,
११, सब्जी मण्डी,
देहली।

प्रिय महोदय,

आपने गत दो माह से हमारे बँगले 'लक्ष्मी-भवन', का जिसमें आप रह रहे हैं, किराया नहीं चुकाया है। आपने यह वचन दिया था कि मैं प्रति माह किराया चुकाता रहूँगा। इस समय आप पर दो माह का किराया ५० रुपये चाहिये।

कृपया पत्र देखते ही ५० रुपये भेज दीजिएगा, अन्यथा आपके ऊपर न्यायोचित कार्यवाही की जायगी।

भवदीय,
लक्ष्मीनारायण

नौकरी के लिये प्रार्थना-पत्र (आवेदन-पत्र)

सेवा में—

श्रीमान् अध्यक्ष महोदय,
जिला बोर्ड, आगरा।

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि कल 'सैनिक' में प्रकाशित एक विज्ञापन को देखने से मुझे ज्ञात हुआ कि आपको प्राइमरी स्कूल के लिये एक अध्यापक की आवश्यकता है। अतः इस पद के लिए मैं अपना प्रार्थना-पत्र भेजता हूँ। मेरी योग्यता का विवरण निम्नांकित है—

मैंने सन् १६४० में पालीवाल मिडिल स्कूल, मिढ़ाकुर से मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में गणित में मुझे विशेषता मिली। सन् १६४१ ई० में हिन्दी साहित्य विद्यालय, आगरा से विशेषयोग्यता परीक्षा पास की। इस परीक्षा में भी मुझे प्रथम श्रेणी मिली। इस वर्ष मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में सम्मिलित हुआ हूँ। इस परीक्षा में भी मेरे पर्चे बहुत अच्छे हुए हैं और मुझे आशा है कि इस बार भी मैं प्रथम श्रेणी प्राप्त कर सकूँगा। मेरी इच्छा तो आगे पढ़ने की है; परन्तु माता-पिता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने के कारण मैं विवश हूँ और अपने अध्ययन को आगे नहीं बढ़ा सकता।

मैं आदि से ही सदैव अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करता रहा हूँ और पुरस्कार पाता रहा हूँ। कक्षा ४ की छात्रवृत्ति की परीक्षा में जिले भर के विद्यार्थियों में मेरा स्थान प्रथम रहा था और मुझे कक्षा ५, ६ और ७ में छात्रवृत्ति मिली।

अच्छे विद्यार्थी के अतिरिक्त मैं एक कवि भी हूँ। मैंने कई बार इधर-उधर के कवि-सम्मेलनों में पुरस्कार पाये हैं। वाद-विवाद की भी मुझमें अच्छी शक्ति है। कई वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं में मुझे पारितोषिक मिले हैं। बालचर भी रहा हूँ।

मेरा स्वास्थ्य उत्तम है। खेलों में मुझे वैसा ही आनन्द आता है जैसा पढ़ने में। फुटबौल और वौलीबौल का तो मैं दक्ष खिलाड़ी हूँ। अन्य खेलों में भी भाग लेता रहा हूँ। इस समय मेरी आयु १८ वर्ष की है।

मुझे अध्यापन-कार्य में विशेष रुचि है। इस प्रार्थना-पत्र के साथ मैं अपने स्कूलों के प्रधानाध्यापकों के प्रमाण-पत्र भेज रहा हूँ जिनसे आपको विदित हो जायगा कि मुझ में कैसी योग्यता है और मैं अध्यापक का कार्य कैसा कर सकता हूँ।

आशा है आप सहानुभूति के साथ मुझ दीन के इस प्रार्थना-पत्र पर विचार करेंगे और मुझे अध्यापक का पद प्रदान करने की कृपा करेंगे। यदि मुझे उक्त पद मिल जायगा तो मैं आपका आजीवन आभारी रहूँगा।

मिढ़ाकुर
(आगरा)
५ मई, १९४२ ई०

श्रीमान् का आज्ञाकारी सेवक,
कृपाशंकर

छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र

सेवा में--

श्रीमान् प्रिंसीपल महोदय,
बैपटिस्ट हायर सैकिंडरी स्कूल,
आगरा

मान्यवर,

सेवा में सादर निवेदन है कि मेरे बड़े भाई का विवाह दिनांक ता० १५ मार्च, सन् १९४२ को है। मैं इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए ता० १४ मार्च को घर जाना चाहता हूँ। अतः प्रार्थना है कि आप मुझे ता० १४ से १८ मार्च तक की छुट्टी प्रदान कीजिएगा। इसके लिये मैं श्रीमान् का बड़ा कृतज्ञ हूँगा।

आगरा
१३ मार्च,
सन् १९४२ ई०

आपका अज्ञाकारी छात्र
रमेशचन्द्र पन्त,
कक्षा ९ ब

विद्यालय-शुल्क-मुक्ति के लिए प्रार्थना-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् प्रिंसीपल महोदय
सेन्ट्रल हिन्दू हा० सै० स्कूल, बनारस

मान्यवर,

सेवा में सादर निवेदन है कि मैंने इस वर्ष आपके स्कूल से कक्षा ९ की परीक्षा उत्तीर्ण की है। इस परीक्षा में मेरा स्थान सर्वप्रथम

रहा है। मैं एक अत्यन्त दीन विद्यार्थी हूँ। मेरे पिता की आर्थिक दशा शोचनीय है। वे ३० रुपये मासिक के एक हिन्दी अध्यापक हैं। माता-पिता के अतिरिक्त मेरे चार भाई बहन हैं। चारों मुझसे छोटे हैं। पिताजी के अतिरिक्त परिवार में कोई कमाने वाला नहीं है। ऐसी दशा में पिताजी को मेरी पढ़ाई का भार असह्य हो रहा है। अब की गरमी की छुट्टियों में उन्होंने मुझसे कहा भी था कि यदि तुम्हारी फीस माफ नहीं होगी तो मैं तुम्हें पढ़ने से बैठा लूँगा। श्रीमान् मुझे विद्याध्ययन में बड़ी रुचि है। यह मेरा दुर्भाग्य है कि भगवान् ने मुझे एक दरिद्र घर में उत्पन्न किया। ऐसी दशा में आपसे प्रार्थना है कि आप मेरी फीस माफ कर दीजिएगा।

आशा है आप मेरी दीन दशा पर अवश्य ध्यान देंगे और मेरी फीस माफ करने की कृपा करेंगे। इसके लिए मैं आपका बड़ा अनुग्रहीत हूँगा।

बनारस
२ अगस्त, १६३८ ई०

आपका आज्ञाकारी
श्रीधर अवस्थी,
कक्षा १०

चिकित्सालय खोलने के लिए जिला-बोर्ड के अध्यक्ष को प्रार्थना-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् अध्यक्ष महोदय,
डिस्ट्रिक्ट बोर्ड,
आगरा।

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि हमारे गाँव में एक चिकित्सालय की अत्यन्त आवश्यकता है। आस-पास दस-दस मील तक कोई चिकित्सालय न होने से ग्रामीण जनता को कुत्ते की मौत मरना पड़ता है। हमारे गाँव की जन-संख्या ५-६ हजार है। इतनी जन-

संख्या की जीवन-रक्षा के लिये केन्द्रीय चिकित्सालय अवश्य होना चाहिए जिससे निकटस्थ ग्राम निवासी भी लाभ उठा सकें। ५-६ वर्ष पूर्व यहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अँग्रेजी अस्पताल था, परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण बोर्ड ने उसे तोड़ दिया। यह हम लोगों का दुर्भाग्य है कि बोर्ड का यह वज्रपात हमारे ऊपर ही हुआ।

क्या हम आशा करें कि आप पुनः हमारे यहाँ एक चिकित्सालय की स्थापना करके हम लोगों के कष्ट दूर करने की कृपा करेंगे ? इस अनुग्रह के लिये हम आपके अतीव आभारी होंगे।

हम हैं,

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक,

(१) दुर्गादास, चेयरमैन, टाउन एरिया
(२) मूलचन्द, मुखिया
(३) श्रीचन्द, पटवारी
(४) ग्यासीराम वर्मा
इत्यादि

जगनेर (आगरा)
२१ जनवरी, १९४० ई०

कलक्टर को भूमिकर मुक्ति के लिये प्रार्थना-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् कलक्टर महोदय,
आगरा

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि अनावृष्टि के कारण हम मलपुरा के दीन किसानों के खेतों में इस वर्ष कुछ भी पैदावार नहीं हुई है। आजकल हम भूखे मर रहे हैं। हमारे बाल-बच्चे दाने-दाने को तरसते हैं। इधर हमारी मवेशी के लिए चारे का कोई प्रबन्ध नहीं है। ऐसी दशा में हम आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि आप हमें खरीफ के भूमिकर से मुक्त करने की कृपा करें।

आशा है आप हमारी करुणावस्था पर अवश्य ध्यान देंगे और हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हम दीन दुखियों की रक्षा करेंगे। इस कृपा के लिए हम आपके आजन्म आभारी रहेंगे।

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक—

मलपुरा
(आगरा)
२ नवम्बर, १६४२ ई०

(१) रामप्रसाद लम्बरदार
(२) कालीचरण मुखिया
(३) रामनारायण
(४) सुखलाल
इत्यादि

पोस्ट-मास्टर की शिकायत

सेवा में—

श्रीमान् सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय
पोस्ट आफिसेज, अलीगढ़।

मान्यवर,

हम जगनेर (जिला आगरा) ग्राम निवासी आपकी सेवा में सविनय निवेदन करते हैं कि स्थानीय ब्रांच पोस्ट मास्टर साहब का व्यवहार जनता के साथ बहुत बुरा है। वे नियत समय पर डाकखाने का कार्य नहीं करते हैं। जब इच्छा होती है डाकखाना खोलते हैं और जब इच्छा होती है उसे बन्द करते हैं। सेविंग बैंक में रुपया जमा करने अथवा उससे रुपया निकालने में बहुत समय लगता है। पत्र और मनीआर्डर समय पर नहीं मिलते। जिस दिन डाक आती है उसके दूसरे दिन बाँटी जाती है। पोस्ट मास्टर साहब मनीआर्डर के रुपयों को अपने कामों में लगा देते हैं। बेचारे गरीब व्यक्ति कई दिन डाकखाने का चक्कर काटते हैं, तब कहीं उन्हें मनीआर्डर के रुपये मिलते हैं। इस प्रकार जनता बड़ी दु:खी है।

हम चाहते थे कि हमें शिकायत न करनी पड़े। इसलिये गाँव के कुछ प्रतिष्ठित महानुभाव पोस्ट मास्टर साहब से मिले और उनसे डाकखाने का कार्य ठीक करने की प्रार्थना की। परन्तु उन्होंने प्रार्थना

पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अन्त में हम उनके व्यवहार से दुःखी होकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी आपत्तियाँ शीघ्र से शीघ्र दूर करने की कृपा की जाय।

आशा है कि आप हमारे पत्र पर उचित ध्यान देंगे और हमारे दुःखों को दूर करके हमें अनुगृहीत करेंगे।

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक—

जगनेर
(आगरा)
१ अक्टूबर, सन् १९३० ई०

(१) रामस्वरूप लम्बरदार
(२) भजनलाल पंच
(३) लखमीचन्द जमींदार

थानेदार की शिकायत

सेवा में—

श्रीमान् पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय,
इटावा।

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि स्थानीय थानेदार का व्यवहार जनता के प्रति अत्यन्त आपत्तिजनक है। वे यहाँ के निवासियों पर अनुचित दबाव डालते रहते हैं। जो उनके दबाव में नहीं आता उसके विरुद्ध झूठी कार्यवाही करते हैं। उनका यह रवैया देखकर सिपाही और चौकीदार भी जनता को बहुत तंग करते हैं। ये लोग दूकानदारों से उधार सौदा ले जाते हैं और उधार के रुपये माँगते समय आँख दिखाते हैं। आप इन बातों की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं। प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही उक्त थानेदार के दुर्व्यवहार से जनता की रक्षा करने की कृपा कीजिएगा।

श्रीमान् का आज्ञाकारी सेवक—
चण्डीप्रसाद शर्मा।

अजीतमल
(इटावा)
१८ मार्च, १९४० ई०

स्टेशन-मास्टर की शिकायत

सेवा में—

श्रीमान् डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट महोदय,
जी० आई० पी० रेलवे,
झाँसी,–डिवीजन,
झाँसी

मान्यवर,

सेवा में निवेदन है कि कल मैं ताँतपुर से आगरे आ रहा था। ताँतपुर स्टेशन पर मुझे आगरे तक का टिकट नहीं मिल सका। इसलिए केवल धौलपुर तक का टिकट लेना पड़ा। जब मैं डी० बी० आर० से धौलपुर आया, तब मुझे जी० आई० पी० आर० की पैसेंजर गाड़ी आगरे आने को तैयार मिली। परन्तु मेरे पास आगरे तक का टिकट नहीं था। अतएव मैंने धौलपुर के स्टेशन-मास्टर से प्रार्थना की कि वे मुझे शीघ्र टिकट दे दें, किन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। फलतः मैं उस गाड़ी से न आ सका और दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा में मुझे लगभग दो घंटे का समय नष्ट करना पड़ा। क्या धौलपुर के स्टेशन-मास्टर का यह व्यवहार अनुचित नहीं है? जनता के हित में यह आवश्यक है कि या तो ताँतपुर स्टेशन पर ही जी० आई० पी० रेलवे के स्टेशनों के लिए टिकट मिलने का प्रबन्ध किया जाय अथवा धौलपुर पर डी० बी० आर० से मिलान करने वाली गाड़ी के लिये टिकट देने का स्टेशन-मास्टर को आदेश दिया जाय। ऐसा न करने से जनता को बड़ा कष्ट होता है।

प्रार्थना है कि आप शीघ्र उचित व्यवस्था करने की कृपा कीजिएगा।

राजामण्डी,
आगरा
१०-७-४२

प्रार्थी—
मदनमोहन

(उत्तर)

प्रेषक—

कार्यालय, डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट,
जी० आई० पी० रेलवे,
झाँसी डिवीजन, झाँसी

पास—

श्री मदनमोहन, राजामण्डी, आगरा

पत्र-संख्या ३७५२।सी १९४२-१४, झाँसी, दिनांक २५-७-४२

महाशय,

तारीख १०-७-४२ के पत्र के उत्तर में आपको सूचित किया जाता है कि धौलपुर के स्टेशन-मास्टर को इस सम्बन्ध में आदेश दे दिया गया है। भविष्य में यात्रियों को इस प्रकार की असुविधा नहीं होगी। हमें खेद है कि ताँतपुर पर जी० आई० पी० रेलवे के स्टेशनों के लिए टिकट मिलने का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता।

सी० के० ब्राउन
डिवीजनल ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट

प्रमाण-पत्र (प्रशंसापत्र)

शिवप्रसाद अग्रवाल,
एम० ए०, साहित्यरत्न,
प्रधानाध्यापक।

हिन्दी साहित्य विद्यालय
आगरा।

२५ जनवरी, १९३८ ई०

मुझे श्री सीताराम शर्मा की योग्यता एवं चरित्र की उत्तमता प्रमाणित करते हुए अत्यन्त हर्ष है। ये गत दो वर्ष से हमारे विद्यालय के विद्यार्थी हैं। इस वर्ष इन्होंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की उत्तमा परीक्षा दी है और आशा की जाती है कि ये उस परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करेंगे। इसी विद्यालय से इन्होंने यू० पी० शिक्षा-विभाग की विशेष योग्यता और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा दोनों परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं। ये

हमारे सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थियों में से हैं और बड़े मेधावी, अध्यवसायी, उत्साही, जिज्ञासु एवं शिष्ट नवयुवक हैं। इन्हें साहित्य से विशेष प्रेम है और इनका अध्ययन गम्भीर है।

शर्माजी का चरित्र उत्कृष्ट है। अध्यापक और विद्यार्थी-गण समान रूप से इनके व्यवहार की प्रशंसा करते हैं। ये एक विश्वसनीय व्यक्ति हैं और इनकी प्रकृति शान्त, मधुर तथा विनम्र है। मुझे विश्वास है कि ये जिस पद पर रहेंगे उस पर बड़े उत्तर-दायित्व के साथ कार्य करेंगे। इनका स्वास्थ्य भी अच्छा है। मेरी कामना है कि इनको जीवन में पूर्ण सफलता और सुख प्राप्त हो।

सूचना (विज्ञापन)

सर्व-साधारण को विदित हो कि रविवार, दिनांक १७ दिसम्बर, सन् १९३९ को श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा के पदाधिकारियों का चुनाव सभा-भवन में सायङ्काल ३ बजे होगा। चुनाव में वे ही सज्जन भाग ले सकेंगे जिनका सभा की सदस्यता का वार्षिक चन्दा दो रुपये दिनांक १५ दिसम्बर तक अग्रिम आ जायगा। सदस्य ठीक समय पर पधारने की कृपा करें।

मन्त्री,
८ दिसम्बर, १९३९ ई० श्री नागरी प्रचारिणी सभा,
आगरा।

अपील

इस वर्ष राजपूताने में भीषण अकाल पड़ा है, जिससे वहाँ के मनुष्यों, विशेष कर गायों, की बड़ी दुर्दशा है। इन अकाल पीड़ित गौओं की सेवा के लिए कलकत्ते में श्री जयदयालजी गोयन्दका के सभापतित्व में एक राजपूताना अकाल-सेवा-समिति बनी है। इस समिति की ओर से गौ-रक्षा का कार्य हो रहा है। काम को तथा अकाल-पीड़ित गायों की दशा देखने के लिए मैं स्वयं राजपूताना गया था। मैं वहाँ की दशा वर्णन नहीं कर सकता। गौएँ भूखी मर रही हैं। हजारों गौएँ करुणाजनक दशा में पड़ी हुईं मौत के मुँह में

जा रही हैं। स्थान-स्थान पर गौएँ मरी पड़ी हैं। जहाँ-तहाँ अस्थियों के ढेर लगे हैं। कौए जीती गायों को बुरी तरह नोंच-नोंचकर खा रहे हैं, परन्तु उनमें इतनी भी शक्ति नहीं कि वे पूँछ हिलाकर कौओं को उड़ा सकें। सैकड़ों गौएँ एक-एक तिनके के लिए बिलबिलाती फिरती हैं। कड़ाके की सर्दी के मारे सहस्रों ठिठुर-ठिठुर कर मर रही हैं। सारांश यह है कि गौओं पर महान् सङ्कट छाया हुआ है। हिन्दू-मात्र का कर्त्तव्य है कि गौ-माताओं की रक्षा करे। देश के करोड़ों हिन्दुओं से मेरी अपील है कि वे गौओं के इस महान् संकट पर ध्यान दें और मुक्त-हस्त से गौ-रक्षा के पुनीत कार्य में अपने धन का सदुपयोग करें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक 'कल्याण'
गोरखपुर

१९ जनवरी, १९३६ ई०

शोक-प्रस्ताव

हिन्दी-साहित्य-विद्यालय, आगरा के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों की यह सभा हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार, कहानी तथा उपन्यास-लेखक बाबू जयशंकर 'प्रसाद' के असामयिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह शोक-संतप्त परिवार को यह असह्य दुःख सहने के लिए शक्ति तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

आगरा,
२० नवम्बर, १९३७ ई०

बिदाई-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् एफ० जे० फील्डन,
प्रिंसिपल, आगरा कॉलेज,
आगरा

मान्यवर,

आज सायंकाल हम अत्यन्त शोक के साथ आपको बिदा देने

के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। आपने आगरा कॉलेज की जो सेवाएँ की हैं और हम विद्यार्थियों के साथ जैसा प्रशंसनीय व्यवहार किया है, उसके वर्णन के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। हम में से अधिकांश छात्र आपके चरण कमलों में बैठकर पढ़े हैं और जानते हैं कि आपमें कैसी अद्वितीय विद्वत्ता, कैसी योग्यता, कैसी विचार-मौलिकता और कैसी अध्यापन-कुशलता है। आगरा विश्व-विद्यालय के इस विख्यात एवं प्राचीन विद्या-मन्दिर में प्रिंसिपल के पद पर कार्य करते हुए आपने सद्बुद्धि, शिष्टता, न्याय और प्रबन्ध-कुशलता से क्या विद्यार्थी, क्या अध्यापक, क्या अधिकारी, क्या नागरिक सभी के हृदय पर अधिकार जमा लिया है।

मानव-रत्न,

अध्यापक से भी अधिक हम आपका मानव-रूप में आदर करते हैं। निस्सन्देह आप ईसाई धर्म के सर्वोत्कृष्ट गुणों की साक्षात् मूर्ति हैं। प्रत्येक मनुष्य जिसे आपके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, आपकी प्रकृति की भूरि-भूरि सराहना करता है। आपका मुसकराता हुआ मुख, मधुर वाणी, स्नेह, कोमलता, दयालुता और सहानुभूति आपकी सर्वप्रियता के कारण हैं। आप सदाचार को अत्यन्त महत्त्व देते हैं। और आपका सम्पर्क आत्म-संस्कार का अच्छा साधन है। आपकी सी सहिष्णुता अन्यत्र कम देखी जाती है। कठिन से कठिन परिस्थिति में आपने शान्ति के साथ कॉलेज के छात्रों की प्रतिष्ठा रक्खी है। आज तक कभी आपके मुख पर क्रोध की झलक नहीं देखी गई हैं। हमारे साथ आपका वैसा ही व्यवहार रहा है जैसा किसी का अपनी सन्तान के प्रति होता है।

पूजनीय,

आज यह हमारा दुर्भाग्य है कि आप हमको छोड़कर अलीगढ़ विश्वविद्यालय जा रहे हैं। आप नेत्रों के सामने से भले ही चले जाएँ परन्तु हृदय से कभी बाहर नहीं हो सकते। आपकी मधुर स्मृति सदैव हमारे मस्तिष्क में रहेगी। हमें पूर्ण आशा है कि आपकी स्मृति में भी आगरा कॉलेज और इसके वे विद्यार्थी जिनके साथ

आपने अपनी आयु के लगभग १२ वर्ष व्यतीत किए हैं सर्वदा बने रहेंगे।

श्रीमान्,

आपको विदा देते हुए इस समय हमारे हृदय विदीर्ण हो रहे हैं, हमारे नेत्रों में अश्रु-धारा रोकने से नहीं रुकती और हमारे कण्ठ रुद्ध हो रहे हैं।

हम हैं,

आगरा
२३ दिसम्बर, १९३७ ई०

आपके आज्ञाकारी—
आगरा कॉलेज के विद्यार्थी :

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—

महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय

मान्यवर,

आज सायंकाल हम अत्यन्त हर्ष एवं आदर के साथ आपका अपने नगर में स्वागत करते हैं। आप आर्य-कुल-तिलक, हिन्दू जाति पालक, भारतीय मान-मर्यादा के रक्षक, विद्या के दृढ़ स्तम्भ, देश के सच्चे सपूत और हिन्दी तथा हिन्दू-धर्म के जीवन-दाता हैं।

विद्यानुरागी,

काशी-विश्वविद्यालय जैसा विशाल विद्या मन्दिर स्थापित करने का श्रेय आप ही को है। आपके सतत उद्योगों के फल-स्वरूप इस विश्वविद्यालय ने जो अनुपम उन्नति की है उसे देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है और आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न होती है। धन्य है आपका अध्यवसाय! आपका विश्वविद्यालय भारतीय नवयुवकों में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के भाव भरने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यह आपका अक्षय कीर्त्ति-स्तम्भ है।

मातृभाषा उन्नायक,

आपने हमारी मातृ-भाषा हिन्दी के उत्थान और प्रचार में जो सराहनीय योग दिया है उसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। सचमुच आपने हिन्दी को जीवन-दान दिया है। न्यायालयों में हिन्दी का जो कुछ थोड़ा-बहुत प्रचार देखा जाता है उसका सूत्रपात आपके कर कमलों से ही हुआ था।

धर्म-प्राण,

आप हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के सर्वस्व हैं। आपने इनकी अगणित सेवाएँ की हैं, कठिन से कठिन परिस्थिति में इनकी प्रतिष्ठा रखी है। दोषों से इनका परिष्कार किया है। आप हिन्दू-जाति के उज्ज्वल रत्न हैं। धर्म का जैसा ज्ञान आपको है वैसा भारत में शायद ही किसी व्यक्ति को है।

भारत-विभूति

इस पराधीन देश की स्वतंत्रता के लिए आपने बहुत अधिक कार्य किया है। परतन्त्रता की बेड़ियाँ काटने के लिए आपने अनेक प्रयत्न किए हैं। आप सरीखी महान् आत्माओं के परिश्रम का ही प्रसाद है कि हमारे देश में इतनी जाग्रति हुई है। आपका त्याग, आपका देश-प्रेम, धन्य है।

सच्चरित्र-शिरोमणि,

आपके उत्कृष्ट गुणों और अनुपम सेवाओं को देखकर हमारे मस्तक स्वतः आपके लिए झुक जाते हैं। आपका पुनीत आचरण अनुकरणीय है। इस वृद्धावस्था में भी आप बड़े परिश्रम से देश एवं समाज के कल्याण में संलग्न हैं। आपकी सौम्य मूर्ति, आपकी सरलता, आपकी शिष्टता, आपकी सच्चरित्रता धन्य है।

पूजनीय,

हम आपका हृदय से अभिनन्दन करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरायु बनाए, जिससे आप चिरकाल तक हमारी जाति तथा देश का कल्याण करते रहें।

हम हैं,
आपके विनीत शुभाकांक्षी—
आगरा के हिन्दू।

आगरा
४ जनवरी, १९३५ ई०

मुद्रक—गुलाबचन्द अग्रवाल, बी० कॉम०, अग्रवाल प्रेस आगरा।